ॐ

महाविद्या

अर्थात्

॥ थिआसोफी ॥

प्रथम प्रकरण

बोधक—थिआसोफी क्या है ?

थिआसोफिस्ट—'थिआसोफी' किसी जाति का धर्म या पंथ नहीं है, परन्तु जिसके अभ्यास से सृष्टि के नियम और छुपे हुए [illegible] का ज्ञान होवे, वह विद्या 'थिआसोफी' है।

बोधक—छिपेहुए भेदों का ज्ञान क्या है ?

थि०—सृष्टि किस प्रकार से उत्पन्न हुई—किस निमित्त [illegible] किस समय से हुई—उसका अन्त क्या है—मैं कौन हूँ—

का अभिप्राय क्या है–मेरा अन्त क्या है–ईश्वर कौन है–वह कहां है–इस सृष्टिके साथ मेरा सम्बन्ध क्या है, इत्यादिक बातें जो अज्ञान से मनुष्यों ने छुपेहुए भेदों में मान ली हैं उनके प्रगट करने की विद्या का नाम 'थिओसोफी' है।

शो०—परन्तु साधारण मनुष्यों का तो यह मत है कि यह बात ऐसी नहीं हैं कि जो मनुष्यों की समझ में आजावें।

थि—जगत में ऐसी कोई बात नहीं है कि जिसके जानने की मनुष्य को शक्ति न हो; परन्तु तौभी यह बातें जो साधारण मनुष्यों के समझमें नहीं आतीं उसके दो कारण हैं अर्थात् एक तो उनकी अल्पबुद्धि और दूसरे अभिमान।

शो०—कितने मनुष्य ऐसा भी कहते हैं कि जो विषय अपने धर्म ग्रन्थों में न लिखेहों उनके ऊपर ध्यान डालना या उनको सत्य मानने की अपने को क्या आवश्यकता है?

थि०—यह प्रमाणित नहीं है कि अमुक धर्म की पुस्तकों में अमुक विषय नहो इससे वह विषय उस धर्म से अथवा उस सचाईसे विरुद्ध होगा। इसही प्रकार यह भी कहना भूल से भरा आहै कि थिआसोफीके बहुतसे विषय जो धर्म पुस्तकों में नहीं उनका अभ्यास करना उस धर्म व सत्यता से विरुद्ध है;

क्योंकि जो ऐसाही होतो वर्तमान् समयमें पढ़ीजाती हुई विद्याओं का अभ्यास करनां कि जो धर्म पुस्तकों में नहीं लिखीं उस धर्म से विपरीत गिनना चाहिए ।

शोधक—यदि 'थिआसोफी' सृष्टिके भेद प्रगट करने वाली विद्या है तो कितने एक मनुष्यउसकी ओर ध्यान क्योंनहींदेते?

थि०—ऐसा होने का एक कारण यह है कि यह विषय ऐसा सहल तो हैही नहीं कि विना श्रमकिये स्वयंही मस्तिष्क स पार होजावे । दूसरा कारण यह है कि 'थिआसोफी' धर्म में भरे हुए खोटे बिचारों और धर्म सम्बन्धी खोटे आवेशों को तोड़ देनेवाली विद्या है, इससे अपनेहीं धर्म में जो धर्म सम्बन्धी खोटे विषय अज्ञानता से भरे हुए बहुत समय से मनमें स्थित हैं उनको एकवारही जड़ मूल से तोड़ डालने के निमित्त जोयथार्थ बात की जाती है वह चाहे सत्यहो और बुद्धि भी स्वीकार कर परन्तु तौभी वह बातें उन मनुष्यों की बुद्धि में एक साथही नहीं आतीं । और धीरजसे विचार करके अपनी खोटी कल्पनाओं के बदलने व प्राकृतिक रीतों तथा इन विषयों से दूर रहने को [illegible] वह भला समझते हैं, मनुष्यों का स्वाभाविक गुणही ऐसा है. इसही कारण बहुत समय से मनमें भरेहुए विचारों के [illegible]

चाहे वह निरे वृथाहीहों, अत्यन्त कठिनता पड़ती है ।

मनुष्य का मन क्रमशः जैसे २ उन्नति पाता है वैसेही उसके धर्म सम्बन्धी विचारों मेंभी फेर फार होता जाता है, और धर्मके खोटे आवेशभी बुद्धिके अनुसारही न्यून होतेजाते हैं । अनपढ़े मुसलमान, पारसी, गँवैये, अज्ञान और अभिमानी पुजेरी वैसेही 'मिश्नरी' आदि खिस्ती धर्मको मानने वाले दूसरोंके धर्म सम्बन्धी विषयों को किंचित् न जानकरभी अपने ही धर्म को सबसे ऊंचा और सचाई से भराहुआ मानते हैं, और दूसरे के धर्मोंको जहां तक बनता है धिक्कारते हैं इससे उनको कुछ लाभ नहीं परन्तु अपनी अज्ञानता और अल्प बुद्धिकोही प्रगट करते हैं । और इसही प्रकार जो 'थियासोफी' की ओर ध्यान नहीं देते व इस धर्मको उलटा तथा अज्ञानतासे भरा हुआ मानतेहैं, जानलेना चाहिये कि उन्होंने 'थिआसोफी' का थोड़ासा भी अभ्यास नहीं किया, इसही कारण ऐसे अनसमझ मनुष्यों की वातोंपर कुछभी गौरव नहीं किया जासकता ।

शो०—'थियासोफी' की सच्चाई और उसके उपयोगीपने का प्रमाण क्या है ?

थि०—किसी भी विद्यामें सचाई है कि नहीं, अथवा वह

कुछमें उपयोगिनी है कि नहीं, उसके प्रमाणित होनेसे बुद्धिमान मनुष्यों में उसका फैलाव हुआ है कि नहीं, तथा उसके अनुसार चलने वालोंमें कुछ सुधार हुआ है या नहीं इनबातों के मिलान करने से जाना जाताहै; इन सब रीतोंको देखकरही 'थिआसोफी' की सचाई और उसका उपयोगीपन कितनाहै यह इन सब बातों और नीचे लिखे हुए फैलावसे भलीभांति प्रगट होताहै।

यह मण्डली अमेरिकाके न्यूयार्क शहरमें श्रीमती मेडम ब्लव ट्स्की तथा कर्नल एच, एस अल्काट् साहबकी सहायता से सन् १८७५ ई० में स्थापित हुई; उस समय मनुष्यों ने इस के विषयों की उत्तमता को न जानकर इसका विचार न किया और सब इससे विमुख होगये, परन्तु तौभी सांचको आंच न लगी। समयानुसार पृथिवी के स्थान २ में अर्थात् अमेरिका, यूरोप, एशिया, आस्ट्रेलिया, ओशीएनिया, न्यूजीलैंड और नेटाल (अफ्रीका) मेंभी इस मण्डलीकी शाखायें निकलीं और आज पर्यन्त बढ़तीही जाती हैं। 'थिआसोफी' के अतिरिक्त दूसरी कोईभी विद्या बीस बाईस वर्ष के थोड़े कालमें दुनियाके पृथक २ भागों और पृथक २ धर्मोंके पालने वाले मनुष्योंमें इतनी अधिकता से नहीं फैलसकी; सन् १८७५ ई० से इस मं-

कितनी २ शाखायें बढ़ीं वह नीचे के कोठेसे भली प्रकार जान पड़ेगा और यही 'थिआसोफी' की सच्चाई तथा उसके उपयोगी पनेका पूरा प्रमाण है ।

१८७६	१८७७	१८७८	१८७९	१८८०	१८८१	१८८२
१	२	२	४	११	२७	५१
१८८३	१८८४	१८८५	१८८६	१८८७	१८८८	१८८९
९३	१०४	१२१	१३६	१५८	१७९	२०६
१८९०	१८९१	१८९२	१८९३	१८९४	१८९५	१८९६
२४१	२७१	३१०	३५२	३८२	४०८	४२८

शोधक—'थिआसोफी' प्रत्येक मनुष्य के सीखसकने की विद्याहै या नहीं ?

थि०—जो दूसरेके सच्चे विचारों को स्वीकार न कर अपने मिथ्याही विचारोंमें फँसारहना चाहते हैं ऐसे अनसमझ मनुष्यों के निमित्त 'थिआसोफी' नहीं है, तैसही जो अपनेही धर्ममें सब सच्चाइयोंको भराहुआ जान दूसरे धर्मोंपर अभाव रखते हैं 'थिआसोफी' उनकेभी सीखने योग्य नहीं है जो मनुष्य प्रत्येक धर्म से सम्बन्ध रखने वाली फिलासफीकी सहायतासे अथवा किसीभी सच्चाईके ढूढ़नेको आतुरहो वही मनुष्य'थिआसोफिस्ट'

होनेके योग्य है । फिर साधारण बुद्धिवाले मनुष्यों से लेकर यूरोप, अमेरिका, आदि स्थानों के बड़े २ विद्वान जैसे 'टोम्सएडीसन' और 'सरक्रुक्स' आदि इस मण्डली के सभासद हैं, इसीसे जान पड़ेगा कि यह वह विद्या है जिसके जानने से ज्ञान की प्राप्ति होती ह ।

शोधक—'थिआसोफी' के प्रचार होनेसे क्या लाभ है ?

थि—॰ इस मण्डलीके तीन हेतु हैं यदि एकभी हेतुपर भली प्रकार से ध्यानदियाजाय तो उससे अत्यन्तही लाभहोसक्ता है

शो॰—वह तीनों कौन २ से हेतु हैं ?

थि॰—प्रथम और सबसे आवश्यकीय हेतु भाई, बन्धु, जाति, देश और मुख्य करके धर्म इत्यादिक के लिये जो पृथिकता मनुष्य जातिमें घुसीहुई हैं वह अत्यन्तही दुःखका कारण है यह प्रगट करके जगतमें भाई बंदीका फैलाना है ।

शो॰—एक धर्मके पालने वालेही परस्परमें लड़े मरतेहैं, फिर पृथक२ धर्मानुयायी मनुष्योंमेंभाई बंधीकासम्बन्ध कैसेफैलसकता है

थि॰—जोइस मण्डलीके दूसरे हेतुपर ध्यानलगाए जावे तो इसबातका होना कुछ असंभव नहीं वरन वह अत्यन्त ऊंची श्रेणी तक सफलता पासकती है । यह दूसरा हेतु पर

आवश्यकीय विद्या तथा जानेहुए धर्म और उसमें मुख्य कर अपने देशकी अवस्था, गाथा, वेद, उपनिषद इत्यादि प्राचीन शास्त्र जो दूसरे धर्मोंके आधार हैं उनका अभ्यास करना है ।

शो०—ऐसा करने से लाभ क्या है ?

थि०—समस्त धर्मोंका अभ्यास करनेसे यह प्रमाणित हुआ है कि सबका मूल पाया अर्थात् अभिप्राय एकही है, जो अन्तर साधारण दृष्टि में दिखाई देता है वह केवल देश, काल और पृथक २ समय को मनुष्य जाति की पृथक २ दशाओं के लिये हुआ है । इस बातके ध्यानमें आने से मेरेही धर्ममें समस्त सचाइयें हैं यह विचारकर दूसरेके धर्मके ऊपर अभाव रखने का कारण नहीं रहता और भाई बंधीका बढ़ना सम्भव होजाता है ।

शो०—इस मण्डली का तीसरा हेतु क्या है ?

थि०—तीसरा हेतु; मनुष्य जातिमें रहीहुई ईश्वरी अथवा मनकी शक्तियें कि जो मुख्य २ कारणों से साधारण मनुष्यों में प्रगट नहीं होतीं, उनको गुप्त विद्या के अभ्याससे प्रगट करनेका है कि जिसकी सहायता से मनुष्य बहुत से ज्ञानको प्राप्तहो संसार में सुखशांतिको बढ़ाय दुःखके नाशकरनेमें शक्तिमान होवे ।

शो०—समस्त धर्मों का मूल अभिप्राय और पाया एकही है

यह किस प्रकार से कह सकते हैं और पृथक २ धर्मों के साथ 'थिआसोफी' का क्या सम्बन्ध है ?

थि०—पृथक २ धर्मों के अभ्यास और उनकी समानता करने से उनका मूल अभिप्राय और पाया एकही है ऐसा प्रमाणित हुआ है । प्रत्येक धर्म में रही हुई अच्छाइयों का स्पष्टीकरण 'थिआसोफी' की सहायतासे होसकता है, अतएव इसको प्रत्येक धर्मकी कुंजी कहाजाय तोभी ठीक होगा । आज कल जो समझ में न आती हुई भेद से भरी हुई बातों को कल्पित विचारों से भराहुआ जान हँसी में उड़ादेते हैं उन सबको बुद्धि स्वीकार करे ऐसा स्पष्टीकरण 'थिआसोफी' सेही होसकता है 'थिआसोफी' का किसी भी धर्मकी रीति भाँति से सम्बन्ध नहीं है परन्तु उसमें की सच्चाई के साथही काम है, अतएव इस मण्डली के सभासदों का किसी अमुक धर्म के विचारों में फंसा रहना ही कर्तव्य कर्म नहीं है ऐसेही 'थिआसोफी' में जो कहा है वह निश्चयही यथार्थ है, ऐसा बिना विचारेही न मान लेना चाहिये । प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि जितनीही सत्यता को स्वीकार करे उतनाही मानना आवश्यकीय है और इसही कारण इस मण्डली ने "सत्यात नास्ति परोधर्मः" अथवा सच्चाई से बढ़कर दूसरा

कोई धर्म नहीं है इस मुद्रालेख को धारण किया है।

शो०—सच्चाई तो सब स्थानों में एक समानही होना चाहिये फिर पृथक २ धर्मोंमें सच्चाई होते हुएभी उनमें अंतर ज्ञात होने का क्या कारण है ?

थि०—जिस प्रकार से पानी पृथक २ रंगों के गिलासमें डालनेसे पृथक२ रंगका जानपड़ताहै, और जैसे एकही सूरज पृथक पृथक रंगोंके चश्में से देखने पर पृथक २ रंगका दिखाई देता है वैसेही पृथक २ समय में स्थापित कियेहुए धर्म उन समयों के मनुष्यों की दशाके अनुसार होगये इसही कारण वह पृथक २ ढंगके प्रगट होते हैं, वसेंही उनकी बाहरी क्रियाओं में देश—काल का अर्थात पृथक १ देश और पृथक २ समयों के कारण अंतर पड़नेसे वह सर्व साधारणकी दृष्टिमें पृथक दिखाई देते हैं, परन्तु अभ्यास करनेसे उनका अभिप्राय एकही पायाजाता है।

शो०—ऊपर की बातोंसेतो ऐसा जानपड़ता हैकि 'थिआसोफी' का अभ्यासी किसी भी प्रत्येक धर्मका अनुयायी होसकता है।

थि०—बिल्कुल नहीं इस मंडली में पृथक २ धर्मों के अनुयायी मनुष्य हैं।.पवित्र विचार—पवित्रवाणी और पवित्र कर्म इन

सबमें इन धर्मोंका सार होनेसे जो एक धर्म सच्चा ज्ञात होवे वही समस्त धर्मोंकी समान है ।

शो०—'परब्रह्म' अथवा 'जरवाने अकर' क्या है और उसका जानना अशक्य है इसका क्या कारण है ?

थि०—'परब्रह्म' सम्बन्धी कुछ भी कल्पना अथवा विचार नहीं होसकता तैसेही वह अनिर्वचनीय अर्थात् वर्णन न करसकने योग्य है । वह ऐसा भी नहीं है जो कल्पना में आसके उसका कारण यह है कि किसी भी वस्तुका विचार करते समय अपने मनमें रही हुई दूसरी वस्तु के विचारको पृथक कर देनापड़ता है क्योंकि बिना ऐसा किये विचार होही नहीं सकता, परन्तु 'परब्रह्म' सीमा रहित अखण्ड और पोला है इससे वह पृथक होही नहीं सकता, अतएव उसके ऊपर विचार करना अशक्य होपड़ता है, इसही प्रकार उसका वर्णन करना भी अशक्य है, क्योंकि किसी भी वस्तुका वर्णन करने में वह लम्बी है–पोली है–लाल है–पीली है आदि उसके गुणों का वर्णन होता है, परन्तु 'परब्रह्म' तो निर्गुण व निराकार है क्योंकि गुणसे वस्तुकी सीमा बँधती है और 'परब्रह्म' तो सीमा रहित का पोल है अतएव उसका कोई भी गुण नहीं लगसकता और इसही कारण उसका वर्णन भी

नहीं होसकता केवल इतनाही जानना चाहिये कि सब स्थानों में व्याप्त, एक 'सत है जो परब्रह्म' और 'जरत्राने अकर आदि कहने में आता है, जैसे पानी में से लहरें उत्पन्न होतीहैं वैसेही उसमें से असंख्य सृष्टि की उत्पत्ति हुई है और फिर जैसे लहरें पानीही में समाजाती हैं वैसेही सृष्टि भी उसमेंही समाजाती है । फिर उत्पन्न होती और फिर भी उसही में समाजाती है। जैसे आरम्भ और इति एक के उपरांत एक हुआ करती है तथा रात और दिन जैसे समय समय पर हुआ करते हैं, वैसेही परब्रह्म में से सृष्टि उत्पन्न होती और नियत समय में फिर उसमेंही लय होजाती है, ऐसा होते हुए भी यह ध्यान में रखना चाहिये कि 'परब्रह्म' सृष्टि से पृथक है। इस प्रकार की यह सृष्टि तीन भागों में फैली हुई है, एकतो ज्ञाता (जानना अथवा जो दूसरे को जाने वह) दूसरा ज्ञान (जाननापन अथवा जिससे जानाजाय वह) और तीसरा ज्ञेय (जो वस्तु जानने में आवे वह) सृष्टिमें कोई भी वस्तु ऐसी नहीं होसकती कि जो इन तीनभागोंमें के किसी भी एकभाग में न आसके। परन्तु 'परब्रह्म' इन तीनोंमेंसे एकमें भी नहींहै परन्तु वह इन तीनोंका मूल है ऐसा समझना चाहिये।

शो०—परन्तु जो 'परब्रह्म' में सेही सृष्टि उत्पन्न हुई हो तो

'परब्रह्म' ही सृष्टिका कर्त्ता अथवा उत्पन्न करनेवाला कहलावे ।

थि० —नहीं—'परब्रह्म' सृष्टिका कर्त्ता नहींहै जैसे पानीमें से लहरें उत्पन्न होती हैं परन्तु पानी लहरोंका कर्त्ता नहीं कहाजा-सकता, वैसेही 'परब्रह्म' में से सृष्टि उत्पन्न होती है परन्तु 'पर-ब्रह्म' सृष्टिका कर्त्ता नहीं है ;

शो०—'परब्रह्म' का कुछ भान है या नहीं ? जैसे पानी में लहरें उत्पन्न होतीहैं वैसेही यदि उसमेंसे सृष्टि उत्पन्न होतीहो तो वह आभास रहित होगा ऐसा निश्चयहोता है ।

थि०—'परब्रह्म' में समस्त आभासही होना चाहिये क्योंकि जिस प्रकार दूधसेही दही निकलता है और तलसे नहीं निक-लता है तथा पानी में लहरें होती हैं परन्तु (ठोस) पदार्थों में नहीं होतीं, तथा जैसे तिलों में से तेल निकलता है परन्तु रेत में से नहीं निकलता उसही प्रकार आभास रहित मेंसे अभासका होना संभव नहीं है । सृष्टि उत्पन्न होने के आरम्भ में जो 'ला-गास' नामक शक्ति उत्पन्न हुई अथवा आस्तित्व में आई वही 'परब्रह्म' का आभास निश्चय हुआ है और उसही आभास से सृष्टि चलती है, अतएव उसभानके धारण करने वाली शक्तिजिस

में से प्रगट हुई अथवा आस्तित्व में आई उसको स्वयं अर्थात् 'परब्रह्म' को भी किसी जातका भान होना चाहिये ।

शो०—तब परब्रह्म को आभास रहित कहा जाता है इसका कारण क्या है ?

थि०—'परब्रह्म' स्वयं किसप्रकारका आभास है यह जानने में नहा आसक्ता क्योंकि आभास होनेके निमित्त एकतो जिसको आभासहोवे वह जवि दूसरे—जिसकी सहायता से आभास होवे वह उपाधि अथवा शरीर—और तीसरे—जिसका आभास होवे वह वस्तु—इन तीनों अस्तित्वतोंका होना आवश्यकीय है परन्तु 'परब्रह्म, में भेद अर्थात् अद्वैतता नहींहै, उसको उपाधि अथवा शरीर धारण करनेका तैसेही उपाधि अथवा शरीर इन दोनोंका अस्तित्व नहीं है तो फिर इसदशा में किस प्रकारका आभास होसक्ता है यह मनुष्य अथवा कोई भी जीव जो उपाधिकी सहायता से 'मैंहूं' इस प्रकारके आभास को धारण करता है, उसकी समझमें यह नहीं आसकता—अर्थात 'परब्रह्म' का समस्त भान अथवा बे भानपना कहने में आता है ।

शो०—इस बातसे ऐसा समझमें आता है'' थिआसोफ़ी ' अथवा गुप्तविद्या एक मूल वस्तु के अस्तित्वको स्वीकार करतीहै

कि जो अनादि काल से है और जो कल्पना अथवा विचार में नहीं आसकती, तथा जिसको 'परब्रह्म' अथवा जरवाने अकर' कहते हैं उसही में से सृष्टि उत्पन्न होती है और नियत समय पर्यंत अस्तित्व में रहकर फिर पीछे उसही में लय होजाती है परन्तु जो सृष्टि उत्पन्न होनेके आरंम्भ में 'लागास' नामक शक्ति आस्तित्व में आती है वह स्वयंही आभास सहित हो और जो उसके आभास सेही सृष्टि का काम चलता हो तोफिर उसकोही एक ईश्वर कहने में क्या हानि है ?

थि०—वहही ईश्वर कहने में आता है क्योंकि समस्त सृष्टि में सबसे पहिले का ज्ञाता (जानने वाला अथवा आभास धारण करने वाला) वही है । और उसमेंसेही अगणितज्ञाता अथवा जवि, किरणके रूपमें पृथक होगये हैं । सबसे गुप्त अथवा छिपा पदार्थ यह शक्ति अथवा ईश्वरही है, समस्त जीव इसही शक्तिमें से पृथक होकर फिर स्वयं अपने को पहिचान उसमें मिलजातेहैं उन्हीं की मुक्ति हुई कही जाती है । ऐसी शक्तियें 'परब्रह्म' के भीतर तो अगणित हैं परन्तु ऐसा होते हुएभी ईश्वरको एकही गिनना चाहिये । तैसही वह समस्त सृष्टि के ऊपर अथवा वह उससे पृथक नहीं है परन्तु समस्त सृष्टि में रहेहुए चैतन्यका मूल

है और वह एक एक परमाणु में भी भराहुआ वर्तमान है ।

शो०—यह शक्ति किन २ नामों से पहिचानी जाती है ?

थि०—पृथक २ धर्म विज्ञानोंमें वह पृथक २ नामोंसे पुकारी जाती है 'थिआसोफिस्ट' उसको 'लागास' के नामसे पहिचानते हैं । 'लागास' यह ग्रीक भाषाका शब्द है । हिंदूशास्त्रमें इसको ईश्वर अथवा प्रत्यगात्मा व शब्दब्रह्म कहते हैं, तैसेही उसको सच्चिदानन्दभी कहते हैं । मानदीयसके धर्म में उसको अहुर मज़द कहते हैं । बुध धर्मके अनुयायी उसको अवलोकितेश्वर कहते हैं और ईसाई उसको 'वर्ड' अथवा 'वरबम' तैसेही क्रीस तास' इस नामसे पुकारते हैं ।

शो०—ईसाई 'लागास' या वर्ड कहते हैं इसका कारण क्याहै वर्ड अथवा शब्दके साथ उनका क्या सम्बन्ध है ।

थि०—जिसप्रकार मनके छुपे हुए विचारों को प्रगट करनेके निमित्त शब्दका रूप लेना पड़ता है उसही प्रकार गुप्त अथवा छिपे हुए 'परब्रह्म' 'लागास' का रूप प्रगट होता है अर्थात् वह अस्तित्वमें आता है, ऐसा होने से 'लागास' अथवा ईश्वर व अहुरमज़द शब्द रूपही है, और उससे वह 'वर्ड' अथवा 'वरबम' तैसेही शब्दब्रह्म कहाजाता है तथा जब सृष्टि का अन्त आताहै

तब 'लागास' अथवा ईश्वरका नाश नहीं होता। जिस प्रकारसे शरीर में रहाहुआ जीव जाग्रत अवस्था में 'मैंहूं' ऐसे आभासका निश्चय करता है और जब सोजाता है तब इसका विचारभी नहीं करता परन्तु उससे कुछ सोने में जीवनका नाश नहीं होता तैसेही फिर जाग्रत होतेही 'मैंहूं' ऐसा आभास करता है ' इस से उस समय फिर उसके जीवकी कुछ नई उत्पत्ति नहीं होती इसही प्रकार से 'लागास' अथवा ईश्वर कोभी समझना चाहिए अंत में सृष्टि का नाश होनेसे उसका नाश नहीं होता, परन्तु परब्रह्म के मध्य गुप्तअवस्था में वह रहता है। जब सृष्टि फिर अस्तित्व में आती है तब सब जीवों का अधूरा रहा हुआ काम फिर आरम्भ होता है। जो जीव सृष्टि के अंत होने के पहले 'ध्यान चोहान' अथवा 'आत्मशासंपदो' की श्रेणी में पहुँचते हैं वह फिर से सृष्टि के अस्तित्व में आने के पीछे 'ध्यान चोहान' की रीति सेही प्रगट होते हैं और आगे को बढ़ते रहते हैं; जीव ऐसेही मनुष्य या जानवर की दशा में पहुँचने तक उसही दशा के अस्तित्व में आता हुआ आगे को बढ़ता रहता है।

शो०—किसी समय में सृष्टि के लय होने के पीछे फिर कितने समय के उपरांत सृष्टि का अस्तित्व होता है।

थि०—जितने समय तक सृष्टि चलती रहती है, सृष्टिकेलय होने के पीछे उतनेही समय के उपरांत सृष्टिका अस्तित्व होता है । सृष्टि चलने के समयको हिन्दू शास्त्र में ब्रह्माका दिन कहा है और सृष्टि के अंत होनेके पीछे के समयको ब्रह्माकी रात कही है । तैसेही साधारण रीति से ब्रह्माके दिनको मन्वन्तर और ब्रह्माकी रातको प्रलय इन दो नामों से पुकारते हैं अतएव प्रत्येक अभ्यासी को इनदो शब्दोंका ध्यान रखना चाहिये ।

शो०—इसमें कोई सन्देही नहीं कि यह बातें सीखने योग्यहैं परन्तु इनके सीखने वाले को मांस मदिरा नशीले पदार्थों का पीनाही छोड़ देना कर्तव्य कर्म है इसका कारण क्या है ?

थि०—किसी भी मनुष्य को इस प्रकार के एकभी पदार्थके छोड़ देने का कर्तव्य कर्म नहीं है । 'सोसाइटी' के जो तीन हेतु कहेगये हैं उनमें से पहला हेतु जैसे भाई बंधी के फैलानेका है वैसाही सब धर्मों को माननीय दृष्टि से देखने का भी है ऐसा जानना प्रत्येक का कर्तव्य कर्म है, और जिसको ऐसा करना स्वीकार होता है वही 'थिआसोफिकल सुसाइटी' का सभासद होसकता है । धर्म के मिथ्या विचारोंका यह सभा बिलकुल अनुमोदन नहीं करती, ऐसेही बिना समझे अमुक पदार्थ खावे,

अमुक छोड़दे इस प्रकार की खोटी रीतियों को पकड़कर बैठ रहनाभी यह सभा नहीं सिखाती ।

'थिआसोफी' की पुस्तकों को पढ़कर समझने से मांस, शराब के वर्तने से कुछभी हानि नहीं होती, परन्तु इनका वर्ताव करने वाला गुप्त विद्या का अधिकारी नहीं होसक्ता कारण कि ऐसी तुच्छ वस्तुओं को खानेकी समान वर्ताव करने से शरीर और मनके ऊपरभी वैसाही खोटा असर पड़ता है । ऐसा नहीं है कि खाने का प्रभाव केवल शरीर के ऊपरही होवे किंतु जो सामग्री खाई जाती है उससे मनके ऊपरभी प्रभाव होता है । तथा पृथक पृथक जानवरों के मांस चाहे जिस प्रकार से पकाएगये हों परंतु तौभी उनमें का रहा हुआ अंतर खाने वाले को ज्ञात होता है अर्थात् उनमेंका रहाहुआ पृथक २ गुण पकानेसे नष्ट नहींहोता और फिर ऐसाभी जानपड़ता है कि प्रत्येक प्राणीमें जिसप्रकारका गुण अथवा विकार होता है वही उस प्राणी के मांस खानेवाले में आजाता है, इसही प्रकार जैसे २ बड़े प्राणियोंका मांस खाया जाय वैसेही वैसे उनका प्रभाव बढ़ता है उनकी अपेक्षा छोटे २ प्राणियों से न्यून होता है, उनकी अपेक्षा छोटे २ पक्षियों से और उनकी अपेक्षा छोटी २ मछलियों के खानेसे अल्प प्रभाव

होता है और उनसभी अल्प प्रभाव अर्थात सब से अल्पहानि और अधिक लाभ करनेवाली वनस्पतियें हैं। तथा मांसके ऊपर जीनेवाले और वनस्पतिके ऊपर जीनेवाले प्राणियों में अत्यंत अंतर देखाजाता है। वनस्पतिके ऊपर जीनेवाले पशु पक्षी जैसे— गाय, बकरा, मेंढा, घोड़ा, तोता, आदि के शरीर ऐसे स्वच्छ और पवित्र होते हैं कि उनके ऊपर हाथ फेरने और उनके समीप खडे रहनेकी इच्छा रहती है परन्तु इसके विपरीत मांस खाके जीनेवाले प्राणियों को जसे—बाघ, सिंह चीता, कुत्ता, बिल्ली कौआ और गीध आदि को देखो कि उनके शरीर में से दुर्गंध निकलती है और वह सदैवहीं अपवित्र रहते हैं। यहतो शरीर की दशा का अंतर हुआ परन्तु इन दोनों जाति के गुण में भी उतनाही अंतर देखनेमें आता है। मांसखाने वाले प्राणी विकारों से भरेहुए और विकराल स्वभाववाले तथा वनस्पतिके ऊपर जीने वाले प्राणी शांत स्वभाववाले देखने में आते हैं। फिर मनुष्यों के काम में आने वाले उपयोगी जीव गाय भैंस, घोड़ा, बैल, हाथी बकरा, मेंढा आदि अधिकता से वनस्पतिहीं के ऊपर जीनेवाले प्राणी हैं। इसही प्रकार से मनुष्य जाति में भी अंतर ज्ञात होता है। मांस तथा शराब आदिको काममें लानेवाले प्राणी अपने

क्रोध आदि तुच्छ आवेशोंको वशमें नहीं रखसक्के और बनस्पति से जीवनकी रक्षा करनेवाले प्राणी उनकी अपेक्षा बड़ेसे बड़े आवेशों को दाबसकते हैं और इसके प्रमाण में इतना कहनाही बहुत है कि संसार में खोटे कर्म करनेवाले मनुष्यों का बहुतसा भाग मांस खानेवाले और शराब आदि दूसरी अपवित्र वस्तुओं के पीने वाला का है; उनको दूसरों की अपेक्षा क्रोध आदि तुच्छ आवेशों का दास शीघ्रही होजाना पड़ता है तथा यहभी बात है कि मांस खाने वाले प्राणियों की राल दुर्गंध से भरीहुई होतीहै परन्तु बनस्पति खानेवाले प्राणियोंकी रालसे कुछभी दुर्गंधि नहीं निकलती और उनका मनुष्यों के साथ नेक बर्ताव भी बहुत हीहोता है । अतएव जीभके स्वाद के निमित्त मांसखाने वाले मनुष्य जो शरीरको बाहर से स्वच्छ रख और कपड़ों को इत्र आदि से सुगंधित कर अपने को पवित्र समझते हैं, यथार्थ में विचारके देखना चाहिये तो ज्ञात होगा कि उनके शरीर के भीतर कितनीही अपवित्रता भरी हुई है ।

शी०—जो नहाधोके स्वच्छ हो और स्वच्छ वस्त्रोंको पहिर के भी शरीर का पवित्र होना न कहा जावे तो शरीर की यथार्थ पवित्रताई किसे कहते हैं ?

शि०—यह सबही कोई जानता है कि शरीरको पवित्र रखने के निमित्त उसको स्वच्छ रखना और स्वच्छ वस्त्र पहिनना तथा पवित्र स्थान में रहनेकी आवश्यकता है परंतु केवल शरीरकोही बाहरसे स्वच्छ रखने और सुन्दरकपड़ों के पहिरनेसेही शरीर की समस्त पवित्रताई होगई, ऐसा समझना भूलमें भगाहुआ है। मनुष्यका नाशवंत अथवा पार्थिव शरीर इस समस्त मनुष्य का केवल सातवां भाग है, और फिर शरीरका चर्म इस समस्त शरीरका सातवां भागभी नहीं है तो फिर केवल चर्मकोही धोधा कर पवित्र रखने से समस्त शरीरकी पवित्रता किस प्रकार से कही जासक्ती है ! जब रक्त, मांस और हाड़ इत्यादि का बना हुआ समस्त शरीर स्वच्छताके परमाणुओं से बंधा हुआ होतभी समस्त पवित्र हुआ कहा जासक्ता है, और ऐसा होने के लिये मांस और शराब आदि रजोगुणी (विकारोंको उत्पन्न करने वाली) और तमोगुणी (आलस और बदीको बढाने वाली) वस्तुओं को शरीर में प्रवेश न होनेदेना चाहिये। इस प्रकारकी वस्तुओं को काम में लाने से मनुष्य के शरीर में रजोगुण और तमोगुण बढ़ता है तथा सतोगुण न्यून होजाता है, इससे उसमनुष्य का शरीर बाहर से चाहे जैसा पवित्रहो और कपडे इत्रादि सुगंधिसे सुगंधित

हों तौभी वनस्पतिके सात्विक भोजन करनेवाले रजोगुणी मनुष्यों की अपेक्षा अत्यन्तही अपवित्र हैं इसमें सन्देह नहीं है ।

जो अपनेको पारसी कहते हैं उनको अपनी बुद्धिव्यय करके इस वातपर दृढ़ विचार करना चाहिये । मनशकी (मनकी पवित्राई) गवषकी (वाणी की पवित्राई) और कुनश की (कर्म की पवित्राई) इन तीनों खंभो के ऊपर जो धर्म रचा हुआ है उसही धर्मवाले बकरे मेंढेके गलेपर छुरी फेरकर मांस खाते हैं, तैसेही मनशकी अर्थात् मनकी पवित्राई के नाश करने वाली वस्तु शराबको पीते हैं विचारना चाहिये कि ऐसी वातें बुद्धिसे कैसी विरुद्ध हैं ?

यो०—परंतु कितनेएक मनुष्यों जातो ऐसा मतहै कि जैसा वाघ सिंह आदि प्राणी स्वभाव सेही मांस खाने वाले हैं; इसही प्रकार से मनुष्य भी मांस का खाने वाला है; और फिर बड़े जानवर छोटे जानवरों को खाते हैं और बड़ी मछलियें छोटी मछलियों को खाती हैं ऐसा प्रकृतिका नियम चलाआता है, तो फिर ऐसा करनेपर इसमें हानिही क्या है ?

थि०—जानवरों की रीति भांति मनुष्योंमें नहीं लगसक्ती । एक जानवर दूसरे को मार उससे उसका भोजन छीनलेता है

तो उसके ऊपर लूटनेका अपराध नहीं लगसक्ता, परंतु जोकोई मनुष्य ऐसा करैतो वह लुटेरा गिनाजाताहै और दण्ड के योग्य होता है । इसही प्रकार बिल्ली अपने बच्चों को खाजाती है इससे उसपर प्राण नाशका अपराध नहीं लगता परंतु जो मनुष्य ऐसा करेतो वह अपराधी (खूनी) गिनाजाता है और दण्डपाता है क्योंकि भले बुरे कर्म करने की लाभ हानि बुद्धि के अनुसार ही होती है; अतएव जानवरों के नियमानुसार मनुष्य को वर्ताव करनेका श्रमकरना बुद्धिसे विरुद्ध है ।

फिर मनुष्य जाति प्रकृति के नियमानुसार मांस खाने वाली ही है या वह प्रकृति के रीत्यानुसार बनस्पतिही को खाने वाली है ऐसा तर्क करना यह दोनों एक समानही भूल से भरेहुए हैं। मनुष्य के शरीर की रचना अथवा बनावट ऐसी है कि वह मांस के खाने का स्वभाव डालने से मांसके ऊपरही जीसक्ता है और बनस्पति के खानेका स्वभाव डालने से केवल बनस्पति के ऊपर भी जीसक्ता है; यह बात सबही जानते हैं । संसारमें कितनेएक जंगली मनुष्य ऐसेभी हैं किजो मनुष्यों को भी मारके खाजाते हैं और यह काम उनकी दृष्टि में पापी और कँपकँपाहट उत्पन्न करने के बदले प्रकृतिके नियमानुसारही लगता है और हमको वही

अपनीशिक्षित मनशक्तिके लिये प्रकृतिके अभिप्राय से विपरीत और धिक्कार से भराहुआ जानपड़ता है । इसही प्रकारसे मेंढक चूहे आदि अपवित्र प्राणियों को चीनवाले प्रसन्नतापूर्वक खाते ह परंतु उनको देखतेही अपनेको कँपकँपाइट लगती है, इसही प्रकार मांस खाने वालोंको कि जो मांस खाने को उचित समझते हैं, देखतेही बनस्पति खाने वालों के अन्तःकरण, प्रकृति रीत्यानुसारही कँपकँपा उठते हैं और वह उनको धिक्कारसे भरेहुए वं दया धर्म से विपरीत ज्ञानपड़ते हैं इससे ऐसा जानपड़ता है कि प्रकृति का ऐसा कोई नियम नहीं है कि मनुष्यको अमुकपदार्थ खाना चाहिये और अमुक न खाना चाहिये । परंतु ऐसा अवश्य जानपड़ता है कि मनुष्य जैसे २ अपनी बुद्धिके अनुसार भले बुरे कां ज्ञान करता जाय वैसेही वैसे अपनी रीति भांति में भी फेरफार करता जावे यही प्रकृतिका अभिप्राय है और प्रकतिके रीत्यानुसार ही मनुष्य जाति ऐसा करती आती है । ऐसी धारणा करके बैठे रहना कि प्रकृति का अमुक अभिप्राय है अमुक नहीं अत्यन्त भूलसे भराहुआ है, क्योंकि इससे मनुष्य अपनी बुद्धि और स्वाधीनता को तोड़ता है । प्रकृति के नियमको जबतक न जाने तब तक किसी भी विषय को जो अपनी बुद्धि से निश्चय ठहराहो

प्रकृतिके नियमानुसारही मानकर उसके अनुसारही चलना उत्तम है, और बुद्धिके बढ़नेसे अथवा बढ़ानेका अनुभव मिलनेसे जब यह बात खोटी है ऐसा जानपड़े तब उसही दिनसे उसको नियमके प्रतिकूल समझके छोड़देनाही अपना कर्तव्य है; अतएव हमारे बाप दादा मांस खाते आये हैं इससे हमको भी खाना चाहिये ऐसा समझनेके बदले, मांस खाने वालोंकी अपेक्षा बनस्पति खानेवाले अच्छे हैं ऐसा बुद्धिसे निश्चय हुआहो तो मांस खाने को छोड़ बनस्पतिके ऊपरही जीना अपना कर्तव्य कर्म है; ऐसा समझना चाहिए ।

इसके अतिरिक्त एक यहभी बात मानने योग्य है कि समस्त जानवरों के संग मिलान करने से जानपड़ता है कि मनुष्य जाति की समान भोजन करने और पचाने का बहुतसा भाग बंदर को मिला है, बंदर चाहे जितना भूखा क्योंनहो परंतुवह प्रकृतिके नियमानुसार मांस नहीं खाता बरनफल और अनाजही खाकरजीता है । इस ऊपरकी बात से ऐसाभी जानाजाता है कि मनुष्य जाति को मुख्य करके फल और अनाजही खाना चाहिए ।

जो गुप्तविद्या के अभ्यासी अर्थात् अधिकारी होना चाहते हैं उनको जानना चाहिए कि पैगम्बर इत्यादि जितने गुप्तविद्याके

जानने वाले महान पुरुष होगये हैं वह इन अपवित्र बस्तुओंको खाने की रीतिपर बिल्कुल भी काम में नहीं लाये और न किसी को ऐसा करने की शिक्षाहीदी । यह बात ऐसी नहीं है कि कोई न जानसके । यह गुप्तविद्याके अभ्यास से प्रमाणित हुआ है कि मनुष्य का शरीर ईश्वर के रहने का स्थान है । अतएव शरीर को बाहरसे तैसेही भीतर से पवित्र रखने के बदले उसको मुरदा ढकने के मसालों से ढकना कैसा शोचनीय दृश्य है जो मनुष्य गुप्तविद्या सीखना चाहताहो और जो मनकी शक्तियोंको पैगम्बर इत्यादिकी शक्तियोंके समान खिलाना (प्रफुल्लितकरना) चाहताहो उसको उचित है कि वह दूसरोंका जीवलेकर मिलेहुए मांस के खाने और शराब आदि अपवित्र बस्तुओं के कि जिनके देखने सेही अन्धा होजाना पड़ता है और बुद्धिवाले बुद्धि खो बैठते हैं पीनेसे दूर होजाना चाहिए वह बात प्रत्येक अभ्यासीको स्वयंही समझना चाहिए, ऐसा नहीं है कि 'सोसाइटी की' ओरसे ऐसे कर्म के करनेको कर्त्तव्य कर्म ठहराया जावे ।

शो०—कितनेही मनुष्य कहते हैं कि यह 'मण्डली' विवाह करने के विरुद्ध है, सो किस कारण से ?

थि०—बिल्कुल नहीं इंद्रियों को अपने बश में रखने वाले

मनुष्य हज़ार में एक भी नहीं होते इससे विवाहका नकरना और अनीति का बढ़ाना यह दोनों कार्य समान हैं ।

फिर संसारी मनुष्य को अपनी स्त्री और कुटुंब के पालन पोषण करने और सुख से समय बिताने की चेष्टा करना उसका अवश्यही कर्तव्य कर्म है इससे उसके परोपकार करनेकी बुद्धि क्रमशः धीरे २ बढ़ती जाती है और अंत में वह मनुष्य संसार की भलाई की चेष्टा करना सीखता है । इसके विपरीत जो स्त्री कुटुंबसे छुटकारापाय उनसे पृथक रहता है उसका ध्यान बहुत करके अपनेही लाभके ऊपर रुका रहनेसे उसमें अपने स्वार्थपने के नीच गुणोंका बढ़जाना संभव रहता है, ऐसा होनेसे साधारण दशा के मनुष्यों कोतो गृहस्थाश्रम करना और संसार में पड़नाही अति उत्तम है । परन्तु जो मनुष्य थोड़ा बहुत कुछ भी ज्ञानवान हो, जिसको संसारी वस्तु न खींचसके, जिसको जगत की कोई भी वस्तु न भुलासके, तथा जिसने अपने समस्त जीवन को जगत की भलाई के निमित्त अर्पण कर गुप्तविद्या के अभ्यास परही लगाया हो (ऐसे मनुष्य बहुत थोड़े होते हैं) वह मनुष्य यदि ब्याह न करे तो कुछ भी अयोग्यता नहीं है परन्तु योग्यही है, क्यों कि आधा ध्यान स्त्री में और आधा ध्यान गुप्त

विद्या के सीखने में रोकना ऐसा है कि जैसे दो साहूकारों की नौकरी करना जो किसी प्रकार से नहीं होसक्ती ।

शो०—परन्तु इतना बड़ा श्रम करके गुप्त विद्या सीखने में क्या लाभ है ? संसार में सुखकी अपेक्षा दुःख अधिकता से देखने में आता है, तो ऐसे समय में दुःखके दूर करनेके निमित्त नई २ ढूढ और खोज करने के बदले थियासॉफी में ही जीवन के बिता देने में क्या लाभ है ?

थि०—सुनो—सृष्टि में जीवके ऊपर आपड़ने वाले समस्त दुखों के तीन भाग हुए हैं (१) आध्यात्मिक, (२) आधिभौतिक, (३) आधिदैविक; इसमें से आध्यात्मिक वर्ग के दुःखों में शरीर तथा मन सम्बन्धी समस्त दुःखों का समावेश होता है, दूसरे आधिभौतिक वर्ग में चोर से, सांप अथवा दूसरे विषैले जानवरों के काटने से, बाघ अथवा अन्य जंगली जानवरों से बिश्वासघात से तथा अकस्मात् से उत्पन्न हुए समस्त दुखों का समावेश होता है, और तीसरे आधिदैविक वर्गमें सूर्य से, बिजली पड़ने से, रेल से, पृथ्वी के कांपने से ठंड से, गरमी से पवन से तथा बरसात इत्यादि के उत्पन्न होने से दुःखों का समावेश होता है इन तीनों बर्गोंमें जगत के समस्त दुःख आजाते हैं ।

अब इनमें से पहले वर्ग के शरीर सम्बन्धी दुःखों के ऊपर ध्यान देनेसे जानाजाता है कि सहस्रों मनुष्य डाक्टर और वैद्य के नामसे विख्यात हैं और सहस्रों नई २ औषधियों का आविष्कार होता है तौभी ऐसे दुःख फिरसे न उत्पन्न होवें इसप्रकार का यत्न करनेकी उनको सामर्थ नहीं है । तैसेही यह भलीप्रकार से जानाजाता है कि चाहे समस्त मनुष्य डाक्टर या वैद्य का काम जानतेहों तौभी ऐसा नहीं होसक्ता क्योंकि आध्यात्मिक दुःखों में से कितने तो जन्म सेही होते हैं, जैसे कि जन्म सेही अंधापन, बहरापन, गूंगापन, लँगडापन, दीवानापन, इत्यादि कि जिनका उपाय डाक्टर अथवा वैद्यों से होही नहीं सक्ता । अब मन सम्बन्धी दुःखों में मनकी चाही हुई वस्तु का न मिलना और न चाहीहुई वस्तु का सम्बन्ध में आना, अथवा अपनी प्यारी वस्तु का खोजाना, या मित्र अथवा संगियों का मरजाना इत्यादि दुःख मुख्य हैं, इन दुःखों में से अनंत के छुटाने के निमित्त हमारे पास क्या साधन है ? कुछ भी नहीं । यदि मानलिया जावे कि डाक्टरों की दवाइयों और नई २ शोधों के होने से यह समस्त आध्यात्मिक दुःख रुक भी जावें तौभी बाघ इत्यादि जंगली जानवरों से, सांप इत्यादि विषैले जानवरों के काटने से चोर से,

विश्वासघातसे, सूर्य, की लू लगनेसे, बिजली पड़नेसे और बरसात के न्यूनाधिक होने के कारण अकाल पड़ने से जो आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख आपड़ते हैं उनको किसप्रकार से रोकना चाहिए वह वर्तमानके बुद्धिवान मनुष्यों और अपनेको सुधरे हुए समझने वालों से पूछना चाहिये।

शो०—तब आध्यात्मिक, आधिभौतिक आधिदैविक इन समस्त दुःखोंसे जगत का किसप्रकार छुटकारा होसकता है ?

थि०—केवल एकही उपाय से और वह उपाय ज्ञान है।

शो०—ज्ञान मिलने से शरीरमें रोगोंका होना,—सांपका काटना,—सूरज से लूका लगना,—या बिजली से अकस्मात भस्महोजाना इत्यादि जो दुःख अपने हाथ में नहीं है उनका आपड़ना किसप्रकार से रुक सक्ता है ?

थि०—किसी भी प्रकारके दुःख उत्पन्न होने के पीछे उसके दूर करनेका यत्न करना यह केवल आग लगने के पीछे बुझाने के यत्न करने की समान है और जिसप्रकार से लगी हुई आग चाहे जितनी शीघ्रता से बुझाई जावे परन्तु तौ भी थोड़ी बहुत हानिहुए बिना नहीं रहती इसही प्रकार उत्पन्न हुआ दुःखचाहे जितनी शीघ्रतासे शांति कियाजावे परन्तु तौभी उससे कुछथोड़ी

बहुत हानिहुए बिना नहीं रहती । फिर ऐसी अपनेमें शक्ति नहीं है कि एक समय में उपाय करके शांति किया हुआ दुःख फिरसे न होवे । जिस प्रकार भूख लगने के पीछे भोजन करने से केवल लगी हुई भूख उस समय शांति होजाती है परन्तु फिर पीछे लगती है क्योंकि भोजन करना यह लगीहुई भूखके दूर करने का उपाय है परन्तु भूख को शांत करने का उपाय नहीं वैसेही वर्तमान उपायों से केवल दुःख दूर होसक्ता है किन्तु ऐसा नहीं है कि दुःख होवेही नहीं । जब तक यह बात न जानली जावे कि सृष्टि में उत्पन्न होते हुए समस्त दुःखों का कारण क्या है तबतक दुःखका दूरहोना असम्भव है । इसका कारण शोध निकालने के बदले, अमुक दुःख होतो उसको किस प्रकार से शांत कियाजावे ऐसे उपायके ढूंढने में समयको बितावे । इस उपाय से ऐसा न समझनाकि दुःख होनेके पीछे उसके दूरकरने का उपाय व्यर्थ है अथवा उसकी इतनी आवश्यकता नहीं है, परन्तु इससे विपरीत लगीहुई आगके बुझाने जैसेही भूखके लगने के पीछे भोजन करने की जितनी आवश्यकता है उतनीही आवश्यकता उत्पन्न हुए दुःख के दूर करने की है;परन्तु ऐसाहोते हुएभी समस्त दुःखोंका कारण अवश्यही ढूंढना चाहिये क्योंकि

ऐसा करनेसे दुःखके दूर होनेका यथार्थ मार्ग मिलजाता है। संसारमें कर्म की रीतिका वर्ताव होरहा है, अर्थात् संसारमें किसी भी कारण विना कार्य उत्पन्नही नहीं होता, ऐसा होतेहुए जिस कारण से संसार में कार्य रूपी दुःख उत्पन्न होता है यदिमनुष्य ज्ञानी होतो उसी दुःख उत्पन्न होनेके कारण कोही रोककर उत्पन्न हुए कार्य रूपी आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक दुःखों में से जगत को छुटासक्ता है।

शो०—इस बातसे ऐसा समझमें आता है कि जगत में होते हुए समस्त दुःख केवल कारणोंही के परिणाम हैं, इससे कारणों को रोकने से उत्पन्न होते हुए दुःख स्वयंही रुकजाते हैं, परन्तु यह कारण क्या है सो किसप्रकार से जानेजावें ?

थि०—समस्त दुःखों का मूल कारण अज्ञानपन है। प्रकृति के नियमोंके जानकार न होनेके कारण, अथवा प्रकृति का अभिप्राय क्या है इसका कुछभी विचार होनेके कारण, तथा सत्य और असत्य क्या है, सुख और दुःख यह क्या पदार्थ हैं सुख भोगने की इच्छा रखने वाले जीव स्वयं कौन हैं, तथा यथार्थ सुखक्या है और वह किस प्रकार से मिलसकता है इसका कुछ भी विचार न होने के कारण मूर्ख मनुष्य सुख की आशा करके भ्ने

के बदले बुरा काम करता है और उसका उलटा फल होताहुआ देखकर दुखी होता है । साधारण मनुष्य के मनमें ऐसा निश्चय है कि हमने बहुत देखा है और हममें बड़ी बुद्धि है परन्तु ऐसा देखनेवाले बहुतसे मनुष्यों की आंखों में तो पट्टी बँधी हुई है अथवा वह भली प्रकारसे नींदमें पड़े हुए सोरहे हैं ऐसा कहाजाय तो ठीक होगा । क्योंकि जैसे नींद में सोताहुआ मनुष्य स्वप्नमें 'मैं कौनहूं' यह भूलजाता है और स्वप्नको ही यथार्थ समझता है, इसही प्रकार इस स्वप्नरूपी जगत में जो मनुष्य स्वयं कौनहूं और किस निमित्त उत्पन्न हुआहूं यह नहीं जानता और संसार कोही यथार्थ मान बैठा है वह निद्रामेंही अपने समय को व्यतीत करता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । अतएव जब तक गुप्तविद्या अथवा ब्रह्मज्ञान से प्रकृति के नियम और उसके अभिप्राय न जानने में आवें तबतक मनुष्य को दुःख से छूटने की आशा रखना व्यर्थ है, ऐसा जानना चाहिए ।

❀ दूसरा प्रकरण ❀

॥ सृष्टिके सातभुवन अथवा तत्व ॥

अब इसका स्पष्टी करण कीजिये कि "थियासोफी" का अभ्यास किस रीतिसे करना चाहिए ?

थि०—आरम्भमें समस्त सृष्टि सात भुवनोंमें किसप्रकार से बांटी गई है तथा उन भुवनों के साथ मनुष्योंका किस प्रकारका सम्बन्धहै यह जानना मुख्य है, इन समस्त बातोंके समझ में आनेसे थियासोफी संबंधी समस्त बातें समझने में अत्यन्त सरलता पड़ती है।

शो०—सृष्टि के सात भुवन क्या हैं ?

थि०—समस्त सृष्टि के पदार्थ अतिसूक्ष्मसे अतिघट पर्यंत मुख्य सात अवस्थाओं में बँटेहुए हैं कि जिस प्रत्येक अवस्थाको एक भुवन कहाजाता है।

शो०—पदार्थ की सात अवस्था कौन २ हैं ? साधारण रीत से तो केवल तीनही अवस्था जान पड़ती हैं प्रथम दृढ़ दूसरी प्रवाहि और तीसरी वायुरूप।

१४०—ऐसा न समझना कि पदार्थों का अस्तित्व तीनही अवस्थाओं में है । पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म से अत्यन्त घटतक सात अवस्थाओं में बँटेहुए हैं और उन प्रत्येक की दूसरी सात सात अवस्था हुईहैं; उनमेंसे सबसे नीचे अर्थात् घटअवस्थामें रहे हुए पदार्थ के जो सात विभाग हुए हैं उनमें से अतिप्रतीन दृढ़ प्रवाह और वायुरूप हैं ऐसा जानना ।

नक्शे में एक से ७ तक सात भागों से पदार्थकी मुख्य सात अवस्थाएं अथवा सृष्टि के मुख्य सात भुवन दिखाये हैं । उनमें 'सातवें' भुवन का पदार्थ उपरोक्त भुवनके साथ मिलान करने से सबसे उतरता हुआ अर्थात् घट है और ' पहले ' भुवनका पदार्थ सब से चढ़ताहुआ अर्थात् वह अत्यन्त सूक्ष्म है । इसप्रकार समस्त सृष्टि के पदार्थ सात पृथक् २ अवस्थाओं में बट गये हैं कि जो प्रकृति के सात भुवन कहे जाते हैं सबसे नीचे के भुवन को जिसमें हम रहते हैं स्थूल भुवन अथवा भूलोक कहते हैं छठवां कामलोक अथवा भुवर्लोक कहाजाता है पांचवां देवखन अथवा स्वर्गलोक, चौथा तूर्या अथवा बुद्धि का भुवन; तीसरा निर्वाण, दूसरा परनिर्वाण और पहिला महापर निर्वाण कहलाता है यह दोनों भुवन पर निर्वाण और महापर निर्वाण तो केवल

मुँहसही बालनके हैं क्योंकि वह इतने सूक्ष्म और चढती अवस्था में हैं कि उनका कुछभी विचार हम नहीं करसकते। तैसे ही मन्वन्तर के पूरेहोने के पहिले मनुष्योंका अधिक भाग केवल निर्वाणभुवन तकही पहुँच सकता है।

शो०—यह भुवन क्या हैं इसका भली प्रकारसे स्पष्टी करण कीजिये

थि०—इन सात भुवनों में सबसे नीचेका भुवन जो स्थूल भुवन कहलाता है उसके पदार्थ पीछे कहेहुए सात भागों में बंट गये हैं। चित्र में पहले नम्बर के ईथरके दृढ़ पर्यंत सात भागों से केवल भुवनके सात पृथक २ अवस्थाओंमें रहेहुए पदार्थ दिखाये हैं। नीचे से ऊपर जाने में पहले दृढ़ दूसरे प्रवाहि और तीसरी वायुरूपी अवस्थाहै इसके उपरांत चार ईथर इतनी सूक्ष्म अवस्था में रहेहुए हैं कि जो हमारी पांच इन्द्रियों (आंख नाक, कान, जीभ और त्वचा) के द्वारा नहीं जाने जासक्ते इनचार ईथरों के पदार्थ एक समान अवस्था में नहीं हैं, परंतु जिस प्रकार दृढ़ और प्रवाह तथा प्रवाह और वायु के बीच में अंतर रहता हैं। इसही प्रकार इन प्रत्येक ईथरों की दशा में भी अंतर रहता है। इन सात दशाओं में रहेहुए पदार्थ केवल स्थूल भुवनके लगावसे हैं ऐसा जानना चाहिए।

शो०—दृढ़, प्रवाह और वायु इन तीन दशाओंके पदार्थ जिस प्रकार इन्द्रियोंकी सहायता से जाने जाते हैं उसही प्रकार उपरोक्त चार ईथर नहीं जाने जा सकते इसका कारण क्या है ?

शि०—यह चार ईथर अत्यन्तही सूक्ष्म हैं इस कारण उनसे उत्पन्न होतीहुई लहरियें अथवा उनकी कंपकंपाहट पांचज्ञानेन्द्रिय (आंख, नाक, कान, जीभ और त्वचा) द्वारा नहीं जानीजासक्ती

शो०—जब इन्द्रियों की सहायता से नहीं जानी जासकती तबयह कैसे कहा जासकता है कि इन सूक्ष्म ईथरोंका अस्तित्व है

शि०—पांच इन्द्रियों के द्वारा यह सूक्ष्म ईथर तैसेही उपर भुवन नहीं जाने जासक्ते इससे यह नहीं पायाजाता कि इनका अस्तित्वही नहीं है। कारण कि हमारी पांच इन्द्रियें इतनी तुच्छ हैं कि जो वस्तुएं जानी जासकती और स्थूल वा घट हैं उनके होते हुए भी उनको वह नहीं जानसक्तीं ऐसा होनेके आठ कारण हैं;—

(१) वस्तु अत्यंत दूर होनेके कारण—जैसे आकाशमें रहाहुआ नेपच्यून नामक ग्रह अस्तित्वमें होतेहुएभीनहीं दिखाईदेताहै

(२) वस्तुके बहुतही निकट होनेके कारण जैसेकि आंखकी पलक में रहाहुआ अंजन अस्तित्वमें रहतेहुएभी नहीं दिखाईदेता।

(३) इन्द्रियों की निर्बलता के कारण जैसे कि शब्दका अस्तित्व

होतेहुए भी बहिर मनुष्य को नहीं सुन पड़ता ।

(४) वस्तु की सूक्ष्मताके कारण जैसे कि वायु में चारों ओर फैले हुए पानीके रजकण होते हुएभी नहीं जानपड़ते ।

(५) बे ध्यान पने के कारण—जैसे कि किसी का मन भ्रमित होनेके कारण भली प्रकार से कोई बात कहने परभी उस की समझ में नहीं आतीं ।

(६) किसी आवरण के बीच में आजाने से—जैसे कि किसी वस्तु और अपने बीच में दीवाल आजाने से अस्तित्व होतेहुए भी वह वस्तु नहीं दिखाई देती ।

(७) दूसरी प्रकाशित वस्तु के निकट होनेके कारण जैसे सूर्य के प्रकाश से उसके समीप का रहाहुआ बुध नामक ग्रह नहीं दिखाई देता ।

(८) एक समान वस्तुओंमें मिलजानेके कारण—जैसेकि बतखों के साथ केवल एक बतख के मिलने अथवा कबूतरों में एक कबूतर मिलजानेके कारण वहपहिचाना नहीं जासक्ता

शो०—तब फिर यह कैसे जाना जावेकि ऐसी सूक्ष्म वस्तुओं का अस्तित्व है ।

थि०—पांच ज्ञानेन्द्रियों के उपरांत मनुष्य जातिमें जो पवित्र

शक्तियें गुप्तदशा में वर्तमान हैं गुप्त विद्याके अभ्यास और पवित्रता से वह जो प्रफुल्लित होजावें तो चार सूक्ष्म, ईथर तो क्या वरन उनसे भी अधिक सूक्ष्म दशामें रहेहुए ऊपरी भुवनों के पदार्थ भी दृढ़ पदार्थों की समान भली प्रकार से देखने में आते हैं।

वर्तमान में हम केवल दृढ़, प्रवाह और वायु इनतीन दशाओं में रहेहुए पदार्थों के ही गुण, अवगुण अथवा उपयोग जानते हैं और कुछ एक जानसे भी जब विद्या के गुणों की इतनी वृद्धि हुई है तो इसके उपरांत उपरोक्त समस्त दशाओंमें रहेहुए सूक्ष्म पदार्थों के गुण अवगुण इत्यादि जानने में आवें तो अपने को कितनी एक नई शक्तियें और लाभ प्राप्त होवें, यह बात विचारने के योग्य है 'थियासोफीकल' सुसाइटी का जो तीसरा हेतु है उसके इसही अभिप्राय के कारण उसके ऊपर अपने को ध्यान डालने की कितनी आवश्यकता है यह बात सहज मेंही समझी जा सक्ती है ।

शो०—अब यह समस्त सूक्ष्म भुवन किन २ स्थानोंमें किस प्रकार से वर्तमान है इसका आप स्पष्टीकरण कीजिये ।

थि०—समस्त भुवन एक के ऊपर एक खजूर के छिल्कों की समान पर्तदार नहीं है परन्तु वह परस्पर २ अदृश्य रीतिसे

एक दूसरे में भिड़ेहुए हैं। इस बात के समझानेकी अत्यंतही आवश्यकता है, क्योंकि ऐसा करनेसे मनुष्य का बंधाव और उस का भुवनों के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध है यह सब जानने में अत्यन्त सरलता पड़ती है। इनसबके स्पष्ट जाननेके कारण हम प्रमाण की रीतिपर एक पानी वाले बादल को लें कि जिसमें तीनों दशाओं में रहेहुए पदार्थ देखने में ज्ञात हों। एक तो बादल यह दृढ़ दूसरे उसमें रहाहुआ पानी और तीसरी पानीमें रहीहुई हवा इनतीनों अवस्थाओंके पदार्थ जिसप्रकार एक दूसरे में भिड़ेहुए हैं उसही प्रकार इन सातों भुवनों को भी समझना चाहिये, नक़शे में इस प्रकार से बताते नहीं बनता इससे एकके ऊपर एक भुवनको दिखाया है परन्तु यथार्थ में ऐसा नहीं है।

शो०—यह सातों भुवन परस्पर में एक दूसरे में भिड़ेहुए हैं परन्तु अपनेको इनकी कुछभी आहट नहीं मिलती और न इनका अस्तित्वही जानपड़ता है इसका कारण क्या है?

थि०—जो पदार्थ आंखों से देख न पड़े जिसका शब्द कानों से सुना न जाय, शरीरमें लगकर जिसका स्पर्श न किया जाय जीभमें लगकर भी जिसका स्वाद न जानाजाय, और नाकसे सूंघा भी नजाय उसका अस्तित्व होतेहुएभी किसी प्रकार उसकी आहट

नहीं मिलसक्ती तैसेही उसके अस्तित्वका विचार भी साधारण दशामें नहीं होसक्ता, यह तो सहजहीमें समझा जासक्ता है ।

शो०—तब यह प्रमाण क्योंकर है कि भुवनों का अस्तित्व है ? और यह भी क्योंकर प्रमाणित है कि मनुष्यों में उसके जानने की गुप्त शक्तियें हैं ?

थि०—गुप्त विद्याके अभ्यासी यह भलीभांतिसे जानते हैं कि मनुष्य जातिमें गुप्त शक्तियें वर्तमान हैं, परन्तु साधारण मनुष्यों को तो इतना अवश्यही जानना चाहिये कि जो मनुष्य केवल पार्थिव पदार्थोंकाही बनाहुआ होता तो आजकल यूरोप में 'मेस-मेरिजम' अथवा 'हिपनाटिज़म' नाम की विद्याके आधार से जो चमत्कारिक प्रयोग कियेजाते हैं उनका स्पष्टी करण कदापि न होता । 'मेसमेरिज़' के प्रयोग तो इतने साधारण होगये हैं कि उनके यथार्थ पनेमें संदेह लाना वास्तव में अज्ञानपनाही है। 'मे-समेरिज़म' नाम की विद्याके आधार से दिव्यदृष्टि नामका प्रयोग कियाजाता है कि जिससे 'मेसमेरिज़म' से नींदमें पड़ाहुआ मनुष्य पृथ्वी के किस भाग में इससमय क्या होता है यह जानने में समर्थ होता है । यह प्रयोग पार्थिव आंखों की सहायता से नहीं होसक्ता । अथवा यूरोप में बैठे हुए अमेरिका में क्या होता है

वह पार्थिव आंखों की सहायता से नहीं देखा जासक्ता, अतएव देखनेवालों को पृथ्वी भी किसी भी दृढ़ वस्तुकी रोक नहीं वह ऐसी शक्तिको काम में लाते हैं कि जिससे दीवाल के या पृथ्वी के भी भीतर के पदार्थोंको देखसक्ते हैं, ऐसा प्रमाणित हुआ है विश्वदृष्टि के प्रयोगोंका यथार्थपना बड़े २ विद्वानों ने स्वीकार किया है (देखो जागतीकला) इस बात से प्रमाणित हुआ है; किमनुष्य जातिमें पांच इन्द्रियोंके अतिरिक्त औरभी दूसरी गुप्त शक्तियें हैं।

फिर इसके अतिरिक्त आजकल यूरोप और अमेरिकामें लाखों मनुष्य प्रेतावाहन नामकी तंत्र विद्या चलाते हैं जिसका अभिप्राय मृतक (भूतअथवाजीव) के संग संबंध करनेका है। इस वृत्तान्त के लिखने की इस समय कुछ आवश्यकता नहीं है किंतु इतना जानना तो अवश्यही है कि यूरोप के बड़े और जानकार विद्वान जो इस बातको असत्य मानते थे उन्हीं ने फिर इसके यथार्थपने को प्रगट किया (प्रेतावाहन सम्बन्धी समस्त बातोंका हितहमारी मृतक मिलाप देखो) इन प्रयोगों से कामलोक अथवा 'एस्ट्रल्प्लेन' का अस्तित्व प्रमाणित होता है।

इस तंत्रके फैलाव होने से यह बात प्रमाणित हुई है कि मरने

के पीछे जीव अस्तित्व में रहता है अब यदि कोई यह कहे कि मरने के पीछे कुछभी नहीं है तो वह जंगलीही कहा जायगा। यूरोप और अमेरिका में दोचार नहीं वरन लाखों मनुष्यों से प्रेतावाहन का यथार्थपना प्रमाणित हुआ है अतएव इसके ऊपर संदेह लाने के पहिले इस विषय के ग्रंथो को पढ़ इसकी खोज करना प्रत्येकका कर्त्तव्य कर्म है।

शो०—' मेसमेरिज़म ' और ' प्रेतावाहन ' यह गुप्त विद्या कहलाती हैं या नहीं।

थि०—'मेसमेरिज़म' यह गुप्त विद्याका एक तुच्छभागहै जिस में माथा मारने की कुछ आवश्यकता नहीं। जो राजयोगी होते हैं उनको 'मेसमेरिज़म' के प्रयोग करनेकी शक्तियें स्वयंही प्राप्त होजाती हैं। प्रेतावाहन तंत्रविद्या है और इसको भी यदि वाममार्गी तंत्र कहाजाय तो ठीक है क्योंकि उससे कुछ मुक्ति मिलने अथवा जगतमें भलेहोनेका साधन नहीं बनसक्ता इतनाही नहीं वरन उसमें हाथ डालनेसे हानिके अतिरिक्त लाभतो कुछ होताहीनहीं

शो०—इस बातके अतिरिक्त उपरोक्त भुवनों का अस्तित्व होनेका और भी कोई कारण कहिये।

थि०—जब किसी प्रकार का शब्द होता है तब हवा में

लहरियें उत्पन्न होती हैं कि जिनके कानके ऊपर पडनेसे उनमें के परदे लहराते हैं और उससे उत्पन्न हुए लगाव को हम शब्द के नामसे पुकारते हैं । कान यह शब्द सुननेका हथियार है अतएव इस हथियार में जितनी सीमा पर्यंत शब्द सुनने की शक्ति होती है उतनीही सीमातक के हुए शब्द को हम सुन सक्ते हैं जैसे आकाश में अमुकस्थान पर कोई तारा है या नहीं इसके जानने के निमित्त ज्योतिर्वेत्ता का समस्त आधार उसकी दूरबीन के ऊपर रहता है, तैसेही अपने आस पास शब्द का अस्तित्व है या नहीं, यह जाननेका समस्त आधार अपने शब्द सुनने के हथियार कानके ऊपर है । अब जिस प्रकार अमुक दूरबीनके द्वारा अमुक सीमातक के रहेहुए तारे दिखाई देते हैं परन्तु उससे दूरका दूसरा तारा होतेहुए भी नहीं जानपड़ता, वैसेही कान के द्वाराभी नियत सीमातक काही शब्द सुनाई देता है । जब ईथर में लहरियें उत्पन्न होती हैं तब उसकीही समान हवा में भी लहरियें उत्पन्न होती हैं और उसका प्रभाव शब्दकी भांति कानके द्वारा जानने में आता है । हवामें जैसे २ एक सेकण्ड के भीतर शीघ्रतासे अथवा बहुतसी लहरियें उत्पन्न होती हैं वैसेही अधिक चढ़तेहुए स्वरका शब्द उत्पन्न होता है और

जब हवामें अत्यन्तही न्यून संख्याकी अथवा धीरेसे लहरियें उत्पन्न होती हैं तब शब्द अत्यन्तही उतरते स्वरका होता है जो अत्यंतही उतरतेहुए स्वरका शब्द हम सुन सक्ते हैं वह हवामें एक सेकण्ड में (३२) लहरियों के होने से होता है । तैसेही कान के द्वारा जो अत्यन्तही चढ़तेहुए स्वरका शब्द हम सुनते हैं वह हवामें एक सेकण्ड के भीतर ३२७६८ लहरियों के उत्पन्न होने से होता है । इस प्रकार केवल ३२ से ३२७६८ पर्यंत लहरियों के उत्पन्न होने से जो शब्द होता है उसकोही कानरूपी हथियारके द्वारा सुनाजासक्ता है । कितने एक जानवर इसकी भी अपेक्षा शीघ्रता से उत्पन्न हुई लहरियों चढ़तेहुए स्वरके शब्द को सुन सक्ते हैं । अब जो हवा एक सेकण्ड के भीतर ३२ से कम लहरियें उत्पन्न होवे तो शब्द इतने उतरते हुए स्वर का होता है कि उसके साथ कान के परदे का संयोग न होने से उससे शब्दका अस्तित्व होतेहुएभी नहीं सुनाई देता इसके विपरीत एक सेकण्ड के भीतर ३२७६८ से अधिक लहरियोंके ईथर में उत्पन्न होने से शब्द इतने चढ़तेहुए स्वर का होता है कि उससे उत्पन्न हुई तीक्ष्ण लहरियें इतनी शीघ्रतासे कान के परदे को नहीं हिलासक्तीं, इसही से शब्द अस्तित्व में

होतेहुए भी नहीं सुनाई देता । यह बात सबही जानते हैं । बाजे में अत्यन्तही उतरतेहुए स्वरका शब्द तैसेही अत्यन्त चढ़तेहुए स्वरका शब्द सुननेमें नहीं आता इसका कारणभी यही है । इस बातसे ऐसा जानपड़ता है कि किसी विशेष दशामें शब्द काअस्तित्व होतेहुएभी कानकी सहायतासे वहनहीं सुनाजासक्ता

इस बात के भली प्रकार स्पष्टीकरण करने के कारण हम प्रसिद्ध सर क्रुक्स के किएहुए शोध का कुछेक सार नीचे लिखते हैं । उसके कहने के अनुसार जो ३२७६८ के बदले ईथरमें एक सेकंड के भीतर १०४८५७६ से ३४३५९७३८३६८ लहरियें उत्पन्न हुई मानीजावें तो हवामें, इतनी शीघ्रता होनेके कारण लहरियें उत्पन्न होसक्तीं और ईथरमें होतीहुई इनलहरियो से जो चढ़तेहुए स्वरका शब्द उत्पन्न होता है वह कानोंसे नहीं सुना जासक्ता, परन्तु इन लहरियोंका प्रभाव विजलीकी किरणों के समान जानने में आता है । इससे बढ़कर ईथरमें एक सेकंड के भीतर ३४३५९७३८३६८ से ३५१८४३७२०८८=८३२ तक लहरियें उत्पन्न होवें तो हवामें कौन २ शब्द और प्रकाश अथवा रंगउत्पन्न हुए हैं वह कान और आंखके द्वारा नहीं जाने जासक्ते । इससे बढ़कर जब एक सेकण्ड के भीतर ईथर में

३५१८४३७२०८८८३२ से १८७५०००००००००००० तक लहरियें उत्पन्न होती हैं तब उसकी सीमामें रही हुई साधारण दृष्टिसे देख पड़नेवाला समस्त प्रकाशभी देख पड़ता है, परन्तु उसके सम्बन्धका तीक्ष्णशब्द नहीं सुनपड़ता। इससेभी आगे बढ़करजबईथरमेंएकसेकण्डकेभीतर४५०३५९९६२७३७०४९६ से २८८१२०३७६१५१७११७४४ तककी लहरियें उत्पन्न होती हैं तब उससे किस २ प्रकारके शब्द और किस प्रकार के प्रकाश अथवा रंग इत्यादि उत्पन्न होते हैं वह कुछभी इन्द्रियों के द्वारा नहीं जाने जासक्ते। और इससे भी बढ़कर आगे जब ईथरमें एकसेकण्डके भीतर २८८२३०३७६१५१७११७४४ से लगाकर २३०५७६३००९२१३६६३८५२ तक लहरियें उत्पन्न होती हैं तब वर्तमानमें शोधकर निकाली हुई 'अक्सरेज़' नामक किरण उत्पन्न होती है। यहांपर यह एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि साधारण दृष्टि से देखपड़ने वाले प्रकाश का जिसप्रकार से सम्बन्ध है वह सम्बन्ध ईथर में इतनी शीघ्रता से होतीहुई लहरियोंका नहीं है, जैसे साधारण प्रकाशकी किरणें किसी भी वस्तु के ऊपर पड़कर उसके ऊपर से प्रतिबिंब के रूप से पीछे को लौटती हैं ऐसा होने के बदले, यह अति शीघ्रता की

लहरियों से उत्पन्न हुई किरणें नकर (दृढ़) वस्तु के भीतर प्रवेशकर मक्ती हैं और इसहीकारण जिनके स्वयं गुप्तशक्तियोंके द्वारा ईथरमें होतीहुई सूक्ष्म लहरियोंका भानहोता है वहदृढ़वस्तु के आरपार देखसक्ते हैं । इसही शक्तिको विश्वदृष्टि कहते हैं।

इस बात से भुवनों के सम्बन्ध में इतनाही जानना है कि जो इन्द्रियों के द्वारा केवल अमुक सीमातक कीही होतीहुई लहरियें जानने में आती हैं और उससे उनके सम्बन्धका शब्द रंग, प्रकाश और आकार इत्यादि उत्पन्न होता है तथा इसके अतिरिक्त दूसरा कुछभी नहीं होता ऐसा हम उतावली से मान बैठे हैं परन्तु ऊपर के कहे हुए अनुसार पदार्थ में होतीहुई अगणित भांति की सूक्ष्म लहरियों के जानने को अपनी इन्द्रियोंमें शक्ति न होनेसे असंख्य भांति के शब्द, रंग, प्रकाश और आकार इत्यादिका अस्तित्व होतेहुएभी हमारे जाननेमें नहीं आता, ऐसा माननेका हमको दृढ़ कारण मिलता है और इसही रीतिसे वर्तमान 'सायंस' (पदार्थ विज्ञान) के द्वारा भी उपरोक्त भुवनोंके अस्तित्वका दृढ़ प्रमाण पाया जाता है ।

अब इसही बातका एक औरभी प्रमाण अपने जानने योग्य है कि जब एक अंधेरे घरमें एक कमरेके भीतर भलीप्रकारसे अंधेरा

रखकर उसमें से सूरज की एक सफेद किरण को आनंद तब सफेद किरणका 'प्रीसम' नामक कांच में फैलाव होता है इससे नीले से लाल पर्यंत सात पृथक २ रंगकी किरणें दिखाईदेती हैं। इससे ऐसा जानाजाता है कि सूरज की एक सफेद किरण इन सात रंगों की किरणों के साथ मिलकर बनी हैं।

इस बात की खोज होनेके पीछे बहुत शताब्दियों तक ऐसाही मानाजाता था कि 'प्रीसम' में से सफेद किरणका फैलाव होतेही केवल सात रंगों की किरणें पृथक होजाती हैं, परन्तु आजसे सौ वर्ष के पहले 'सायंस' के द्वारा यह निश्चय किया गया है कि नीले रंगकी किरण के ऊपर और लाल रंग की किरण के नीचे दूसरी अदृश्य किरणों का अस्तित्व होता है कि जिनका प्रभाव अथवा लहरियें आंखों के द्वारा जानने में नहीं आतीं। इससे उनका अस्तित्व होते हुए भी हम उनको नहीं जानते। यह अदृश्य किरणें अति नीली और अति लाल के नामसे जानने में आती हैं। अदृश्य होतेहुए भी उनका अस्तित्व है ऐसा प्रमाणित हुआ है क्योंकि अंधेर रंग में लाल किरण के नीचे जहां देखने से केवल अंधेराही जानपड़ता है वहां 'थरमामीटर' पकड़ने से उसकी शीतोष्णता में घटती बढ़ती होती है, तैसेही नीले रंगकी

किरण के ऊपर जहां देखने से केवल अंधेराही जानपड़ता है वहां 'फोटोग्राफ' की 'प्लेट' रखने से मानों वह उजालेहीमें खुली हो ऐसा उसके ऊपर प्रभाव होता है। जैसे सौ वर्ष पहिले इन सूक्ष्म किरणों के अस्तित्व की अपने को जानकारी न थी ऐसही इन सूक्ष्म किरणों के अतिरिक्त और भी दूसरी सूक्ष्म किरणें हो कि जिनके अस्तित्व को हम नहीं जानते तो इसमें कोई संदेह की बात नहीं है। कारण कि जिस स्थान पर एक प्रकार की किरणें दिखाई देती हैं वहां दूसरी दो प्रकार की किरणें नहीं दिखाई देतीं यह निर्बलता केवल अपनी आंखों ही की है। इस बात से जानना चाहिये कि इन्द्रियों के द्वारा जो कुछभी जानाजाता है वह अस्तित्वमें रहीहुई समस्त वस्तुओं का एक तुच्छ भाग है, क्योंकि पदार्थ ऐसी भी सूक्ष्म दशामें रहे हुए हैं कि जो इन्द्रियों से नहीं जाने जासकते; इसही कारण ऐसा प्रमाणित होता है कि उपरोक्त भुवनोंको इन्द्रियोंकी सहायतासे न जान सकने कारण उनका अस्तित्व न होना नहीं कहा जासकता केवलअपने इन्द्रियोंकी निर्बलता सेहीवह नहींजानेजाते

शो०—जब यह भुवन अपने जानने में नहीं आते तब उनके साथ अपना क्या संबंध है?

पि०—समस्त भुवनों के साथ अपना बहुत ही निकट का सम्बन्ध है, परन्तु यह जानने के पहिले गुप्तविद्या के आधारसे मनुष्य के भेद समझने की आवश्यकता है । इस समय भवन सम्बन्धी इतनी ही बात ध्यान में रखनी चाहिये कि जैसे स्थूल भुवन अनेक प्रकार के जीवों से परिपूर्ण है उसही प्रकार उपरोक्त भुवन भी नानाप्रकार के जीवोंसे परिपूर्ण हैं । जिस प्रकार स्थूल भुवन अपना संसार है उसही प्रकार उपरोक्त भुवन भी वहां बसते हुए जीवोंकी दुनिया है । वह खाली नहीं हैं । पृथक २ जाति के प्राणियों से परिपूर्ण यह भुवन भी परस्पर मिड़ेहुए हैं, ऐसा जानना चाहिये । दूसरी यह बात ध्यान में रखना अवश्य है कि इन भुवनों में मुख्य दो अंतर हैं; पहिला अंतर यह है कि नीचेकी अपेक्षा ऊपरी भुवनों के पदार्थ अत्यन्तही सूक्ष्मदशा में रहेहुए हैं, और दूसरा अंतर यह है कि जो पदार्थ जैसी २ अत्यन्त सूक्ष्म दशा में आते जाते हैं वैसे २ चैतन्य शक्ति का बल अत्यन्त प्रगट होता जाता है और जैसे २ पदार्थ घट हालत में आते जाते हैं वैसेही वैसे उनकी चैतन्य शक्ति अत्यंत न्यून प्रगट होती है; इसका कारण यह है कि चैतन्य के प्रगट होने में पदार्थों से जितनी रोक होती है उतनी सूक्ष्म पदार्थोंसे नहीं

होती। सूक्ष्म पदार्थ सहज सेही भांति २ के आकार धारणकर सक्ते हैं अतएव उनमें का रहा हुआ चैतन्य अत्यन्त बल से प्रगट होसक्ता है। ऐसाही होनेके कारण बर्फ की अपेक्षा पानी और पानी की अपेक्षा भाफ के द्वारा बहुत से २ काम होते हैं।

शो०—चैतन्य और पदार्थ में अन्तर क्या है? और उसका एक दूसरे के साथ क्या सम्बन्ध है?

थि०—पदार्थ के चलायमान करनेवाली शक्तिही चैतन्य है। चैतन्य और पदार्थ सब स्थानों में साथ ही रह सक्ते हैं, अथवा ऐसा कहाजाय कि एक बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है। ऐसा नहीं है कि वह एक दूसरे से पृथक होसकें, जहां पदार्थ होगा वहां चैतन्य होनाही चाहिये, तैसेही जहां चैतन्य होगा वहां पदार्थ भी होनाही चाहिए चैतन्य और पदार्थ दोनों प्रत्येक परमाणु में भी साथ रहेहुए होते हैं। जिस प्रकार तिलमें तेल रहता है तथा जैसे खारीपानी में नमक रहता है उसही प्रकार पदार्थ में भी चैतन्य रहता है। चैतन्य के प्रगट होने अथवा बाहर होनेका आधार केवल पृथक् २ भुवन तैसेही पृथक २ वस्तुओं के पदार्थों के घटकी सूक्ष्म अवस्था के ऊपर है।

चैतन्य और पदार्थ का सम्बन्ध अंधे और लँगड़े मनुष्य की

समान है। चैतन्य लँगड़े मनुष्य की समान है। आंखें देखती हैं कि इस मार्ग से जाना है परन्तु विना पैरों जाया नहीं जाता, तैसेही पदार्थ अन्धा है. अतएव पैर होते हुए भी नहीं चलसक्ता इससे जबतक अन्धे के कन्धे के ऊपर लँगड़ा बैठकर उसको मार्ग न दिखावे तबतक वह दोनोंही नहीं चल सकते ऐसे ही चैतन्य को पदार्थ के उपाधि की आवश्यकता पड़ती है और पदार्थ को चलायमान होने के कारण चैतन्य की भी आवश्यकता है। इन दोनों को हिंदुशास्त्र में पुरुष और प्रकृति कहते हैं। चैतन्य को पुरुष और पदार्थ को प्रकृति कहा है। चैतन्य और पदार्थ के निमित्त सदैव पुरुष और प्रकृति यह दोनों शब्दही साधारण रीति से काम में लाये जाते हैं।

शि०—तीसरे भुवन को स्वर्ग अथवा देवखन कहाजाता है, परन्तु जब सब भुवन एक में ही मिलेहुए हैं तब जहां हम रहते हैं वहीं स्वर्गभी है, ऐसा ठहरता है।

थि०—निश्चयही बात ऐसी है इसमें संदेह नहीं। स्वर्ग अथवा देवखन किसी पृथक् स्थान में नहीं है। पृथ्वी गोल है, उसमें ऊपर नीचे कुछ भी नहीं है। स्वर्ग का जाना कुछ ऐसा नहीं कि जैसा पृथ्वी के किसी दूर देश अथवा काशी से बम्बई

का जाना होवे । स्थूल देह अथवा शरीर का अस्तित्व होने से अपने को भुवन काही आभास होताहै इस देहके गिरने अथवा मरने के पश्चात् अपने को तीसरे भुवनका आभास होता है, उसकाही नाम स्वर्ग है । पृथ्वी में से स्वर्गका जाना मानो एक प्रकार के आभास को छोड़ उससे ऊंचे प्रकार के आभासका स्वीकार करना है । स्वर्ग और नर्क यह किसी अमुक स्थान के नाम नहीं हैं परन्तु पृथक्‌ पृथक्‌ भुवनों में जीवके ऊपर होती हुई पृथक्‌ २ अवस्थाओं का नाम है ऐसा समझना ।

शो०—प्रत्येक भुवनके जो सात विभाग कहे जाते हैं उनके सम्बन्ध में जानना चाहता हूं वह क्या हैं ?

थि०—स्थूल भुवन के पदार्थ दृढ़ से उस पहिले वर्ग के ईथर पर्यंत सात दशाओं में बँटेहुए हैं; इसमें की निचली दशाके अर्थात् नक्कर (दृढ) प्रवाह और वायु रूप में रहेहुए पदार्थ अगणित आकार, रंग और गुणों को धारण किये हैं, जैसे कि नक्कर यह केवल एकही अवस्था का पदार्थ है परन्तु उसमें की सोना, चांदी, तांबा, सीसा, लोहा, लक्कड़ी, पत्थर इत्यादि असंख्य वस्तुएं पृथक २ रंग, रूप और गुणोंको धारण किये हुए हैं,

ऐसेही प्रवाह यह एकही अवस्थाका पदार्थ है परन्तु उसमें के तेल, दूध और प्रत्येक वनस्पतियों के रस इत्यादि में पृथक २ रंग, रूप और गुण आजाते हैं, ऐसेही वायुको और और भी उपरोक्त अवस्थाओं को समझना। परन्तु जो पहिले नंबरका ईथर कहाजाता है उसमें पृथक पृथक रंग, रूप और गुण नहीं हैं, परन्तु उसके समस्त परमाणु एक समानही होनेसे वह सब स्थानों में एक समानही अवस्था में रहते हैं । इतनी बात ध्यानमें रखने के पीछे यह जानना है कि जिस प्रकार से बरफको पानीके रूप में और फिर भाफके रूपमें अग्नि अथवा ऊष्णताकी सहायतासे लासक्ते हैं उसही प्रकार इस स्थूल भुवन के ऊपर किसी भी अवस्था हालत में रही हुई वस्तुको किसी विशेष रीति से पहिले वर्ग के ईथर की दशामें लासक्ते हैं इसका कारण यह है कि स्थूल भुवन की समस्त अवस्थाओं में रही हुई वस्तुएं केवल पहिले वर्ग के ईथर केही परमाणुओं की पृथक २ रीति की बनावट और गठन से बनी हुई हैं । अतएव जैसे बर्फ को भाफ के रूप में लासक्ते हैं उसही प्रकार प्रत्येक बस्तुको पहिले वर्ग के ईथर की अवस्था में लासक्ते हैं, और जैसे भाफ को ठंढ की सहायता से फिर बर्फ के रूप में लासक्ते हैं उसही प्रकार विपरीत रीति

से उसही ईथर के किसी भी पदार्थ को द्रव पदार्थ की अवस्था में लासकते हैं इस बातके ध्यान में आतेही कीमिया का ध्यान समाये हुए मनुष्यों को भलीभांति उसका वृत्तांत प्रगट होजायगा। प्रकृति के नियमों से अनजान होकर भी अमुक बात का होना असम्भवहीं है अथवा उसके मानने वाले विक्षिप्त हैं ऐसा बिना विचार मान बैठना बुद्धि से विरुद्ध है । किसी भी अल्प मूल्य वाली धातुको उच्च मूल्य की धातु के रूप में बदलने के प्रयोग कोही कीमियां कहते हैं, और वह गुप्त विद्या के आधार से होसक्ती है । स्थूल भुवन के समस्त पदार्थ पहिले वर्ग के ईथर केही परमाणुओं के पृथक् २ गठन से बनेहुये हैं इस कारण किसी भी ठोस पदार्थ को किसी विशेष रीति से पहिले वर्ग के ईथर की अवस्था में लाय फिर पीछे विपरीत क्रियाओं से उसही ईथर को दूसरे किसी भी ठोस वस्तु के रूप में लासक्ते हैं । अतएव गुप्त विद्या के जानने वाले को तांबे का सोना बनाना या पारे की चांदी इत्यादि करना अथवा स्थूल भुवन की किसी भी वस्तु को दूसरी किसी वस्तु के रूप में बदलना कुछभी कठिनता की बात नहीं है ।

इसके अतिरिक्त भुवन सम्बन्धी दूसरी एक बात और भी

ध्यान रखने योग्य है और वह यह है कि अस्तित्व में आई हुई समस्त सृष्टि के सात भुवनों में बंटजाने के कारण सब स्थानोंके इन सात भुवनों में सब से चढ़ती अवस्था के पदार्थ रहते हैं। जैसे स्थूल भुवन के ऊपर पहिले नम्बरका ईथर यह सबसे चढ़ती हुई अवस्था का पदार्थ है तैसेही ऊपरी भुवनों के ऊपर भी उनके सात विभागों में सब से ऊपरी भाग का पदार्थ सब से चढ़ती हुई अवस्था का पदार्थ है, और इन सब भुवनों के अति-सूक्ष्म अथवा सबसे चढ़ती अवस्था के पदार्थ इन्हीं सात भुवनों के स्वयं पदार्थ हैं कि जो समस्त सृष्टि के सब स्थानों में परस्पर भिड़ेहुए हैं। परन्तु इन प्रत्येक भुवनों के जो निचली छह अवस्थाओं के पदार्थ हैं वह तो केवल विशेष २ स्थानोंमेंही ग्रहों और ताराओं की समान अवस्था में हैं, जैसे कि पृथ्वी के गोले में ठोस, प्रवाह और वायु तैसेही समस्त ईथर भी हैं परन्तु इस गोले की सीमा के बाहर ठोस, प्रवाह, वायु तैसेही दूसरे निचले ईथर इत्यादि कुछभी नहीं हैं परन्तु शून्य स्थान दिखाता है उस शून्य स्थान में जैसे पहले नम्बर का ईथर है तैसेही ऊपरी भुवनों केभी सब से चढ़ती अवस्था के पदार्थ रहते हैं।

शो०—धरातल के ऊपर विशेष सीमा पर्यंतही फिरती हुई

हवा है और उसके उपरांत कुछ भी नहीं है ऐसा कहने में आता है यह सत्य है या नहीं ?

थि०—पृथ्वी के ऊपर कुछ मीलों तकही फिरती हुई हवा है यह सत्य है, किन्तु उसके ऊपर केवल शून्य स्थान है यह बात असत्य है, क्योंकि जो ऐसाही हो तो सूर्य इत्यादि तैसेही दूरके ग्रह न दीख पड़े, जब प्रकाश की लहरें सूर्य इत्यादि की ओर से आकर आंख के ऊपर पड़ती हैं तभी वह अपने को दिखाई देते हैं, और जो अपने व उनके बीच में केवल शून्य स्थान हो तो प्रकाश की लहरें बिना किसी उपाधि के आधार के आही नहीं सकतीं और सूर्य इत्यादि तारामी अपनेको न दीखपड़ें। यह ऊपरसे प्रमाणित होता है कि प्रकृतिमें शून्यस्थान कहींभी नहीं है वरन सबही स्थानोंमें सातों भुवनों के अतिसूक्ष्म पदार्थ वर्तमान हैं

भुवन सम्बंधी इतनी बातोंको ध्यान में रखने से मनुष्य का बनाव, अवतार की रीति, मरने की पीछे की अवस्था, कर्म, भुवलोक इत्यादिकी बातें आदि सहलता से समझ में आसक्ती हैं, अतएव जिन २ बातों को हम कहगये हैं उन सबके स्मरण रखने में सरलतापड़े इससे उनका कुछेक सार स्पष्ट २ यहां कहते हैं।

(१)— समस्त सृष्टि सात भुवनों में बँटीहुई है ।

(२)—प्रत्येक भुवन के दूसरे सात २ विभाग हुए हैं ।

(३)—नीचेके भुवनों की अपेक्षा ऊपरी भुवनों के पदार्थ बड़े और अत्यन्त सूक्ष्म हैं ।

(४)—स्थूल भुवन की अपेक्षा सूक्ष्म भुवनों के ऊपर चैतन्य अधिक प्रगट अवस्था में रहता है ;

(५)—सातों भुवनोंको स्थूलभुवन, कामलोक, देवखन, बुद्धिकनिरवाण, परनिरवाण और महापर निरवाण कहते हैं ।

(६)—स्थूल भुवन की समान ऊपर के भुवन भी पृथक २ स्थितिके प्राणियों से परिपूर्ण हैं ।

(७)—वहएक के ऊपर परतों की समान नहीं हैं वरन एक में एक अदृश्य रीतिसे भिड़ेहुए हैं ।

(८)—ऊपर के दोभुवन पर निरवाण और महापर निरवाण के अत्यन्त चढ़ती स्थिति में रहने से इस मनवनतर के अधिकतर मनुष्योंको उनका आभास नहीं होता केवल निरवाण तक के ही पांच भुवनों का उन्हें आभास होता है ।

(९)—स्थूल भुवन के सात विभागोंमें पहले नम्बर के ईथर के समस्त परमाणु एकही समान होनेसे तैसेही समस्त स्थूल भुवन के ईथर के परमाणु पृथक २ गठन से बने होनेके कारण किसीभी ठोस पदार्थ को ईथर के रूप में लासक्ते हैं फिर उसीको किसी दूसरे पदार्थ के रूप में भी बदल सक्ते हैं ।

(१०)—समस्त सृष्टि सात भुवनों में बँटगई है अतएव कही भी शून्य स्थान नहीं है इन सातों भुवनों के सब से चढ़ती हुई अवस्था के पदार्थ सब स्थानों में हैं ।

❀ तीसरा प्रकरण ❀

❀ मनुष्यका गठन. ❀

शो० मनुष्य का गठन पश्चमी विद्या के आधार से भलीप्रकार जानागया है तो फिर गुप्तविद्या के आधार से जानना क्या ?

थि०—पार्थिव अथवा नाशवन्तका गठन जानने से मनुष्यका गठन जानना नहीं कहा जासक्ता। प्रकृति में मनुष्यजाति क्यों अस्तित्वका भोग करता है और किन नियमों से उसकी उत्पत्ति स्थिति और मरण होता है यह सब अतिरिक्त गुप्तविद्या के और किसीसे नहीं जाना जासक्ता। शरीरकी रचना चाहे जैसी सूक्ष्मता से जानने में आवे परन्तु तौभी मनुष्य स्वयं कौन है इसका परिचय नही मिलता, क्योंकि शरीर यह कुछ स्वयं मनुष्य नहीं है परन्तु केवल उसका खोखला अथवा रहनेका घर है। इस शरीर के भीतर 'मैं' ऐसा जो शब्द करने वाला स्वामी है वही यथार्थ मनुष्य है; इससे शरीर कोही अज्ञान पने से मनुष्यमान बैठना

किसी घर को किरायेदारकाही समझने की समान है। मनुष्य की रचना अद्भुत है, परन्तु गुप्तविद्या के अभ्यासियों के अतिरिक्त दूसरे को इसका वृत्तान्त ज्ञात नहीं है 'अय मनुष्य तू स्वयंही अपनेको पहिचान' ऐसा जो बड़े २ फिलासफरों (वैज्ञानिकों) ने निश्चय किया है उसका मूल साधारण मनुष्योंके जानने में नहीं आता। जगतमें सबसे उत्तम और सबसे छिपाज्ञान मनुष्य स्वयं कौन है यह जानना है, क्योंकि ऐसा जाननेसे सब कुछ जाननेमें आजाता है। समस्त सृष्टि और ईश्वर कौन है वह सब स्वयंही जानने में आजाता है। एकही वस्तुके ज्ञान होनेसे समस्त वस्तुओंका ज्ञान होजाय ऐसी जो वस्तु है वह स्वयं मनुष्यही है अतएव इसके ही जानने में अपनी बड़ी विजय है इसमें संदेह नहीं।

शो०—तब मनुष्यका बनाव किसप्रकार का है, उसका गुप्त विद्या के आधार से स्पष्टी करण कीजिये।

थि०—मनुष्य सात तत्वोंका बना हुआ है ऐसा गुप्तविद्या सिखाती है। अर्थात् यह कि सात पृथक् २ अवस्थाओं में रहे हुए पदार्थ उसके बनाव में आये हैं। इन सातों मेंका एक दीख पड़ता हुआ तत्व तो नाशवन्त शरीरही है और वह भी सब से

तींचे का तत्व है; पीछे उसके मांस, लोहू, अस्थि इत्यादि चाहे जितने भाग करो, परन्तु उसका उनके साथ कुछभी सम्बन्ध नहीं है। गुप्तविद्या के आधार से समस्त मनुष्य सात तत्वों में बँटा हुआ है और वह नीचे के अनुसार हैं।

अमर तीन तत्व { ७ आत्मा, ६ बुद्धि, ५ मनस

नाशवन्त चार तत्व { ४ काम, ३ प्राण, २ छायाशरीर, १ स्थूल शरीर

इन सात तत्वों में के निचले चारतत्व मनुष्य जातिमें तैसेही जानवरों में प्रगट अवस्था में रहेहुए हैं परन्तु ऊपर के तीन तत्व अबतक साधारण मनुष्यों में भलीप्रकार से प्रगट नहीं हुए

शो०—इन तत्वों का भलीप्रकार से स्पष्टीकरण कीजिये।

थि०—इन तत्वों की बनावट में जो पदार्थ आये हैं वह पृथक २ भुवनों के सम्बन्ध से हैं (देखो चित्र २ प्रकरण दूसरा)

(१) स्थूल शरीर स्थूल भुवन के निचले तीन अवस्थाओं में रहेहुए दृढ़, द्रव और वायु का बना हुआ है।

(२) छाया शरीर स्थूल भुवन के ऊपरी चार ईथरों का बना हुआ है।

(३) प्राणतत्व सूरज में से प्रगट होकर सब वस्तुओं का पोषण करता है; और वह शरीरमें तैसेहीं सब पदार्थों में वर्तमान है। इस प्राणतत्व के द्वारा अपने सब तत्व एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं।

(४) क़ामतत्व, ईथरों की अपेक्षा सूक्ष्म जो काम लोक के पदार्थ हैं उनका बना हुआ है।

(५) मनस (जो यथार्थ मनुष्यहै) उसके पदार्थ देवखानिक भुवन के सम्बन्धी हैं।

(६) बुद्धिके पदार्थ बुद्धिक भुवन के सम्बन्धी हैं।

(७) आत्मा सर्वव्यापक पुरुषकी बुद्धिमें पड़ती हुई किरण है

शो०—मनुष्य के तत्वों के साथ पृथक २ भुवनों का क्या सम्बन्ध है ?

थि०—जिसप्रकार सब से नीचे का तत्व जो स्थूल शरीर है उसके द्वारा जीव स्थूल भुवन के सम्बन्ध में आसक्ता है अथवा उस स्थूल भुवन के ऊपर शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध

इनका अस्तित्व है ऐसा स्थूल शरीर में रही हुई इन्द्रियों द्वारा जाना जासक्ता है, इसही प्रकार ऊपरी तत्वों की सहायता से जीव ऊपरी भुवनों के सम्बन्ध में आसक्ता है और उनके अस्तित्व का उसको भान होता है।

शो०—यह ऊपरी भुवनों के सम्बन्ध में किस प्रकार से आसक्ता है?

थि०—भुवन पृथक् २ स्थान न रोककर एक ही स्थान में भिड़ हुए हैं तथा मनुष्य के तत्व भी उसही प्रकार हैं अतएव जीव का एक भुवन के ऊपर से दूसरे में जाना यह साधारण रीति एक अवस्था में से दूसरी अवस्था में बदल जाने की है सार यह है कि जाग्रत अवस्था में जब अपनेको स्थूल भुवनका भान होता है तब स्थूल शरीर के ऊपर उत्पन्न हुए घाव आदि के दुःख से अपने को दुःख उत्पन्न होता है परन्तु जिस समय हम किसी के साथ अत्यन्तही आवेश से लड़ते हैं उस समय शरीर के ऊपर उत्पन्न हुए दुःख से दुःख नहीं प्राप्तहोता इसका कारण यह है कि उस समय अपना भान स्थूल शरीर में से न प्रगट होकर काम तत्व में से प्रगट होता है और इससे उस

समय स्थूल देह के सम्बन्ध में क्या होरहा है इसकी कुछ भी सुध नहीं होती; परन्तु फिर पीछे शांत होते ही पहिला घाव दर्द करने लगता है क्योंकि फिर पीछे से स्थूल भुवनका भान होता है ; इसही प्रकार जब कोई फिलासफर बड़े गहरे विचार में पड़ता है तब भूँख, प्यास शरीर के दुःख सुख, लड़के वाले इत्यादि स्थूल भुवन के सम्बन्ध का उसको कुछ भी भान नहीं रहता, तैसेही क्रोध, तिरस्कार, लोभ आदि विकार भी उसको नहीं होते; क्योंकि कामिक भुवन के ऊपर भी उसका भान नहीं होता, बरन उस समय तक वह मानसिक भुवनका भान धारण करता है । इस प्रकार साधारण मनुष्य प्रत्येक ५ भुवनों के सम्बन्ध में आता है ऐसा समझना चाहिये ।

शो०—गुप्तविद्या मनुष्य को सात तत्वका बना कहती है परन्तु इसके सम्बन्ध में दूसरे फिलासफर और पृथक् २ धर्मों का क्या मत है ?

थि०—जो सात तत्व अपने बनाव में आये हैं वेही पृथक पृथक धर्म के फिलासफरों के मत के अनुसार पृथक पृथक भागों में विभक्त हुए हैं । ईसाई धर्म के अनुसार मनुष्य के तीन भाग किये गये हैं; एकतो शरीर दूसरा जीव और तीसरा आत्मा

वेदांतिक फिलासफरों ने मनुष्य को पांच कोश और आत्मा ऐसे छ:भागों में विभक्त किया है वैसेही तारक राज योग फिलासफी की अनुसार मनुष्य तीन देह और आत्मा ऐसे चार भागों में विभक्त किया गया है । यह सब सातों तत्वों केही पृथक् २ कियेहुए भाग हैं और वह अत्यन्त आवश्यकीय होने के कारण नीचे के कोठे में इकट्ठा किये हैं ।

देखो सफा ७१

खिस्ती धर्मके अनुसार मनुष्य का बनाव ।	गुप्तविद्या के अनुसार मनुष्य का बनाव	वेदान्तफिलासफी के अनुसार मनुष्य का बनाव	तारकराजयोग के अनुसार मनुष्य का बनाव
१ शरीर (BODY)	१ स्थूलशरीर २ छायाशरीर ३ प्राण	१ अन्नमयकोश २ प्राणमयकोश	१ स्थूलउपाधी
२ जीव (SOUL)	४ काम मनशक्ति ५ मानस विज्ञान	३ मनोमयकोश ४ विज्ञानमयकोश	२ सूक्ष्मउपाधी
३ आत्मा (SPIRIT)	६ बुद्धि ७ आत्मा	५ आनंदमयकोश ६ आत्मा	३ कारणोपाधी ४ आत्मा

इन सब सात तत्वों के अनुसार मनुष्य का गठन सहजसेही समझ में आसक्ता है ऐसा समझने के पीछे पंचकोश और तीन देह इत्यादि के भाग समझने में कठिनता नहीं पड़ती इन सात तत्वों के ऊपरके तीन और नीचे के चार ऐसे दो मुख्य भाग कियेगये हैं । ऊपर के तीन जिनको त्रिपुटी कहाजाता है वे अमरतत्व हैं और नीचेके चार जिनको चार पशुतत्व कहाजाता है वे नाशवन्त तत्व हैं ।

अब इन सात तत्वों में सबसे घट और पार्थिव तत्व जो स्थूल शरीर है उसके सम्बन्ध में आयुर्वेद विद्या तैसेही दूसरी पश्चिम की विद्याओं के आधार से भली प्रकार का वर्णन मिलसक्ता है अतएव इस स्थान में उनके कहने की कुछ आवश्यक्ता नहीं है यदि यह समस्त स्थूल शरीर एकही तत्व गिनाजाता है इसके मांस, हड्डी, नस, त्वचा आदि के चाहे जितने भाग किये जावें उसके साथ अपना सम्बन्ध नहीं है । स्थूल भुवन के दो चार परमाणुओं के इकट्ठा मिलने से एक 'मोलीक्युल' होताहै और वैसे दोचार 'मोलीक्युलों' के इकट्ठा मिलनेसे एक 'कोष' होता है और ऐसे असंख्य कोषों के इकट्ठा मिलनेसे स्थूल शरीर बनता है यह प्रत्येक परमाणु और 'कोष' बिना जीवकेही

केवल पार्थिव रजकण नहीं है वरन वह स्वयंही जीवित पदार्थ हैं अथवा उन प्रत्येक में अपना २ जीव वर्त्तमान है ऐसा समझना चाहिये ।

शो०—प्रत्येक 'कोषों' में जीव है यह कैसे जानाजावे ?

थि०—स्थूल शरीर में मुख्य दोप्रकार के जीव रहते हैं, एक तो शरीर के भीतर रहाहुआ 'मैं हूं' ऐसे भान का धारण करने वाला जीव कि जो स्थूल शरीर के द्वारा प्रगट होता है वह और दूसरा शरीर के बनाव में आया हुआ प्रत्येक 'कोष' का स्वयंही जीव है । इन दोनोंप्रकार के जीवोंको एक दूसरे के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, अथवा वह दोनों अपने २ काम पृथक २ किये जाते हैं । शरीर में ' मैं हूं' ऐसा शब्द करने वाला जीव समस्त शरीर को अपना हथियार अथवा उपाधि की रीति पर जान उसके द्वारा स्थूल भुवन के ऊपर कर्म अथवा काम कर सक्ता है । जीव को केवल समस्त शरीरहीका भान है कि 'मैं हूं' और मेरा शरीर है, परन्तु शरीर के बनावमें आयेहुए प्रत्येक'कोष' को जिनको अपना भान है उनका उसको ज्ञान नहीं है तैसेहीं इन असंख्य 'कोषों' को शरीर में रहेहुए स्वामीका भी ज्ञान नहीं है ऐसेही दोनों का भानभी पृथक २ रीतिका है । और जो दुःख

जीवको होता है वह इन 'कोपों' को नहीं होता क्योंकि दोनों का परस्पर सम्बन्ध नहीं है। उदाहरण की भांति जब शरीरका कोई भी भाग कटजाता है तब यह 'कोप' तत्कालही अपने काम का आरम्भ करते हैं अर्थात उस घावके भरने के निमित्त लोहू मेंसे योग्यपदार्थ को लेकर उस स्थानको भरते हैं। शरीर में रहे हुए स्वामी की चाहे इच्छा हो या नहो परन्तु तौभी यह अपना काम कियेही जाते हैं, और फिर कितने समयतो घावके भरजाने परभी यह कोप जबतक मांस का गोला बँधजाय तबतक अपना काम वर्तमान रखते हैं। इसबातसे ऐसा जानना चाहिये कि शरीर में रहेहुए असंख्य 'कोप' बिना जीवके पार्थिव रजकण नहीं हैं वरन असंख्य जीव हैं कि जिनका अपना २ पृथक भान है और उनके भानके साथ शरीरमें रहेहुए स्वामीका कुछभी सम्बंध नहीं है

शो०—परन्तु घाव के भरजाने परभी यह कोप चाहे हुए की अपेक्षा अधिक मांस क्यों बांधते हैं ?

थि०—'कोपों' का भान इसप्रकार का है कि जो चाल उन को एक समय मिलजाय उस चाल के अनुसारही उनको जब तक रोक नहोवे तबतक वह चलेजाते हैं कि जिसको उन कोपों का अमुक चाल के अनुसार वर्तने का भान कहाजाता है। इस

स्वभाव के लिये शरीर के किसी भी भाग के कोषोंको जिसप्रकार की चाल दीजावे वे उसही अनुसार वर्तते हैं, कि जिसको टेव पड़ना कहाजाता है। उदाहरण की रीतिपर बच्चाको लिखना सिखाने के समय दोनों हाथों में से किसी भी हाथ को चलाने में एकही सा श्रम पड़ता है परन्तु एक समय दाहिने या बाएं हाथ के कोषों को वह चाल मिलने के पीछे, कि जिस हाथ से कलम पकड़ीगई उस हाथ से लिखने में बिना श्रमही लिखा जासक्ता है; परन्तु ऐसा दूसरे हाथ से नहीं होता, क्योंकि उसके 'कोषों' को वह चाल नहीं मिली। तैसेही मनुष्यों को हाथ चलाने आदिकी टेव पड़ी होती है उसका कारणभी उस भागके 'कोषों' को वह चाल मिलने का है। कोषों में ऐसाही स्वभाव होता है यह बात ध्यान में रखने से एक आवश्यकीय विषयका वृत्तान्त ज्ञात होता है। अज्ञान मा बाप जब अपने बालकों के मुँह में मांस की समान अपवित्र वस्तुओं का ग्रास देते हैं तब वह प्रकृति की रीति से अनिच्छा दिखाता है, परन्तु जब ऐसीवस्तुएं सेवनही कीजाती हैं शरीर के तब 'कोष' भी उन्हीं वस्तुओंकोही चाहते हैं। फिर जो मनुष्य अपनी बुद्धि से मांस के खाने को छोड़ना चाहता है तब उसको कुछ थोड़ी बहुत कठिनता पड़ती

है क्योंकि 'कोषों' को बहुत समय से ऐसी बुरीचाल मिलने के कारण उसको नई चालपर लाने में श्रम पड़ता है। परन्तु उससे कुछ अपने को मांस खानेकीही आवश्यकता है ऐसा नसमझना; जब उन 'कोषों' को वनस्पति के सात्विक भोजन के ऊपर समय व्यतीत करनेकी टेव पड़जाती है तब थोड़ेही समय में वह अपनी पुरानीचाल छोड़ नईचाल में आजाते हैं और जो प्रथमसेही स्वाद के निमित्त मांस खाता था वही अब उसकी सुगंध से भी कँप कँपाता है। यह बात अनुभव में आईहुई है। शरीर की रचना ऐसी है कि उसको जिस चाल पर लायाजाय अथवा वह जिस भोजन पर रक्खाजाय उसके ऊपर वह स्वयंही आजाता है। प्रत्येक 'कोष' में अपना २ जीव है उसके सम्बन्ध में यह सब बातें हमने कहीं। गुप्तविद्या के आधार से ऐसा पाया जाता है कि सृष्टि में बिना जीव की कुछ भी वस्तु नहीं है अथवा सृष्टि में रहे हुए समस्त परमाणु न्यूनाधिक अवस्था में प्रगट हुए जीवही हैं।

शो०—तो क्या पत्थर के टुकड़े में भी जीव है?

थि०—हां बिना जीव के कहने और जीवित पदार्थ कहने में केवल इतनाही अंतर है कि प्रत्येक वस्तुकी कि जो जीवित होकर भी अथवा वह स्वयं जीवही होकर भी होती हुई चाल ढाल

इन्द्रियों के द्वारा जानी जाती है यानी प्रगट होती है उसकोही जीवित कहाजाता है और जिसकी होती हुई चालढाल ऐसी होती है जो इन्द्रियों के द्वारा नहीं जानी जासक्ती उसको बिना जीवकी वस्तु कही जाती है परन्तु यथार्थ में सृष्टि में जितने पदार्थ हैं उनमें से कोई भी बिना जीवका नहीं । पत्थर में होती हुई चाल ढाल इतनी प्रगट नहीं है कि जो अपने जानने में आवे अवएव उसको बिना जीवका पदार्थ नहीं कहा जासक्ता ।

शो०—तब फिर जब मनुष्य का मरण होता है तब उस समय कौन मरजाता है? शरीर में रहाहुआ 'मैं' ऐसे मानका धारण करने वाला जीव मरजाता है या शरीर के रहेहुए समस्त परमाणु मरजाते हैं ।

थि—दो मेंसे एक भी नहीं । प्रत्येक परमाणु स्वयं जीवही है तब फिर मरण किसका होवे? शरीर में रहा हुआ जीव जो जीवित कहीजाती अवस्था में स्थूल भुवन के ऊपर शरीर के द्वारा प्रगट होता रहता है वह मरण के समय केवल शरीर के बाहर निकलजाता है न कि स्वयं नाश होजाताहो । जब ऊपर के छह तत्त्व स्थूल शरीर से पृथक होजाते हैं तब मरना कहा जाता है । जबतक शरीर में जीव रहता है तबतक जीव शरीर

को अपने हथियार अथवा उपाधि की भांति काम में लगासक्ता है इस कारण तीसरा तत्व जिसको हम प्राण कहते हैं वह प्राण तत्व स्थूल शरीर के समस्त परमाणुओं को तैराही 'टोपों' को साथही पकड़ रख शरीर की भांति रहनेदेता है । परन्तु जीव के शरीर से पृथक् होजाने पर इस शरीर को शरीर के आकार में रहने की आवश्यकता न होने के कारण उसका प्राण पृथक् होजाता है कि जिसप्रकार सेना के मनुष्य अपने 'जेनरल' के छूटजाने से छिन्न भिन्न होजाते हैं उसही प्रकार शरीर के समस्त परमाणु भी परस्पर का सम्बन्ध छोड़ आड़ तिरछेहो छिन्न भिन्न होजाते हैं । अर्थात शरीर सड़ने लगता है ऐसा समझना चाहिये शरीर को जीवित और मृतक कहने में यह दोनों अवस्थाओं में एक समानही जीता हुआ है । अंतर केवल इतनाही है कि जीवित अवस्था में वह प्राण तत्व के वश में रह समस्त शरीर की भांति जीवित रहता है और मरने के पीछे जब उसके ऊपर के तत्व पृथक् होजाते हैं तब वह शरीर शरीर रूप से मरजाता है परन्तु परमाणुओं के स्वरूप में पहिलेही की समान जीवित रहता है जिस वस्तु में स्वयं चलायमान होने की शक्ति होती है वह वस्तु जीवित है ऐसा समझाजाता है अथवा वह वस्तु साधारण

रीति से जीवित के नाम से पुकारी जाती है, उस ऊपर कहेहुए मृतक शरीर में चलायमान होने की शक्ति होतीही है, अतएव जो मरने के पीछे शरीर बिना जीवका बनजावे तो उसमें सड़ने या बाल उगनेकी जो चाल होती हैं वह न होसके। इससे प्रमाणित हुआ है कि मरनेके पीछेभी शरीर पृथक रूपमें जीवितही रहताहै

शो०—अब दूसरा तत्व जिसका छाया शरीर कहा जाता है उसका स्पष्टीकरण कीजिये।

थि०—छाया शरीर यह स्थूल भुवन के चार सूक्ष्म ईथरोंका बनाहुआ है, इसको छाया शरीर कहते हैं वह देखते हुए स्थूल शरीर की बिल्कुल दूसरी प्रतिमा है। इस छाया शरीर का बनाव ऊपरही के स्थूल शरीरके आकार और बनावके आधार पर रहता है। अथवा वह छाया शरीर इस स्थूल शरीर का खोखळा है। बचपन से बुढ़ापे तक स्थूल शरीर में जो २ फेरफार होता है वह सब छाया शरीर में भी होता है। परन्तु वे सब फेरफार पहिले छाया शरीर में और पीछे स्थूल शरीर में होते हैं। अतएव छाया शरीर में जो जो बुराइयें होती हैं, उसका जैसा रूप होता है, तथा उसके बनाव में चार ईथरों में से चढते या उतरते वर्ग के ईथरोंका न्यून या अधिक जैसा प्रमाण होता है उतनी ही न्यूनाधिकता;

दृष्टि वाले को जानपड़ता है । जैसे २ वह शरीर मेंसे निकलता जाता है तैसेही शरीर अतन्यतही वेभान और मृतक की समान अवस्था में आताजाताहै । शरीर को जो पोषण करने वाला प्राण तत्व है वह छाया शरीर के द्वाराही स्थून शरीर के ऊपर प्रभाव करता है अतएव जैसे २ छाया शरीर बाहर निकलता है तैसेही तैसे शरीर से प्राणों का सम्बन्ध न्यून होताजाता है और अंत में समस्त छाया शरीर स्थूल शरीर से पृथक होपड़ताहै, उस समय मरण हुआ कहाजाता है । फिर शेष ऊपर के तत्व छाया शरीर सें थोड़ी देर में पृथक होजाते हैं और छाया शरीर स्थूल शरीर के साथही रहकर नाश पाता है । स्थूल शरीर का शीघ्रही या देर में नाश होना छाया शरीर के छिन्न भिन्न होजाने के ऊपर रहता है और जिस प्रकार स्थूल शरीर के पदार्थ स्थूल भुवन के नीचे तीन विभागों में मिलजाते हैं वैसेही छाया शरीर के पदार्थ ईथरों के साथ मिलजाते हैं ।

शो०—मरने के समय जब स्थूल शरीर से छाया शरीर पृथक होजाता है तो स्थूल शरीर के शीघ्र या देर में नाश होने का आधार छाया शरीरके छिन्न भिन्न होनेके ऊपर क्योंकर होताहै ?

थि०—स्थूल शरीर में से छाया शरीर के बाहर निकलजाने

परभी इन दोनों के बीच एक लोह चुम्बकी सम्बन्ध रहता है कि जिससे लहरियों के विशेष नियमानुसार जिसप्रकार की लहरियें, स्थूल शरीर के परमाणुओं में बिखर जाने के समय उत्पन्न होती हैं उसही प्रकार लहरियें इस छाया शरीर में भी होती हैं। इससे जबतक स्थूल शरीर का नाश नहीं होता तबतक उसका भी नाश नहीं होता। मरने के पीछे जितनी शीघ्रता से इन दोनों शरीरों का नाश किया जावे उतनाही अच्छा है इसही कारण मुर्दा गाड़ने की रीति के अपेक्षा जला देने या जानवरों के देदेने की रीति अत्यन्तही उत्तम है।

शो०—छाया शरीर से सूक्ष्म जो तीसरा तत्व प्राण है वह क्या है और शरीर में उससे क्या २ होता है? उसका स्पष्टी करण कीजिये।

थि०—प्राण यह सब वस्तुओं का पोषण करने वाला तत्व है और वह सूर्य में से निकलकर सब में प्रवेश करता है। नदी में जैसे मछलियें रहती हैं तैसेही प्राण के समुद्र में सब प्राणी तथा समस्त पदार्थ रहते हैं। यद्यपि प्रत्येक मनुष्य में भी प्राण तत्व व्याप्त है परन्तु उन सबका प्राण पृथक् २ होता है ऐसा जानना चाहिये। इसका कारण यह है कि सूरज मेंसे आताहुआ प्राण

उपाधि के नाम से पुकारते हैं । स्थूल उपाधि और स्थूल शरीर इन दोनों का अन्तर इस बात से समझकर ध्यान में रखने की आवश्यकता है (देखो चित्र संख्या ७१ ;) प्राणतत्व जब किसी भी कारण से शरीर के किसी एक भाग में भली प्रकार से नहीं चलता तब उस भाग का मरण हुआ कहाजाता है । अर्थात् बहरापन, अंधापन इत्यादि सब इसही कारण से होते हैं । इसही प्रकार जब प्राणतत्व समस्त शरीर से पृथक होजाता है तब शरीर का मरण होता है . फिर स्थूल शरीर, छायाशरीर और प्राण यह तीनों साथही ऊपरके तत्वों से छूटजाते हैं ऐसाहोने में उनका नाश नहीं होता, वरन फिर ऊपरी तत्वों के मिलने से वह उपाधि की समान काम में लगते हैं । परन्तु उन तीनों के पृथक २ होजाने से उसका मरण होता है । केवल मरणके समयही वह परस्पर पृथक होते हैं । पहिले कहआये हैं कि प्राण में आकर्षण करने की शक्ति है और उससे मनुष्य एक दूसरे का प्राण खींचलेता है । परन्तु जब दो मनुष्य किसी विशेष रीति से एक दूसरे के प्राणों को खींचते हैं तो उस प्रयोग को 'मेस्मेरिज़म' अथवा 'हिपनाटीज़म' कहाजाता है वर्तमान में प्राण सम्बन्धी इतनीही बातों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है ।

शो०—चौथातत्व काम क्या है ?

थि०—समस्त प्राणियों के बनाव में प्रत्येक भांति के आवेश तैसेही प्रत्येक भांत के सम्बन्धों के रूप जानने का जो पदार्थ रहता है वही कामतत्व कहाजाता है। यह कामतत्व स्थूलभुवन के 'ईथरों' की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म कामलोकवाले पदार्थों का बनाहुआ है। उसके साथ नीचे के दोनों शरीर प्राण के द्वारा जुड़ेहुए हैं, इन चारतत्वों के साथ मिलने से चार पशुतत्व होते हैं, कि जो मनुष्य तैसेही नीचे के श्रेणी के प्राणियों सबमेंही प्रगट अवस्था में रहते हैं।

शो०—मनुष्य और जानवरों में इन चार तत्वों के प्रगट होतेहुएभी इन दोनों में इतना अन्तर पड़ने का क्याकारण है ?

थि०—जानवरों में भी कामतत्व न्यून या अधिक प्रगट होता है तिसपरभी मनुष्यों और इनमें जो अन्तर देखने में आता है वह मनुष्यों में निचले चार तत्वों के साथ पांचवें तत्व मनस का सम्बन्ध होने के कारण है कि जो जानवरों में नहीं होता। जितने समय तक मनुष्य शरीर सम्बन्धी इच्छाओं अथवा आवेशों के फेरफार में रहता है तबतक जानवरकीही समान रहता है, क्योंकि कामरूप में उससे ऊंचेप्रकार का भान नहीं होता, और

जिस समय कामरूप प्रबल रहता है उस समय मनस का वश नहीं चलता और मनुष्य भी जानवरही की समान वर्तता है।

शो०—तब जानवर और मनुष्य इनदोनों के जीवमें क्या अन्तर है?

थि०—जीवका अर्थ केवल भान के है। यह भान अनेकों प्रकारका होताहै, परन्तु उसके जो दो मुख्यभाग हैं वह आवश्यकता के कारण कहताहूं। एक तो सादाभान, अर्थात् वे भानपने से जो उनटी अवस्था है वह, और दूसरे अपनपौ का स्वभान है। इन दोनों में अत्यन्तही अन्तर है। जानवरों में पहिले प्रकार का भान होता है अर्थात् उनको सादा भान है उन में अपनपौ का स्वभान नहीं है। मनुष्य में स्वभान है उसका कारण उसमें मनस प्रगट होने के लिये है।

शो०—इन दोनोंप्रकार के भानों में अन्तर क्या है?

थि०—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इनमें के किसी एक अथवा सबके सम्बन्धमें आनेसे प्राणियों को जो सम्बन्ध उत्पन्न होता है उसका नाम भान है और इससे विपरीत जब इन को सम्बन्ध में आनेहुए भी किसी प्रकार का लगाव नहीं होता उसको बेभानपना कहा जाता है। परन्तु शब्द, स्पर्श, रूप, रस

और गन्धके सम्बन्ध में आतेहुए जो लगाव होता है, वह होनेके समय अथवा होनेके पीछे मन में होताहै अथवा मन में हो इस प्रकार के लगावों से स्वयं पृथक् होनेका जो भानहै वह स्वभानहै; यह स्वभान मनुष्य जाति मेंही होता है परन्तु जानवरों में नहीं। सम्बन्ध के रूप में प्रगट होनेवाला कामतत्व है और सम्बन्धोंका मनमें; "हुए हैं, होते हैं, होंगे" ऐसे भानका निश्चय करनेवाला मनस है । अतएव जानवरों का जीव चौथा तत्व कामहै और मनुष्यका जीव कामतत्व और मनस मिलकर बनाहुआ काम, मनस है ऐसा समझना ।

शो०—कामतत्व सम्बन्धी जो और जानने योग्यहो वह कहिये ।

थि०—जैसे तिल्ली के द्वारा भ्रमण करताहुआ प्राण शरीर के भीतर और शरीर के इधर उधर चारोंओर विस्तारित रहता है तैसेही कामतत्व शरीर में भिड़ाहुआ रहताहै और शरीर के बाहर चारोंओर पड़ारहता है। कामतत्व में अनेकप्रकार के रंग होते हैं कि जो पृथक् २ सम्बन्धों और पृथक् २ विचारों से क्षण २ में बदलाकरते हैं । विश्वदृष्टिवाले कामरूप में जानपड़तेहुए रंगों को देखकर मनुष्य के गुण अवगुण इत्यादि पहिचान सक्ते हैं। दूसरे प्रत्येक मनुष्य का कामतत्व एक समानही अवस्थामें नहीं

रहता, इससे साधारण मनुष्य में जब शेष तत्व निचली स्थूल उपाधि से पृथक् होजाते हैं तब कामरूप शरीर के आकार में बनने के बदले खोखलसा बादलोंकी समान ढगले के रूप में दिखाताहै, परन्तु जब पवित्र और विकशित मनशक्तिवाले मनुष्यकी स्थूल उपाधि ऊपरीतत्वों से पृथक होजाती है तब, कामरूप झलकता हुआ और स्थूल शरीर के आकार में बनाहुआ देख पड़ताहै

शो०—इन दोनों अवस्थाओंके कामतत्व में क्या अंतरहे ?

थि०—इन दोनों अवस्थाओं में रहेहुए कामतत्व में बहुत अंतरहै । जिसप्रकार नीचे के तीनतत्व इस स्थूल भुवन के ऊपर जीवको स्थूल उपाधि के समान काम देते हैं तैसही कामलोक में काम मनस उपाधि अथवा शरीरकी समान काम देता है । इसही कारण जैसे बालकका शरीर विकशित न होनेके कारण वह उपाधि के समस्त कामों को नहीं करसकता अर्थात् उस बालक में जैसी चाहिये वैसी चाल ढालकी शक्ति नहीं होती, इसही प्रकार साधारण मनुष्यको जितना कामरूप चाहिये उतना सूक्ष्म न होनेके कारण उससे स्थूल उपाधि के बाहर अर्थात् कामलोक में इसकाम, मानसिक शरीर में चाल ढाल नहीं होसकती क्योंकि वह स्थूल उपाधि से अधिक दूर नहीं जासकता किन्तु वह वहीं भ्रमण

दिया करता है । इससे विपरीत पवित्र विचारवाले और शिक्षित मनशक्तिवाले मनुष्यका कामतत्व स्थूल उपाधि से छूटकर शरीर की समान आकार धारण करसकता है तैसेही स्थूल उपाधि से बहुतदूर जासकता और शरीरकी समान सब काम करसकता है ।

शो०—इससे तो ऐसा जानपड़ता है कि ऊपरी तत्व स्थूल उपाधि से पृथक भी होजाते हैं ।

थि०—जीव तीन रीतों से स्थूल उपाधि से पृथक होसकता है । (१) भली प्रकार से निद्रा में सोने के समय स्थूल उपाधि में से कामरूप के सूक्ष्मभाग के साथ ऊपरके तत्व पृथक होजाते हैं परन्तु उसको जाग्रत अवस्था में भान नहीं रहता (२) मरने के समय वे तत्व पृथक होजाते हैं । (३) गुप्तविद्या के अभ्यासी विशेषरीति से भानसहित स्थूल उपाधि में से जब अपने को आवश्यकता होती है तब बाहर निकल जाते हैं और फिर स्थूल उपाधिमें प्रवेश करलेते हैं; परन्तु ऐसा होनेके पहिले उनको कामरूप के सूक्ष्मबन्धाव और मनसको बश में करने की आवश्यकता होतीहै

शो०—तब कामरूप को उपाधि की रीतिपर काम में लाया जासके ऐसा सूक्ष्म बंधाव किसप्रकार से किया जासकता है ?

थि०—कामतत्व यह स्थूल उपाधि और मनस इन दोनोंके

बीच में का रहाहुआ है, अतएव उसके सूक्ष्म बंधाव करने के निमित्त स्थूल उपाधि और मनस इन दोनों के पवित्र रखने की आवश्यकता है। जिस प्रकार स्थूल भुवन के पदार्थ सात अव स्थाओंमें बँटेहुए हैं, उसहीं प्रकार कामलोक मेंभी सात अवस्थाओं के पदार्थ रहे हुए हैं (देखो चित्र २.प्रकरण २) इन सात अवस्थाओं से जैसे २ बहुत सूक्ष्म अवस्था में रहे हुए पदार्थ कामरूप के बंधाव में हों उसही उपाधि के अनुसार वह उसे काम में लासकते हैं, और स्थूल उपाधि से पृथक होने के पीछे जितनी दूर चाहें जासकते हैं। इससे विपरीति जैसे २ कामलोक के निचले विभागों के पदार्थ कामरूप के बन्धाव में आएहों उसही उपाधि के अनुसार वह काम में आने के अयोग्य होते हैं और स्थूल उपाधि से पृथक होने के पीछे बहुतदूर नहीं जासकते। कामरूप के बन्धाव में सूक्ष्म या घट पदार्थों के रहने का कारण स्थूल उपाधि और मनस इन दोनों की अवस्था के ऊपर है। बिना समझे मांस, शराब इत्यादि रजो, तमोगुणी (.आवेश उत्पन्न करनेवाली तैसेही आलस्य, निद्रा और मूर्खता बढ़ानेवाली) व-स्तुओं के उपयोग करने से स्थूल उपाधि के बन्धाव में रजो और तमोगुणी अस्वच्छ परमाणु प्रवेश करजाते हैं और ऐसा होने से

उसके मिलतेही कामलोक के रजो, तमोगुणी परमाणु कामरूप के बन्धाव में प्रवेश करते हैं । स्थूलभुवन के ऊपर जितनी वस्तुएं हैं उन सब में उसके सम्बंधी कामिक भुवनों के भाग रहेहुए हैं । यह बात ध्यान में रखने से समझ में आसकती है कि स्थूल भुवन की कोई भी वस्तु जितनीही घट अथवा सूक्ष्म बन्धाव की हो उतनेही स्थूल या सूक्ष्म कामिक भुवनों के भाग उस में रहते हैं । इसकारण स्थूल उपाधि के बन्धाव में मांस शराब इत्यादि के काम में लानेसे रजो तमोगुणी परमाणु उसमें प्रवेश करजाते हैं इससे कामरूप और स्थूल शरीर दोनों उपाधि के अनुसार काम में आने के अयोग्य होजाते हैं ।

शो०—अमुक मनुष्य का कामतत्व स्थूल या सूक्ष्म है यह बाहर से कैसे जानाजावे ?

थि०—काम, क्रोध, लोभ इत्यादि विकार जिसमें बलवानहों उसका कामतत्व स्थूल बन्धाव का समझना और विकार जिसके वशमें हो उसका कामरूप सूक्ष्म बन्धाव का जानना । फिर बनस्पति के भोजन करनेवालों की अपेक्षा मांस खानेवालों में विकार बढ़े होते हैं इससे जानाजाता है कि भोजन से भी कामतत्व के ऊपर भला बुरा प्रभाव होताहै अतएव काम तत्व को स्वच्छ

और सूक्ष्मरखने के निमित्त स्थूल उपाधि को पवित्र अथवा सात्वकी भोजनों के ऊपर रखने की आवश्यकता है।

शं०—शरीर की भली बुरी अवस्था के ऊपर कामतत्व की अवस्था का आधार है, यह तो समझ में आगया परन्तु मन की भली बुरी अवस्था से कामतत्व में किसप्रकार अन्तर पड़ता है इसका स्पष्टीकरण कीजिये।

वि०—स्थूल उपाधि और मन इन दोनों के बीच में काम तत्व पुलकी समान है। स्थूल उपाधि में ऊपर बाहर की वस्तुओं से जो लहरियें उत्पन्न होती हैं वे कामतत्व के द्वाराही मन के ऊपर जाती हैं और फिर मन में उन २ वस्तुओं का भान होताहै तैसेही मनमें उत्पन्न होतेहुए विचारों का स्थूल भुवन के ऊपर शब्द के आकार में या कर्म के आकार में प्रगट होनेके निमित्त कामतत्व की उपाधि के द्वाराही फैलाव होता है। ऐसा होने के कारण पवित्र विचारों से जब मनमें अत्यंतही नाजुक लहरियें उत्पन्न होती हैं तब उन विचारों के प्रगट करने के निमित्त काम रूप मेंभी वैसीही नाजुक लहरियें उत्पन्न होने की आवश्यकता रहती है। जबतक कामतत्व के पदार्थ सूक्ष्म न हों तबतक ऐसा नहीं होसकता। तथा उसही अनुसार मनमें उत्पन्न होतेहुए तुच्छ

विचारों के प्रगट होनेके निमित्त कामतत्व में तुच्छ प्रकारकी लहरियें उत्पन्न होनेकी आवश्यकता रहती है कि जिनके निमित्त कामतत्व के बन्धाव में स्थूल अथवा रजो तमोगुणी पदार्थों के होने की आवश्यकता है । इस कारण मन में केवल पवित्र विचारों के लाने सेही कामरूप स्वयंही सूक्ष्म बन्धाव का होजाताहै, और आवेश इत्यादि न्यून होजाते हैं । इस प्रकार मनकी पवित्रता से कामरूपको पवित्र और सूक्ष्म बन्धाव का करसक्ते हैं । तथा जैसे अंत में भोजनका प्रभाव मन के ऊपर होताहै वैसेही मनका प्रभाव स्थूल शरीर के ऊपर भी होता है । बाघ और बकरे का जैसा स्वभाव है वैसीही उनकी स्थूल उपाधि भी देखने में आती है । निर्दोष प्राणियों का शरीर विकराल नहीं होता तैसेही विकराल प्राणियों का शरीर निर्दोष रूपभी नहीं धारण करसक्ता । इसही प्रकार मनुष्यकाभी विषय है । पापी और कपटी मनुष्य के चेहरे में तथा पवित्र और निर्दोष मनुष्य के चेहरे में जो अन्तर दिखाई देता है उसका यही कारण है । इसकारण गुप्तविद्या के सीखने की इच्छा रखनेवालोंको उचित है कि वह सबसे पहिले पवित्र विचारों से मनको और सात्विक भोजनों से शरीरको पवित्र रक्खें ।

शो०—अब एक यह प्रश्न उत्पन्न होताहै कि जो भलीप्रकार

से सोने के समय ऊपरी तत्व स्थूल उपाधि से पृथक होजाते हों तो प्रतिदिन रात्रि में मनुष्य मरकर फिर प्रातःकालको जीवित होता है ऐसा जानपड़ता है ।

थि०—नहीं इन दोनों में बड़ा अंतर है । भली प्रकार से सोने के समय तैसेही गुप्तविद्या की विशेष रीति से मनुष्य स्थूल उपाधि अथवा नीचे के तीन तत्वों से पृथक होसकता है जीवित अवस्था में और किसी से भी स्थूल उपाधि के तत्व पृथक नहीं होसक्ते । परन्तु मरने के समय समस्त स्थूल उपाधि के ऊपरी तत्वों से पृथक होने के बदले ऊपर के छःओ तत्व स्थूल शरीर से पृथक होजाते हैं । तदनंतर ऊपर के तत्व छूटेहुए छायाशरीरको स्थूल भुवन के ऊपर रहने देकर कामरूप सहित कामलोक में जाते हैं । स्थूल शरीर और छाया शरीर का कोट और उसके अस्तर की समान सम्बन्ध है । जिस प्रकार कोट के फटतेही उसके साथ का अस्तर कि जो कोट काही एक भाग है स्वयंही निकल जाता है और उससे पृथक नहीं होता तैसेही फिर कोट के पहिनने के साथही वह स्वयंही पहिना जाता है उसही प्रकार जीवित अवस्था में समस्त स्थूल उपाधिहीं पृथक होसक्ती है और फिर पहिरी जासक्ती है कि जैसा मरने के समय नहीं होता ।

शो०—अब कामरूपका मरनेके पीछे क्याहोता है वह कहो ?

थि०—छाया शरीर से पृथक होने के पीछे ऊपर के तत्व कामलोक में जाते हैं कि जहां कामरूप बिखरकर छुटजाता है, मनस के साथ सम्बन्ध होनेके कारण ऊपरी तत्वों को कामलोक में रहना पड़ता है। प्रत्येक मनुष्य का कामरूप एक समानही समय में नहीं पृथक होता। जिस मनुष्य की इच्छा विषय भोगों के भोगने में अधिक होती है उसका मनस कामरूप में इतना प्रवेश किये रहता है कि कामरूप से पृथक होने में ऊसको अत्यन्त समय लगता है, और फिर कितने एक समय जो बहुतही पापी होता है उसका समस्त मनस तो कामरूप से पृथकही नहीं होता परन्तु उसका कितना एक भाग तो कामरूप के साथही नाश पाता है। इसका हम पीछे स्पष्टीकरण करेंगे इससे विपरीत जो मनुष्य कि जीवित अवस्था में कामको बश किये रहता है, मरने के पीछे उसको संसार के पदार्थोंका आकर्षण नहीं होता और कामलोक में भी बहुत समय तक नहीं रहना पड़ता। बरन समस्त मनस कामरूप से छूटकर ऊपर के तत्वों समेत देवखन अथवा स्वर्ग में जाता है। फिर पीछे छूटा हुआ कामरूप का

खोखला विखर जाता है और स्थूल उपाधि की समान अपने सम्बन्धी भुवनों में मिलजाता है ।

शो०—अब पांचवां तत्व जो मनस कहलाता है वह क्याहै ?

थि०—मनस अर्थात् मन जो विचार करता है वह (ऊपर जो चार तत्व कहेगये हैं) एक घरकी समान हैं और उसमें रहनेवाला जो स्वामी है वह मनसही है । जो हममें मनस नहो तो हमभी जानवरोंहीं की समान होवें । मनस जीवित अवस्था में दो भागों में बटता है । उसमें से एक तो निचला मनस और दूसरे को उपला मनस कहा जाता है । निचला मनस ऊपरी मनसकाही एक भाग अथवा प्रतिबिंब के रूप से पड़ती हुई किरण है कि जो कामके साथ मिलारहता है, और ऊपरी मनस ऊपर के दो तत्वों के आकर्षणमें रहता है । निचला मनस काम और ऊपरी मनस के बीचमें रहता है जैसे दो लोह चुम्बकों के बीचमें रक्खीहुई सुई अधिक बलवाले चुम्बक में चिपट जाती है तैसेही निचले मनस को एक ओर से कामका और दूसरी ओर से ऊपरी मनसका आकर्षण रहता है । साधारण मनुष्योंमें काम का आकर्षण अधिक होनेसे वह काम के साथ मिला रहता है और कामही मनस के नाम से पहिचाना जाता है । जो वह काम

से छुटजावे तो ऊपरी मनस से मिलकर अपनी यथार्थ अवस्था में आजाता है । जैसे राजा के लड़के को बचपनसेही भिखारी के साथ रक्खाजाय तो वह अपनी यथार्थ अवस्थाको भूलकर अपने को भिखारीही मानता है तैसेही जबतक नीचेका मनस काम के साथ लगा रहता है तब तक वह ज्ञान और बल से परिपूर्ण जो ऊपरी मनस है उसकाही बच्चा है ऐसा नहीं जाना जासक्ता वरन कामतत्व के समानही बनजाता है ।

शो०—जो मनस के दो भाग किये जावें तो अपने बँधावमें सात के बदले आठ तत्वों को गिनना चाहिए ।

थि०—नहीं—नीचेका मनस स्वयं छूटाहुआ नहीं रह सक्ता परन्तु ऊपर जैसे लोह चुंबकका उदाहरण दिया वैसे यातो कामरूप के साथ मिला रहता है या ऊपरी मनस के साथ एकत्र होजाता है । ऐसा होनेके कारण मनुष्य जीवित अवस्थामें साधारण रीति से नीचे के अनुसार साततत्वों मेंही बटाहुआ है ।

अमर तीन तत्व { १—आत्मा
२—बुद्धि
३—ऊपरी मनस }

विशेष रीति से अमर ४—काम—मनस

नाशवंत चार तत्व
५—प्राण
६—छाया शरीर
७—स्थूल शरीर

जीवित अवस्था में मनस दो अवस्थाओं में बँटाहुआ है और उससे मनुष्य ऊपरी अवस्था में होता है। इसमें से नीचेके चार तत्वोंका वर्णनतो हम करहीगये, अब मनस सम्बन्धी कहनेको रहा। शरीरमें 'मैंहूं' इस स्वभानका धारण करनेवालाही मनस है इसमें स्मरणशक्ति इच्छाशक्ति और विज्ञान रहाहुआ है।

शो०—निचले और ऊपरी मनस में अंतर क्या है?

थि०—निचला मनस ऊपरी मनसकाही एक भाग अथवा किरण है, परन्तु वह कामरूप और स्थूल उपाधी के बंधन में पड़ेरहने से स्वयं अपना प्रकृति बल नहीं दिखा सकता। जिसको साधारण रीति से मन कहाजाता है वह कुछभी नहीं बरन वह यह काम मनसही है और वह स्थूल उपाधि में मस्तिष्क के द्वारा प्रगट होसकता है मनसका प्रगट होना अपनी स्थूल उपाधि के ऊपर निर्भरहै। उपाधि भली या बुरी हो उसही अनुसार मनस अपना भला या बुरा (न्यूनाधिक) बल दिखा सकता है जैसे एकही आग पृथक २ प्रकार के तेल और बत्तियों के द्वारा

न्यून या अधिक प्रकाश करने की शक्ति रखता है उसही प्रकार जो शरीर में कारणरूप बलवान होवे अथवा स्थूल शरीर में या मस्तिष्क में कुछ न्यूनता होवे तो उपाधि मेंसे मनस मलीप्रकार प्रगट नहीं होसक्ता। परन्तु जो उपाधि पूर्ण और बिना किसी न्यूनता के होवे तो उसमें मनस अपना प्रभाव भलीप्रकार दिखा सकता है। ऊपरी मनस ऊपरी तीन तत्वों के समान होनेके कारण अमर है और वह बारम्बार अवतार धारण करता है। जैसे एक हाथी अपनी सूंड बाहर निकाल उससे पृथ्वी के ऊपर से खाने को उठालेता है, तैसेही प्रत्येक अवतार में ऊपरी मनस नीचे के चार तत्वों के साथ मिलकर उनकी सहायता से निचले भुवनों का अनुभव करता है। ऐसे बारम्बार अनुभव होने के कारण ऊपरी मनस अपने भुवन के ऊपर बढ़ अत्यन्त ज्ञान से परिपूर्ण होजाता है। इसके अतिरिक्त क्रियाशक्ति अथवा विचार से आकार उत्पन्न करने की शक्ति भी मनस में रहती है।

शो०—परन्तु जो उपरी मनस में समस्त ज्ञान और क्रियाशक्ति इत्यादिक बल होवें तो निचला मनस जो उसकाही एक भाग है उसके जानने में वह क्यों नहीं आता?

थि०—अपने बँधावमें आताहुआ प्रत्येक तत्व अपने निचले

तत्वको अपनी उपाधिके समान काम में लाता है अथवा उसके द्वाराही प्रगट होसक्ता है। मनस की उपाधि कामरूप है। कामरूप की उपाधि प्राण, और प्राण की उपाधि छायाशरीर तैसेही छाया शरीर की उपाधि स्थूल शरीर है इसही कारण अमुक तत्व के प्रगट होनेका आधार उससे निचले तत्वकी भली बुरी अवस्था के ऊपर रहता है। नीचे के चारतत्व मनस की उपाधि के समान काम में आते हैं, अथवा मनस और नीचे के तत्वोंका बाजाबजाने वाले और बाजे कासा सम्बन्ध है। चारतत्व यह बाजा हैं और उनके द्वारा प्रगट होनेवाला मनस उस बाजेका बजानेवाला है। अतएव जो बाजे कीही बनावट बुरी होवे अथवा उसका कोई भाग टूटा होवे तो उसका बजानेवाला चाहे जैसा योग्य हो परंतु उसमें से मधुर शब्द बाहर नहीं निकाल सकता, तैसेही जो मनस एककी उपाधि मेंसे शेक्सपियर या न्यूटनकी समान प्रगट होसक्ता है, वहीं मनस दूसरेकी उपाधि में से मूर्ख या विक्षिप्त मनुष्यकी समान प्रगट होता है। जैसी उपाधि मिलती है वैसाही मनस प्रगट होसक्ता है। जैसे एकही सूर्य की किरणें जिन २ रंगों के कांच में पड़ती हैं उन्हीं २ रंग की दिखाती हैं, इसही अनुसार मनस कोभी समझना। ऊपरी मनसकी उपाधि काममनस

है अथवा नीचे के काम मनस की द्वाराही वह प्रगट होसक्ता है अब ऊपर और नीचे का मनस एक होते हुए भी ऊपरी मनस में रहाहुआ ज्ञान निचले काम मनस को जानने में नहीं आता उसका कारण यही है कि सूरज और दर्पण की समान सम्बन्ध ऊपर और नीचे के मनस के बीच में रहता है । जब दर्पणकी तहपर धूल पड़ी होती है तब उसमें सूरजका प्रतिबिंब नहींपड़ता परन्तु धूल हटा देने से तत्कालही प्रतिबिंब पड़ता है । और दर्पण में मानों दूसरा सूर्य आयाहो ऐसे उसके सामने नहीं देख सक्ते । ऐसीही ऊपरी और नीचे के मनस की अवस्था है । नीचे का मनस जो प्रत्येक मनुष्य का दर्पण है उसकी तह सदैव कामरूप की धूल से ढकी रहती है । इस नीचेके मनस को जब तक दर्पण की समान कामरूप की धूल से न छुड़ाया जावे तब तक ऊपरी मनसमें रहाहुआ ज्ञान प्रतिबिंबके रूप से उसमें नहीं पड़सक्ता, अथवा वह ऊपरी मनस उसकी उपाधिके समान काममें नहीं आसक्ता । सब बात यहींपर आकर अटकती है । जो नीचे के मनस को काम से छुटाया जासके तो फिर ज्ञानका कुछ टोटा नहीं है । यह बात प्रत्येक अभ्यासी को ध्यान में रखनी चाहिये ।

शो०—कामतत्व और मनस इन दोनों का गुण क्या है ?

थि०—कामतत्व में आवेश (जोश) और विषयों के भोग भोगनेकी इच्छा होनेसे वह बाहर की वस्तुओं से खिचता है वह पृथक २ समय में कौन चाल लेगा यह केवल उस समय के सम्बन्ध में आनेवाली बाहर की अवस्था के ऊपर निर्भर है। मनस में विचार करने की शक्ति होनेसे अमुक काम करने में लाभ है या नहीं यह निश्चय करने पर वह अपनी इच्छानुसार वर्तता है, इससे वह अमुक समय में कौन चाल लेगा वह उस समय के सम्बन्ध में आनेवाली बाहर की अवस्था के ऊपर निर्भर नहीं है। वरन उसके भीतर के विचार करने की शक्ति और उसके बलके ऊपर निर्भरहै। बाहर की वस्तुएं जैसा खींचें वैसा खिंच जावे वह कामतत्व है और बाहर का खिंचाव चाहे जिस रीतिका होवे तोभी निश्चय करके उस पर वर्ताव करने वाला मनस है। इन दोनों के प्रगट होने में अत्यन्त अंतर रहता है। जानवरों में काम तत्व प्रगट होता है परन्तु मनस नहीं यह हमने पहिलेही कहा है अतएव उसकी समय २ की चाल केवल बाहर की वस्तुओं के सम्बन्ध के ऊपरही निर्भर है। उदाहरणकी रीतिपर एक जानवरों के समूहमें जो बड़ा घोर शब्द कियाहो या अग्नि सुलगाकर भड़काई हो तो सब जानवर एक समानही रीति से वर्ताव करते

हुए देखने में आवेंगे, अर्थात् वह सब उठकर वहां से भगेंगे। परंतु मनुष्यों के समूह में जो घोर शब्द हुआहो अथवा अग्नि भड़काई हो तो सब मनुष्य एक समानही रीति से बर्ताव न करेंगे कोई चाक पड़ेगा, कोई उठ बैठेगा, कोई बैठारहेगा, कोई उसके विपरीति काम करते हुए देख पड़ेगा, क्योंकि उनमें मनस होनेसे वह अपनी शक्ति के अनुसार विचार कर सक्ते हैं और केवल कामरूप सेही नहीं खिचजाते, इससे बाहर की अवस्था और दबाव एक समान होते हुए भी उनके बर्ताव में अंतर पड़ता है। निर्बल इच्छा शक्ति वाला मनुष्य अपने यथार्थ निश्चय कियेहुए काम के बदले बाहर के दबाव के अनुसार दबजाता है कि जो बात प्रबल इच्छावाले मनुष्य की दशा में नहीं होती।

शो०—प्रबल इच्छाशक्ति और निर्बल इच्छा शक्ति वाले मनुष्यों के कुछेक लक्षण कहो।

थि०—सुनो पेटभरकर भोजन करने पर भी भोजन के देखतेही फिर भोजनकरनेकी इच्छा शक्ति प्रबलहो आवे तो उसकी इच्छाशक्ति निर्बल और कामतत्व प्रबल समझना—शराब,ताड़ी आदि व्यसन बुरेहैं यह जानकर भी शराब या ताड़ी की दूकान देखतेही मुँह में पानी आजावे और बिना पिये वहां से चला न

जावे तो उसका कामरूप प्रबल और इच्छाशक्ति निर्बल जानना मनुष्य जाने कि काफी पीना अच्छा नहीं यह जानकर भी ईरानी की दूकान देखतेही जो भीतर घुसजावे उसका कामतत्व मनस की अपेक्षा बलवान समझना—प्रातःकाल को शीघ्रही उठना अच्छा है अतएव ऐसाही करना चाहिये यह इच्छा करके भी सोकर बिछौने से प्रातःकाल को शीघ्र न उठाजावे तो उसका कामतत्व प्रबल समझना—डाक्टर ने अमुक वस्तु जैसे कि खट्टी, तीखी वस्तु खाने को न कहीहो तोभी जो बिना खाये न रहे उसका कामतत्व मनस की अपेक्षा बलवान समझना। कोई भी दुर्गुण छोड़ने की इच्छा करतेहुए भी जो न छोड़ीजाय उसका कामरूप प्रबल समझना—झूठ बोलना बुरा है अतएव झूठ बोलनेका निश्चय करके भी बाहर के दबाव के कारण जिससे झूठ बोलाजाय उसका कामतत्व बलवान जानना—लड़ाई की या जोश उभाड़ने वाली बातों के पढ़ने की जिसको इच्छा रहती है तथा ऐसी बातों को सुनतेही जिसको जोश आजाता हो उसका कामतत्व बलवान जानना—किसी स्थान पर आग लगी हो ऐसा सुनकर उसके देखने में आनन्द आवेगा ऐसा विचारकर जो वहां जावे उसका कामरूप बलवान समझना —मुँह में से तुच्छ शब्द और गाली

इत्यादि देनेकी जिसको टेवपड़ी हो और वह यह बिचारकर भी कि ऐसे शब्द मुँह से न निकालूंगा फिर वही बोलेजायँ तो उसका भी कामरूप बलवान जानना—'थियासोफी' अथवा कोई अमुक मत अच्छा है यह अपने को निश्चयहो परन्तु तौभी अपने मित्र तथा और मनुष्य हँसेंगे ऐसा विचारकर उससे दूर रहते हैं उन को निर्बल इच्छाशक्ति वाला समझना—मंदिर, आतश बहराम या देवालय में जाना उत्तम है परन्तु तौभी जो मनुष्य लाज के कारण अपने कर्तव्य कर्म को पूर्ण नहीं करते उनको निर्लज्ज और निर्बल इच्छा शक्तिवाला जानना—जिनको अपनी शोभा दूसरों को दिखाने के निमित्त कपड़ा आदि पहिरने का ध्यान है, तथा जो मार्ग में चलतेहुए अपने पतलून को बारम्बार देखते हैं, तैसेही जो बारम्बार दर्पण में बिना मुँह देखे नहीं चलते उनका कामरूप बलवान जानना—घर में खाने के तो लाले हों परन्तु तौभी बड़ी सज धज से बाहर निकलकर अपनी दरिद्रता के छिपाने का यत्न करते हैं उनको भी अज्ञानी और बलवान कामरूपवाला जानना जो अपनी आय से अधिक व्यय किये बिना नहीं रहते उनको भी कामरूप का सेवक जानना—तैसेही अपने पास द्रव्य होतेहुए भी दूसरे का गला करने का जिनको साहस नहीं होता उसे भी

कामरूप का नौकर जानना—क्रोध करना यह मूर्खता है ऐसा विचारकर भी जिसको समय पर क्रोध आजाय उसे कामरूप का वशवर्ती जानना—अपनी प्रतिष्ठा की समान दूसरे की प्रतिष्ठा को न जान जो उसे भंग करना चाहता है उसका कामरूप बलवान जानना—दूसरे के सुख को देखकर जो दुःखी होवे, उस का कामरूप बलवान समझना—तैसेहीं दूसरे के दुःख को देखकर जो दुःखी न होवे उसकाभी कामरूप बलवान जानना—जिसका ध्यान रात दिन स्त्रीही में लगा रहता हो उसे भी कामतत्व का सेवकही जानना—जो स्त्री के वश में रहे उसे भी कामरूप का वशवर्ती जानना—घरमें से अमुक स्थान जानेकी इच्छा कर जो मार्ग में इधर उधर होतेहुए तमाशा या नारपीट के देखने को खड़ा होजाय तो उसका कामतत्व बलवान जानना—जिसको गाना सुनने की अत्यंत इच्छा है और जो मुजरा इत्यादि के देखनेमेंही लगा रहता है उसका कामतत्व बलवान समझना—जिस को नाटक देखने की बड़ीही इच्छा रहती है और बिना उसके देखे जिसकी इच्छा नहीं पूर्ण होती उसका कामतत्व बलवान जानना—सार यह कि जिसको कुछभी विवेक नहीं है अर्थात् जो भले बुरे का निश्चय कर उसके अनुसार नहीं बर्तता बरन केवल

बाहर की अवस्था और दबाव के आधारही पर बतता है उसका कामतत्व मनस की अपेक्षा बलवान समझना इन बातों में से जिसमें कोई भी बात होवे उसको विना उस बात के सुधारे गुप्त-विद्या के अभ्यास की आशा न रखना चाहिये ।

शो०—काम मनस और ऊपरी मनस के बीच में कुछ सम्बन्ध है या नहीं ?

थि०—दोनों के बीच में जो सम्बन्ध रहाहुआ है उसे अंतःकरण कहाजाता है ऐसा जानपड़ता है कि यह अंतःकरणरूपी सम्बन्धही पारसियों का चीनवद पुल है । काम-मनस कामलोक के भुवनका सम्बन्धी है और ऊपरी मनस स्वर्ग अथवा बिहिश्त के भुवनके ऊपर रहता है अतएव निचला मनस जब मरन के पीछे कामरूप के छूट कर अंतःकरणरूपी पुल के द्वारा स्वर्ग के ऊपरजाता है तब मरनेवाला मनुष्य चीन वद पुलकी द्वारा स्वर्ग में गया हुआ कहा जाता है ।

शो०—अब ऊपर के दो तत्व जो आत्मा और बुद्धि हैं वह क्या हैं ?

थि०—नीचे के तत्वों की समान आत्मा और बुद्धि यह कुछ प्रत्येक मनुष्य के पृथक २ तत्व नहीं हैं आत्मा—बुद्धि कि जिस

को अंगरेजी में 'मोनेठ' कहा जाता है वह प्रत्येक मनुष्य में बंधन पाने की वस्तु नहीं है । आत्मा—बुद्धि मेरी या तेरी ऐसी नहीं है । समस्त सृष्टि में केवल एकही आत्मा बुद्धि है । सृष्टि में रहती हुई लोह चुम्बक आदि की समस्त शक्तियों का मूल आत्मा—बुद्धि है, वह एकही होकर भी मनसको द्वारा जान पड़ती हुई प्रत्येक को पृथक २ समझ में आती है । बुद्धि यह अत्यंत सूक्ष्म प्रकृति है और वह आत्मा का वाहन अथवा उपाधि है । उसके द्वाराही आत्मा पृथक २ भुवनों के ऊपर प्रगट होसकता है । अतएव आत्मा—बुद्धि सदा साथही रहते हैं । सृष्टि के सातों भुवन में प्रगटीकरण की जो कुछ चाल ढाल होती है वह सब आत्मा बुद्धि के बलसेही है । सृष्टि में उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय यह सब आत्मा बुद्धि के लियेही होता है, अतएव वह समस्त सृष्टि का आधार रूप है । सूर्यकी किरणें जिस स्थान पर पड़ती हों वहां पर खड़े होकर जब सूर्यकी ओर देखाजाता है तब देखने वालेको असंख्य किरणों में की एक अमुक किरण की द्वाराही सूर्य दिखाई देता है और अपने आसपास वह दूसरी असंख्य किरणें देखता है । ऐसेही सब कोई अपनी २ अमुक किरण के द्वाराही सूर्यकी ओर देख सकते हैं, इससे एकको पृथक किरण

दूसरे को पृथक तीसरे को पृथक ऐसी असंख्य पृथक २ किरणें सबको जनाती हैं, परन्तु जो सूर्य के भीतर अर्थात् जहां से किरणें निकलती हैं वहां जाकर देखा जावे तो असंख्य पृथक २ किरणों के देखने के बदले केवल एकही अखंड उजाला देखने में आवेगा; इसही प्रकार आत्मा को भी समझो । आत्माका प्रतिबिंब प्रत्येक जीवकी उपाधिमें पड़ने से उपाधि द्वाराही देखपड़ता हुआ प्रत्येक जीवका आत्मा पृथक २ जान पड़ता है, परन्तु समस्त अस्तित्व का मूल आत्माही के होनेसे भीतर देख पड़नेवाला आत्मा एकही है ऐसा निश्चय हुआ है । एक होते हुएभी असंख्य जान पड़ता है इसका नामही माया और अज्ञान है । आत्मा एकही है और पृथक नहीं है इसके ऊपरही अपनी मुक्ति का आधार है । जबतक प्रत्येक मनुष्य अपने को पृथक समझता है तबहीं तक वह बंधन में है इस कारण यथार्थ में बंधन कुछभी नहीं है बरन केवल अज्ञान सेही उत्पन्न हुआ है । जब आत्मा का एकपना (एकत्व) जानने में आता है तभी 'मैंमुक्त हूं' ऐसा जीवको निश्चय होता है परन्तु ऐसा होने के निमित्त विवेक, वैराग्य की द्वारा ज्ञान होने की आवश्यकता है ज्ञान के अतिरिक्त आत्माको पहिचाना नहीं जासक्ता, अतएव ज्ञान होने

के पहिले आत्मा संबंधी कोई बात नहीं जानी जासक्ती ।

शो०—आत्मासे स्थूल शरीर पर्यंत सब तत्वों का विषय जानने में आगया परन्तु मनुष्यका खोरा अथवा 'ओरा' क्या है उसके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा गया अतएव इसका स्पष्टीकरण कीजिये

थि०—प्रत्येक मनुष्य तैसेही प्रत्येक जीव तथा जड़ पदार्थ के भी इधर उधर झलकता हुआ सूक्ष्म पदार्थ चलायमान होता हुआ दिव्यदृष्टि वालों के देखने में आता है उसको खोरा अथवा ओरा कहते हैं । जड़ पदार्थ की अपेक्षा वनस्पति के इधर उधर अधिक, इससे अधिक नीच वर्ग के प्राणियों में और उससे अधिक मनुष्या के आसपास यह खोरा अथवा ओरा देखने में आता है । खोरा में अनेकों प्रकार का रंग दिखाई देता है और फिर वह भी पृथक् २ स्वभाव और विचारवालों के खोरे में पृथक् २ रंग न्यूनाधिक देखने में आता है । मनुष्य के खोरा अथवा ओरा को केवल शरीर के इधर उधर छाया के रूप में रहाहुआ पदार्थ न समझना क्योंकि उसमें सभी तत्वों के पदार्थ रहते हैं । पहले तो स्थूलशरीर का खोरा जिसको अंग्रेजी में हेल्थ ओरा कहते हैं वह शरीर के इधर उधर एक दो इंच के अन्तर पर फिरता हुआ देखने आता है दूसरा खोरा प्राणतत्व का है,

आगे कहआयेहैं तैसेही प्रत्येक मनुष्य का प्राण शरीर में व्याप्त होतेहुए भी शरीर के चारों ओर विस्तारित रहता है, ऐसा जितना भाग शरीर के भीतर हो उतना देखने में नहीं आता वरन जितना शरीर के बाहर पड़ता हो उतना खोरा बिश्व दृष्टिवालों को दिखाता है । परन्तु यह तो केवल प्राणतत्व का ओरा है । इसही प्रकार कामरूप और मनस के भी शरीर के उपरांत अधिक स्थान रोकने से उसका जितना भाग शरीर के बाहर पड़ता है उतनाही 'ओरा' की समान दिखाई देता है । इस प्रकार जो साधारण रीतिसे 'ओरा' कहने में आता है उसमें प्राणका 'ओरा' स्थूल शरीर का ओरा, कामरूपका ओरा, तैसेही मानसिक ओरा आदि सब तत्वों के ओरा आजाते हैं । इन सब ओरोंके अथवा उन ऊपर के तत्वों के शरीर के बाहर चारों ओर गोल आकार में फैले होने से जब मनुष्य की ओर बिश्वदृष्टि के द्वारा देखाजाता है तब वह नानाप्रकार के रंगोंका झलकता हुआ अंडकी समान गोल आकारका दिखाई देता है और उसका स्थूल शरीर इन सब तत्वों के बीच में रहाहुआ सबसे छोटा देखने में आता है । स्थूल शरीर के बाहर ऊपरी तत्वों के जो पदार्थ पड़ते हैं उनको ओरा की समान गिनाजाता है ऐसा ध्यान में रखना चाहिये । मन में

विचार आने से या कामरूप में आवेश होने से उन २ तत्वों में उसही प्रकारकी लहरियें उत्पन्न होतीहैं और इसकारणही पृथक२ समयों में 'ओरा' में पृथक २ रंग देखेजाते हैं । 'ओरा' के रंगोंको देखकर मनुष्य के गुण अवगुण बिना दिव्यदृष्टि वाले के कोई सहलता से नहीं कह सक्ता, प्रत्येक भांति के आवेशों से 'ओरा' में विशेष २ रंग प्रगट होते हैं, उससे क्रोधी, कपटी, क्रूर, शांत, भोला, दयालु, उदार, सच्चा झूटा इत्यादि मनुष्य के गुण अवगुण उस ओरा के रंगोंको देखतेही जाने जासक्ते हैं क्योंकि गुण अवगुणके अनुसारही ओराकारंग अधिक प्रबल होतारहताहै । जिस२ मनुष्यका जो २ तत्व दूसरेकी अपेक्षा अधिक विकशित होता है उस २ तत्वका 'ओरा' उसमें अधिक खुला हुआ दिखाता है । नीच और तुच्छ स्वभाव के मनुष्यों में कामरूपकी 'ओरा' सब की अपेक्षा अधिक विकाशित अवस्था में दिखाई देती हैं, और अत्यन्त पापियों के 'ओरा' कारंग काला होता है । इससे विपरीत अत्यन्त पवित्र और धर्म मार्ग में चलने वालों का तैसेही ज्ञानियोंका ऊपरीमनस और बुद्धिका 'ओरा' अत्यन्त विकशित होता है और उसका रंग सुनहरा होता है । पैगम्बर, महात्मा और धर्म गुरुओं के चित्रों में माथे के आसपास जो सुनहरे रंग

का ओरा बनाहोता है उसको ऐसा समझना कि मूर्ख लोगों ने शोभा के निमित्त बनादिया है भूल से भराहुआ है । सात वर्षसे नीचे के पवित्र बच्चेका 'ओरा' सफेद दूध की समान रुपहरे रंग का देखने में आता है परन्तु जब पीछेसे उसका मनसकी उपाधि के साथ पूर्ण सम्बन्ध होता है तब उसमें के कर्मानुसार भले बुरे गुण प्रगट होते हैं, और तभी 'ओरा' में भी उसही प्रकार के रंग उत्पन्न होजाते हैं ।

❀ चौथा प्रकरण ❀

* पुनर्जन्म अथवा अवतार. *

शो०—अवतार अथवा पुनर्जन्म यह क्या है ?

थि०—शरीर में रहाहुआ जीव (मनस जो अपनपौका भान रखता है वह) शरीर का नाश होने के पीछे अमुक समय में कर्मानुसार दूसरे शरीर में प्रवेश करता है और उसके मरने के पश्चात् फिर नये शरीर में प्रवेश करता है, ऐसा जन्म मरण रहित जीव जन्म मरण पानेवाली देह में वारम्वार प्रवेश करता है इसही का नाम अवतार अथवा पुनर्जन्म है।

शो०—अवतारके नियम सम्बन्धमें 'थियासोफी'का क्यामतहै ?

थि०—'थियासोफी' इस नियम की यथार्थता को स्वीकार करती है इतनाही नहीं वरन अवतार और कर्म के नियमों के ऊपरही 'थियासोफी' का आधार है। संसार के मनुष्योंका बहुत

भाग अवतार की यथार्थता को स्वीकार करता है। लाखों हिन्दू और बुद्धमतवाले अवतार के नियमको प्रकृति रीतिसेही मानते आये हैं, और उनको सिखाने की तो कुछ आवश्यकताही नहीं पडती। तथा यूरोप के बडे २ फिलासफर कि जिन्हों ने पृथक २ धर्मों और फिलासफियोंका अभ्यास किया है वे भी अवतार के नियमों की यथार्थताको स्वीकार करते हैं। पेरेसेलसस, वोहेम स्वांदेनवोर्ग, स्कोपनेर, लेसिंग, हीगल, लीवनीज, हरदर और फीत्य की समान फिलासफियों ने इसकी यथार्थताको माना है।

शो०—परन्तु जो मनुष्य जातिका अवतार होता होतो फिर पिछले अवतार की किसी भी बातका स्मरण नहीं रहता इसका कारण क्याहै

थि०—जिसको मनुष्य का बँधाव कैसा है इसकी ही सुध नहीं उसको यह प्रश्न बहुत भारी दीखपड़ता है परन्तु जो यथार्थ में समझा जाय तो यह अत्यन्तही तुच्छ है। गुप्तविद्या के आधार से मनुष्य का बँधाव जानने से तत्कालही इसका स्पष्टीकरण होसक्ता है। पांचवां तत्व जो मनस है वही अवतार धारण करने वाला यथार्थ मनुष्य है, ऐसा पहिले कहआये हैं, उसको पिछली समस्त बातों का स्मरण है ऐसा जानना। जिस समय मनस स्थूल शरीर के साथ मिलारहता है उस समय वह दोभागों

में बँटजाता है, एक ऊपरी मनस दूसरा निचला मनस । निचला मनस केवल ऊपरी मनस की किरण अथवा प्रतिबिंब है कि जो कामतत्व की द्वारा नीचे के तत्वों के साथ सम्बन्ध रखता है । जैसे सूर्य की किरण आंख में पड़ने से आंख के कोषों में लहरी उत्पन्न होती है वैसेही मनस की किरण से मस्तिष्क के कोषों में लहरी उत्पन्न होती हैं और स्मरण शक्ति, विचार शक्ति, इच्छा शक्ति इत्यादि उत्पन्न होती हैं । जैसे बजाने वालेके आधारसेही बाजे मेंसे शब्द उत्पन्न होता है वैसेही नीचे के मनस के आधार सेही मस्तिष्क में ऊपरीशक्ति उत्पन्न होती हैं, और जैसे बजाने वाले की योग्यता भले या बुरे बाजे के ऊपर निर्भर है वैसेही मनस की योग्यता के प्रगट होनेका आधार उसकी उपाधि जो मस्तिष्क है उसके बल और अवस्था के ऊपर निर्भर है । अब निचले चार तत्वकि जिनमें निचला मनस थोड़े समय के निमित्त उतरता है उनके नाश होने से निचले मनसका नाश नहीं होता, परन्तु ऊपरी मनस कि जिसमें से वह हाथी की सूंड के समान बाहर पड़ा था वह समस्त अवतारों में मिलेहुए अनुभवों को अपनी ओर खींचता है; जिससे मनस प्रत्येक अवतार में बढ़कर बड़े ज्ञान और अनुभव वाला होता है । ऐसा होते हुएभी एक किसी अवतार में भी

निचले मनस को पिछले अवतारों की बातका स्मरण नहीं रहता, इसका कारण यह है कि मस्तिष्क के द्वाराही बातों का स्मरण रक्खाजाता है वह मस्तिष्क जब से अस्तित्व में आता है तभी से होती हुई अथवा होगई हुई बातों का स्मरण रखसक्ता है परन्तु जिस समय से वह अस्तित्व में आया है उसके पहिले की बातें मस्तिष्क में होही नहीं सक्तीं। प्रत्येक अवतार के अंत में निचले चार तत्वों का नाश होने से एक अवतार के मस्तिष्क का दूसरे अवतार के मस्तिष्क से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं रहता, इस कारण वर्तमान अवतार का मस्तिष्क पिछले अवतारकी बातों को नहीं जानसक्ता। ऐसा होतेहुए भी कितने एक मनुष्य अपने पिछले अवतार की बातों का स्मरण रखसक्ते हैं, परन्तु उसका कारण यह है कि वे अत्यन्त पवित्रता और ज्ञानसे ऊपरी और निचले मनस के बीचके सम्बन्धी अंतःकरण को सदैव खुलारखते हैं, जिससे साधारण मनुष्य का भान जो जीवित अवस्था में काम–मनस के भुवन के ऊपरजा अटकता है उसके परिवर्तन में ऐसा मनुष्य जीवित अवस्था में ऊपरी मनस के भुवन के भान को धारण करसक्ता है और इससे उसको अपनी पिछले अवतारों की बातोंका स्मरण रहता है। इसके अतिरिक्त

यहभी बात ध्यान में रखनी चाहिये कि साधारण मनुष्योंका जन्म होनेके पीछे उनके मस्तिष्क में इतनी शक्ति नहीं होती कि जो वे हुई बातोंका स्मरण रखसकें । बचपन में हुई बातोंका जवानी में स्मरण नहीं रहता। और उन सबके स्मरण रहनेकी कुछ आवश्यकता भी नहीं है बचपन में हुई बातोंका जो २ अनुभव मिलता है उसकी छाप मनके ऊपर पड़जाती है । सब कोई जानता है कि अग्नि में हाथ डालने से जल जायगा, परन्तु यह समझ किस समय और किस प्रकार से हुई यह स्मरण बहुत थोड़ोंही को होगा. इस कारण ऐसा प्रमाणित हुआ है कि बीती हुई बातोंका स्मरण नहीं रहता परन्तु उसके अनुभव की छाप मनमें अवश्य ही होजाती है । बालकपन में क्या २ हुआ इसका स्मरण न रहते हुए भी उससे मन के ऊपर असर पड़ने के कारणही युवा मनुष्यों में बच्चों की अपेक्षा अधिक बुद्धि देखने में आती है । इस बातको सबही कोई स्वीकार करते हैं । तो फिर पिछले अवतारों की बातों का स्मरण न रहते हुए भी प्रत्येक मनुष्य न्यून या अधिक वृद्धि के साथ जन्म पाता है वह पिछले अवतारों में मिलेहुए अनुभवों काही परिणाम होना चाहिये ऐसा स्वीकार करने में विचारवान मनुष्य को कुछभी कठिनता न पड़ेगी । यदि

अवतार का नियम मनुष्यों से सम्बन्ध न रक्खे तो प्रत्येक मनुष्य जानवर की समान एकसीहीं बुद्धि के साथ उत्पन्न होना चाहिये परन्तु ऐसा नहीं होता यह सबही कोई जानते हैं। एक अफ्रीकिन और एक यूरोपियन के बच्चे में जो आसमान और पृथ्वी का अंतर देखने में आता है उसका स्पष्टीकरण बिना अवतार का नियम माने संतोषकारक रीति से नहीं होसक्ता।

शो०—जोआफ्रीकनके बच्चेको बचपनसेही युरोपमें पालापोषा जायतो क्या वहभी यूरोपियन की समान बुद्धिवाला नहींहोसक्ता

थि०—जो मनुष्यकी बुद्धि केवल जन्मसे मिलतीहुई शिक्षा के ऊपरही निर्भर होतो एक मां बाप के दो बच्चे कि जिनको एकही प्रकारका पोषण और शिक्षा मिली है वह एक समानही बुद्धिवाले या सद्गुणी अथवा पापी होने चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं होता, इतनाही नहीं वरन बहुत समय इस से विपरीत भी होजाता है, यहांतक कि एक सीधा और उत्तम चालचलन वाला निकलता है तो दूसरा मूर्ख और पापी होता है। तथा साथ ही उत्पन्न हुए बच्चे कि जिनको जौरा भौंरा कहाजाता है वह अत्यन्त बालकपन में इतना मिलतेआतेहैं कि एक दूसरेको पहिचानने में कठिनता पड़जाती है वह जो एक समानही रीति से दिखाई देते

हैं उनमें भी पंक्ति को अत्यन्त अंतर पड़जाता है ऐसा होने का कारण क्या है ? अब देखना चाहिये कि इसका स्पष्टीकरण केवल अवतार और कर्म के नियमों के ऊपरही निर्भर होसक्ता है। संसार के बहुत से मनुष्य अवतार के नियमों को स्वीकार करते हैं क्योंकि वह सत्य है। यह कुछ आज कलकी उत्पन्नकी हुई या जोड़ी हुई बात नहीं है। वेद पुराण आदि पुराने शास्त्रों में सहस्रों वर्ष पूर्व से लिखाहुआ है। उसके सम्बन्ध में मिलती हुई बातका स्पष्टीकरण होसक्ता है तोभी हमारी धर्म पुस्तकों में अवतार की बात नहीं मिलती इससे हम नहीं मानेंगे, यह कितनेएक अज्ञानी लोग कहते हैं, परन्तु ऐसा कहनेका आज समय नहीं है, क्योंकि वह बुद्धि से विपरीत है। जो कोई अमुक बात बुद्धि में आती हो वह धर्म पुस्तक में हो या नहो तोभी उसका स्वीकार करना अपना कर्त्तव्य है।

शो०—परन्तु मा बापका असर वंश परंपरा के नियम के आधार से बच्चों में होता है किंवा किसी से तो फिर आफ्रीकन का बच्चा जंगली और यूरोपियनका बुद्धिमान क्यों निकलता है ?

थि०—वंश परंपराका नियम अधिकतर शरीरकोही लगसक्ता है परन्तु ऊपरी तत्वों को नहीं लगसक्ता. ऐसा होते हुएभी तोड़

मरोड़ कर सब बातों का स्पष्टीकरण इस नियम के आधार से समझने की कोशिश करना यह भूल से भराहुआ है । जो केवल इन्हीं नियमको मान बैठें तो बहुतसी बातोंका स्पष्टीकरण नहीं होसक्ता कि जो केवल अवतार और कर्म की रीतों के आधार से ही बिना खैंचतान किये होसक्ता है और इससे तैसेही दूसरी बातों से अवतार का नियम यथार्थ है ऐसा प्रमाणित होता है ।

१ —जो बंश परंपरा के नियम के अतिरिक्त दूसरा कुछ कारण न होतो एक मा बाप के दो बच्चे एक ही सी बुद्धिवाले तैसेही पापी या सद्गुणी होनाचाहिये ।

२—जौंरा भौंरा कहाते हुए दो बच्चे बालकपन में एकही समान होते हुएभी और वह एकही प्रकार से पालेजाने पर भी पीछे से उनके बिचार आचार म जो बड़ाभारी अंतर पड़जाता है वह नहीं होना चाहिये ।

३—बाप के समान दिखाव और मिलाव होने परभी बहुत समय दोनों की बुद्धि और विचारों में जो आसमान और पृथ्वी का अंतर देखने में आता है वह नहीं होना चाहिये ।

४—बुद्धिमान मा बाप के पेट से मूर्ख बच्चे उत्पन्न होते हैं वह नहीं होना चाहिये ।

५—दरिद्रावस्था में कोने में पड़े हुए और शिक्षा न पाये हुए मा बाप के पेट से बड़े २ फिलासफर और कवि जन्मपाते हैं ऐसा नहीं होना चाहिये ।

६—पवित्र मा बापसे पापी बच्चे उत्पन्न होते हैं ऐसा नहीं होना चाहिये ।

७—पापी मा बाप से सद्‌गुणी पुत्र उत्पन्न होते हैं वह नहीं होना चाहिये ।

८—वंश परंपरा के नियम को पकड़ बैठें तो बुध, जरथोस्त ईसा इत्यादि पैगम्बरों में इतनी बड़ी पवित्रताई कहां से आती, इसका स्पष्टीकरण नहीं होसक्ता ।

९—एक मा बाप के दो बच्चों में एक के गाने या कविता लिखनेकी प्रकृतीही शक्ति होती है और दूसरे में ऐसा क्यों नहीं होता, इसका कारण क्या है ?

१०—केवल वंश परंपरा के नियम के ऊपरही समस्त आधार होवे तो मनुष्य को अपनी उन्नति करने के बदले जानवरों की समान एकही अवस्था में रहना चाहिये । गाय, भैंस, कीड़ा, मकोड़ा इत्यादि सबही वंश परंपरा के नियमानुसार अपनी विशेषरीति के उपर चलेजाते हैं तैसेही मनुष्य जातिको भी इसके अतिरिक्त

दूसरा रातका कगात न लगना चाहिये । जैसे पांच सहस्र वर्षकी गाय या कीड़ाकी अपेक्षा आजकी गाय या कीड़ेमें कुछ अधिकता नहीं है उसही प्रकार मनुष्य कोभी होनाचाहिये । ·

११—इस कंगाल दिखाती हुई पृथ्वी में एक दुःखी और दूसरा सुखी, एक जन्म सेही अंधा, लूला, लँगड़ा, कोढ़ी या रक्त पित्त से भराहुआ, भिखारी के पेट से जन्मपाया हुआ, मरने पर्यंत दुःख पानेवाला होता है और दूसरा देह से सुखी अच्छे कुलमें उत्पन्न होनेवाला, पैसा से सुखी,—बुद्धिमान, और मान प्रतिष्ठाके पानेवाला और मरने पर्यंत सुखी होता है, यह तो अत्यन्तही दुःख उत्पन्न करनेवाली बात है तैसेही संसार में प्रत्येक जातिपर अनुचित व्यवहार और अन्यायपना दिखाईदेता है ऐसा होनेका कारण ईश्वर के हाथ में है ऐसा कहाजाय तो जानकर भी अनजान बन ईश्वर को अन्यायी और निर्दयी स्थिर करना है, और जो ऐसा नहीं होतो इस बातका यथार्थ स्पष्टीकरण केवल अवतार और कर्म के नियम के अनुसारही होनाचाहिये इसमें कुछ सन्देह नहीं है ।

१२—कुमार्ग में चलने से प्रमेह इत्यादि उत्पन्न हुए रोग मा बाप से बच्चोंमें आजाते हैं और वह बच्चा प्रगट रीतिसे अपने मा बाप के पापके कारण जन्मभर दुःखित रहता हुआ जानपड़ता है,

यह अन्याय किस कारण होना चाहिये ? इसका भी स्पष्टीकरण केवल अवतार और कर्म के नियमों के आधारसेही होसक्ता है।

१३—ऐसा भी मानने वाले संसार में बहुत हैं कि प्रत्येक मनुष्य का जन्म होनेके निमित्त ईश्वर नयाजीव उत्पन्न करता है परन्तु जो ऐसाही होतो दूसरी दो बातोंके स्वीकार करनेको विवश होना पड़ता है एक तो यह कि जो प्रत्येक मनुष्य के उत्पन्न होने के कारण ईश्वर नया जीव रचता होतो जब तक मनुष्य अपनी इच्छानुसार अपनी इन्द्रियों को वशमें कर बच्चेका शरीर उत्पन्न न करे तब तक उसमें जीव डालने के निमित्त ईश्वर को उसके नौकर की समान नौकरी बजाने की आवश्यकता होनी चाहिये। और फिर दूसरे यह कि जो ईश्वर एक ओर से कुमार्गियों को दण्ड देता है तैसेही दूसरी ओर से उसही प्रकार के उत्पन्न हुए सहस्रों बच्चों में जीव डालता है ऐसा मानना चाहिये कि जो बात बुद्धि से विपरीत और वैसेही मूर्खता से भरीहुई है।

१४—जो ऐसा मानते हैं कि मरने के पीछे सदैव तक स्वर्ग में या नर्क में पड़ना है तो इसको भलीप्रकार से विचारना चाहिये कि जो ऐसाही हो और एक थोड़े वर्ष के जीवने में कंगाल दशा में उत्पन्न हुए मनुष्य से अज्ञानता से और इधर उधरके दबावके

कारण जो २ पाप हुएहों उसके कारण उसको सदैवही तक नर्क में रहनेका दंड मिलता होतो वह अत्यन्तही अनुचित और पाप की सीमा से बाहर है। तैसेही एक जन पैसा से भरापुरा हुआ मनुष्य उत्पन्न होकर उदारता अथवा कुछ पुण्य अपनी इच्छा या किसी दूसरे दबाव के कारण करे तो उसके कारण उसको सदैवही वैकुंठ में रहना होता है तो वहभी उतनाही अनुचित है और कियेहुए पुण्य के अनुसार जितना फल मिलना चाहिये उस की सीमा से बाहर है। तथा इस प्रकार मरने के पीछे एकही अवस्थामें जीव अनंतकाल तक पड़ारहकर सुख या दुःखही भोगा-करे और उसमें से उसका कुछभी छुटकारा न हो यह बात प्रकृति की रीति के विपरीत है। प्रकृति में कोई भी वस्तु एकही अवस्था में सदैव नहीं रहनेपाती, अतएव स्वर्ग या नर्क में जीव सदैवही पड़ारहे ऐसा मानना अनर्थक तैसेही खोटा और नादानीसे भराहुआहै

शो०—तब अवतारका नियम क्या है—मनुष्यजाति के सात तत्वों मेंसे कौन अवतार लेता है कौन नहीं लेता—किसप्रकार से अवतार लियाजाता है और किस कारण से अवतार लेने में आता है ? इसका स्पष्टीकरण करिये।

थि०—मनुष्य के साततत्वों में से पांचवां तत्व जो मनस है

वही अवतार धारण करनेवाला यथार्थ मनुष्य है यह ध्यान में रखना चाहिये । जब मनस नीचे के चारतत्वों में प्रवेश करता है तब अवतार धारण करना कहाजाता है । मनस को अवतार लेने के कारण केवल मनुष्य के शरीर कीही आवश्यकता है मनस जानवरों के शरीर में प्रगट नहीं होसक्ता । 'परब्रह्म' में से प्रगटीकरण आरंभ होनेके पश्चात् आत्मा बुद्धिके बलद्वारा लाखोंवरस से मनस प्रगट होसक्ता है ऐसी उपाधि अस्तित्वमें आई। आत्मा बुद्धिको जो समस्त प्रकृतिको पृथक २ रूप में लाय अधिक से अधिक सजीवन करनेकी शक्ति है, उसकी सहायता से पृथक २ भुवनों के पदार्थोंमें से यह चारतत्व अस्तित्वमें आये; उससमय मनुष्य और जानवरों में कुछभी अंतर नहीं था. क्योंकि इनचार तत्वोंकी जानवरों में भी प्रगट होनेकी अवस्था है । जब आत्मा बुद्धि के बलद्वारा पृथक २ भुवनों अथवा महाभूतों के पदार्थोंमें से मनस प्रगट होसक्ता है ऐसे चारतत्व अस्तित्व में आये तब उनके साथ आत्मा बुद्धिका सम्बन्ध होनेके कारण बीचमें मनस के प्रगट होनेकी आवश्यकता पड़ी । अब इससृष्टिके प्रथम होगई सृष्टि अथवा प्रकटीकरण में जिस जीवने अनुभवलेकर अहंताको स्वीकार कियाथा, वही जीव कि जो मनस पुत्र, कुमार, सूर्य पित्र

इत्यादि के नामों में आया वही मनस केभी काम में आया और उसकी उपाधि के अनुसार काममें आवे ऐसा शरीर अथवा उपाधि को तइयारहुआ देख उसमें मनस प्रगट करनेके निमित्त अपनी किरण उसमें डाली। कामरूप में मनस पुत्रकी किरण पड़ने से वह नया मनस किरणके आकारमें अस्तित्वमें आया, अथवा काम रूपमें अहंताका स्वभाव अस्तित्वमें आया। इसकिरणरूपी अस्तित्व में आयेहुए मनसने धीरे २ बहुत से अवतार ले ज्ञान और अनुभव के मिलनेका काम चलायमान किया इस मन्वन्तर अथवा प्रगटी करण के पूरेहोने से पहिले कामरूपको वश में कर मनस पुत्रकी अवस्था में आनेका उसका काम है। इस महाकार्य के पूरेहोनेके कारण उसको अत्यन्तही अवतार लेनेकी आवश्यकता पड़ती है ऐसा बहुतेक स्थानों में कहने में आया है कि आत्मा–बुद्धि मनस अवतार धारण करता है परन्तु जो यथार्थ में देखाजाय तो केवल मनसही अवतार धारण करनेवाला है। समस्त सृष्टि में एकही आत्मा और बुद्धि होने के कारण उनको अवतार धारणकरने की शक्ति नहीं है, इसही अनुसार नीचे के चारतत्व भी अवतार नहीं लेसक्ते, क्योंकि उनका प्रत्येक अवतार के अंतमें नाश होजाता है स्थूल भुवन के ऊपर मनस के प्रगट होने के निमित्त केवल

चारतत्त्वही उपाधिकी समान काममें आते हैं। जन्म मरण रहित मनस अपने कर्मानुसारही उपाधिमें अवतार लेता है और उसके ही द्वारा वह अपने अधूरे रहगयेहुए अनुभवको फिर पूर्ण करता है। पहिले कहआये हैं कि बाजे और बजानेवालेकी समान नीचे के चारतत्त्वों और मनसका सम्बन्ध है। बंश परम्परा के नियमानुसारही प्रत्येक उपाधी में जो निर्बलता रहजाती है तो बन्धन में रहेहुए मनस कोही उसके पूरेकरने में विवश होना पड़ता है। इसके द्वारा जो २ दुःख उसको पड़ते हैं वह केवल देहकी निर्बलता और उसकी पार्श्विक अवस्थाकाही कारण है—भली या बुरी देह मिलनेका आधार मनस के कर्मों के ऊपरही है कि जिसका हम पीछे स्पष्टीकरण करेंगे।

शो०—जो प्रत्येक अवतारों में भली या बुरी देह मिलनेका आधार पिछले अवतारों के पाप या पुण्य अथवा कर्मके ऊपरही निर्भर होवे तो अतिपापी जीव को जानवरों की देह में जन्म लेना पड़ेगा या नहीं?

थि०—कितनेही एक हिंदुओंका मत है कि पापियों को पशु की देहमें अवतार लेना पड़ता है, परन्तु ऐसा होनेका कारण अबतक भलीप्रकार से नहीं जानागया। पहिले कहआये हैं कि

नाचेके चारतत्व जबतक मनसकी उपाधि के समान काममें आवें ऐसी अवस्था में प्रगट नहीं होते तबतक मनस उसमें अवतार नहीं लेसक्ता और मनुष्य की देह के अतिरिक्त दूसरे जानवरों की देह मनस के प्रगट होनेके निमित्त नाकाम है । ऐसा होनेके कारण एक समय मनुष्य की देहमें प्रवेश होनेके पीछे वही मनस कि जिसको अपना अनुभव बढ़ानेके निमित्त अवतार लेनापड़ता है फिर पीछे किसी भी पशुकी देह में किसी किसी प्रकार से भी उसके काममें नहीं आसक्ती उसमें केवल पाप के फल भोगनेके ही कारण प्रवेश करे ऐसा सम्भव नहीं होसक्ता । क्योंकि पाप का दण्ड भोगने की समान चाहे जितना दुःख वैसेही पुण्य के फल की समान चाहे जितना सुख भोगने को मनुष्य की देहही में जैसा चाहिये बनसक्ता है; दुःख में पड़ेहुए मनुष्य की अपेक्षा; जानवर कुछ अधिक दुःखी नहीं हैं तो फिर पाप से बँधेहुए जीव को जानवर की देह में किस कारण अवतार लेना पड़े, इसका अबतक भलीप्रकार से स्पष्टीकरण नहीं हुआ ।

शो०—तो प्रत्येक अवतार के जीवको पृथक २ जाति की उपाधि किसप्रकार मिलती है इसका स्पष्टीकरण कीजिये ।

थि०—भली या बुरी जैसी उपाधि जीवको मिलती है उसको

बनानेवाला वह स्वयंही है, यह बात ध्यानमें रखनेकी आवश्यकता है । पृथक २ जातिकी देह मिलने का कारण कर्म है कर्मका करने वाला मनस स्वयंही है वह अपने विचारों से और अपनी नानाप्रकार की चालों से अपने आने वाले अवतार के कारण जानकर या बहुत से अनजानकर अपनी उपाधि को प्रस्तुत करते हैं । यह बात समझ में आजावे इस कारण मनस अपने विचारों से किसप्रकार कर्म करता है यह समझने की आवश्यकता है । मनस में क्रियाशक्ति अर्थात् विचारों के उत्पन्न करनेवाली शक्ति है । मनस क्रियाशक्ति से स्थूल भुवन के पदार्थोंको चाहे जिस आकार में नहीं लासक्ता परन्तु मानसिक भुवन के सूक्ष्म पदार्थोंको चाहे जिस आकार में लानेकी उसको शक्ति है । मनमें ज्योंहीं विचार उत्पन्न हुआ कि विचार के पीछेही वह चाहे जैसा कठिन होतो भी तत्कालही मानसिक भुवनों के सूक्ष्म पदार्थ विशेष आकार पकड़ते हैं । अर्थात् जैसे इस स्थूलभुवन के ऊपर कुरसी या टेबिल बनाने की इच्छा होवे तो इस प्रकार का विचार करने के साथही मानसिक भुवन के पदार्थ वस्तुका आकार पकड़ते हैं । मानसिक भुवन के पदार्थ कैसा आकार पकड़ते हैं तथा उसमें कैसे रंग इत्यादि होते हैं उसका आधार विचेहुए भले या बुरे बलवान तथा

निर्बल विचारों के ऊपर रहता है । परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि किसी भी विचार से काम—मानसिक भुवन के ऊपर लाभ या हानि करनेवालीही वस्तु उत्पन्न होती है । इसका हम पीछे से भली प्रकार स्पष्टीकरण करेंगे (देखो प्रकरण सातवां) अब ऊपरी भुवनों के अस्तित्वका ध्यान न होने से और जितना इन्द्रियों के द्वारा जानने में आता है उतनाही अस्तित्व में है ऐसा समझने से तथा साधारण मानस विचार करनेका काम मेरा है उसमें किसी का क्या गया ऐसा कहकर मनमें चाहे भले या बुरे काम के या नाकाम विचार जो उत्पन्न होते हैं वेही सब विचार कर्म हैं । वेही अच्छे विचार उसके मित्रहोजाते हैं और बुरे विचार उसके शत्रु होपड़ते हैं । जिसप्रकार तालाब में पत्थर फेंकने से उसमें रहेहुए पानी की स्थिरताका भंगहो उसमें घेरे व लहरियें इत्यादि उत्पन्न होजाती हैं तैसेही बुरे विचारों से प्रकृति के सूक्ष्म तत्वोंकी शांतिका भंगहोता है और उसके फलानुसार विचार करने वाले को जो दुःख होता है वह केवल सृष्टि में समताही लाने के कारण है । इसही कारण प्रत्येक धर्म में तैसेही गुप्तविद्या के अभ्यासियों को मन के पवित्र रखने कोही कहा है ।

शो०—विचारों से ऊपरी मानसिक भुवन के सूक्ष्म पदार्थों

में से लाभ या हानि करने के शक्ति उत्पन्न होती है ऐसा समझ में आया परन्तु उसका कोई भी प्रमाण मिलेतो ठीक है ।

थि०—आजकल यूरोपमें 'मेसमेरीजम' अथवा 'हिपनाटीज़म' के सहस्रों अनुभवों से प्रमाणित होचुका है (देखो डेल्युज़का ओनीमल मेग्नाटिज़म), कि विचारों से ऊपरी भुवनों के सूक्ष्म पदार्थों को चाहे जिस आकार में लासकते हैं । मनमें अमुक वस्तु का विचार कर जो उस विचारको एक कागज या दीवारपर लिख दियाजाय तो उस स्थान में 'मेसमेराइज़' मनुष्य को वह वस्तु है ऐसा भलीप्रकार से दिखाता है । दूसरे एक खाली गिलास में दूध या कोई और दूसरी वस्तु है ऐसा विचार करके 'मेसमेराइज़, किये हुए मनुष्य को वह गिलास दिखाजय तो उस गिलास में दूध अथवा वह विचार कीहुई वस्तुही है ऐसा उसको भलीप्रकार से जानपड़ेगा, इतनाही नहीं वरन वह दूध इत्यादि समझकर पीने लगेगा । फिर जब 'मेसमेराइज़' करनेवाला अपने मन में किसी छोटे जानवर का आकार निश्चय कर 'सब्जेक्ट' की गोद में बैठा हुआ है ऐसा कल्पित करता है तब 'सब्जेक्ट' अथवा 'मेसमेराइज़' हुआ मनुष्य उस जानवर को अपनी गोद में बैठाहुआ देखता है इतनाही नहीं वरन उसके ऊपर हाथ फेर २ कर पुचकारताभी है

इस प्रकार विचारों से उत्पन्न होतीहुई सूक्ष्म वस्तुएं सूक्ष्म भुवनों के संबंधी होने से अपनी इन्द्रियों द्वारा नहीं जानी जातीं, परन्तु 'मेसमेराइज़' हुआ मनुष्य कि जिसका भान थोड़े समय के निमित्त ऊपरी भुवन के ऊपर जाता है उसको वह यथार्थही लगता है। इस बातसे केवल इतनाही जानना है कि मनस में आकार उत्पन्न करने की शक्ति है और इस कारण जो एक विचार बाहर हुआ वह शीघ्रही मानसिक भुवन के ऊपर आकार पकड़ता है और उसके पीछे काम—मानसिक भुवन के ऊपर से उतर वहां प्रगट होने के कारण वहां के पदार्थों की उपाधिले अधिक घट बनता है। तदनंतर वह नीचेके कामलोक के पदार्थकी उपाधिले अधिक घट बनता है, यह अवस्था विश्वदृष्टी वाले कोही दिखाईदेती है ऐसे विचारों से उत्पन्न हुए आकार को गुप्तविद्या के जाननेवाले अपनी इच्छाशक्ति के बलसे स्थूल उपाधिको खींच अर्थात उसके ऊपर स्थूलभुवन के परमाणुओं को खींच स्थूलभुवन के ऊपर प्रगट करसक्ता है। विचार से उत्पन्न हुए आकार इस प्रकार निचले भुवनों की उपाधिले अंत में स्थूलभुवन के ऊपर दृढ़वस्तु के आकार में प्रगट होता है।

शो०—विचार से उत्पन्न हुए मानसिक भुवनों के सम्बन्धी

सूक्ष्म आकार घट होते २ स्थूल भुवन के ऊपर वस्तु के रूप में प्रगट होते हैं इसका कुछ प्रमाण देकर समझाइये ।

वि० —'हाइड्रोजन' और 'आक्सिजन' गैससे भराहुआ एक कांच का गिलास या वर्तनहो । उसमें अग्निकी एक चिनगारी डालने से दोनों गैस एकत्रित होकर पानी के सूक्ष्म परमाणु उस वर्तन में भाफ के रूप में जानपड़ेंगे । उस भाफको ठंढ मिलनेसे पानी के छोटे २ कण उस बासनकी तहमें जानपड़ेंगे और उससे भी अधिक ठंढ लगने से बासन में बर्फ की पपड़ी बँधजाती है । इसही प्रकार जब मनमें से विचार चिंगारियों की समान बाहर होता है उससे उत्पन्न हुई लहरियों से वर्तन में रहीहुई अदृश्य गैसकी समान मानसिक भुवन के अदृश्य पदार्थमें लहरियें उत्पन्न हो आकार उत्पन्न होता है किजो काम मानसिक भुवन के ऊपर अधिक घटरूप में प्रगट होता है और अपने दियेहुए उदाहरण में भाफकी समान मिलता है, तदनन्तर वह निचले कामलोक में प्रगट होता है कि जो उदाहरण में कहेहुए पानी से मिलता है, और अंत में वह स्थूलभुवन के ऊपर दृढ़रूप में प्रगट होता है कि जो उदाहरण में बर्फ से मिलता है । इसही प्रकार सूक्ष्म अवस्था में रहेहुए पदार्थ स्थूलभुवन के ऊपर दृढ़रूप में प्रगट

होते हैं । प्रकृति में ऐसा फेरफार सदाोंही देखने में आता है । वनस्पतियें जो उगतीहुई जानपड़ती हैं उनकी भी यही रीति है । वायु में रहेहुए सूक्ष्म तत्व पानी के आकार में और दृढ़ पदार्थ के आकार में बदलकर वनस्पति के रूपमें बदलजाते हैं तबहीं वनस्पति का उगना कहाजाता है ।

शो०—मनस में क्रियाशक्ति का बल होने से वह मानसिक भुवन के ऊपर आकार उत्पन्न करता है और वह आकार स्थूल भुवन के ऊपर दृढ़ पदार्थ के रूप से प्रगट होसक्ते हैं इतना तो समझ में आया, परन्तु उसका अवतार के नियम के साथ क्या सम्बन्ध है वह कहो?

थि०—इस बात से यह समझना चाहिये किजो स्थूल उपाधि अपने को इस अवतार में मिली है वह केवल पिछले अवतारों में कियेहुए विचारों काही फल है, तैसेही वर्तमान अवतार में जो भले या बुरे कर्म कियेजाते हैं वह सब होनेवाले पिछले अवतार में उपाधि के रूप में आमिलेंगे । हमको अपनेही विचार दृढ़रूप से पकड़ उपाधि की समान अपनेही में आमिलते हैं । जो २ विचार हम करते हैं उन सबकी परछाया अपने खोरह अथवा 'ओरा' में रहती है । बारम्बार कियेहुए विचारोंकी परछाया खोरा में

स्थिर होरहती है और उससे उत्पन्न हुए प्रभाव को टेव पड़ना कहाजाता है। ऐसेही जन्म से मरण पर्यंत हुए समस्त विचारोंकी परछाया 'ओरा' में इकट्ठी होती है, उससे जो मानसिक शरीर उत्पन्न होता है वह मरण के पीछेभी अस्तित्व में रहता है; और उसमें विशेष अन्तर होनेके पीछे वह स्थूलभुवन के ईथरों की उपाधि ले दूसरे अवतार के छाया शरीर की समान तइयार होता है। इसप्रकार तइयार हुए छाया शरीर के ऊपरही उसके सम्बन्धी स्थूल शरीरका बँधाव है और उसमेंही जीवको अवतार लेनापड़ता है। इससे जानना चाहिये कि यह स्थूल शरीर केवल अपनेही कर्मों अथवा विचारोंका परिणाम है और उसके बनाने वाले हम स्वयही हैं।

शो०—अब कोई मनुष्य दरिद्र के अथवा धनवान के यहां कोई सुखी मा बाप के तैसेही कोई रोगी और कंगाल मा बाप के कोई पापी अथवा सद्गुणी मा बाप के यहां जन्मलेता है यह किसप्रकार से होता है इसका स्पष्टीकरण कीजिये।

थि०—एक पापी और एक सद्गुणी ऐसे दो मनुष्यों में जो रात दिन अपनेही अभिप्रायों से भरेहुए विचार करता है, जो दूसरे के सुखकी इच्छा न कर चाहे जिसप्रकार से केवल अपनेही भले

करनेकी इच्छा रखता है तैसेही जो वस्तु देखपड़े वह मेरी होजावे तो अच्छा ऐसी जिसकी इच्छा रहती है और जो मनकोही किसी प्रकार से सुखमिले ऐसे विचारों में रहता है उस मनुष्य के मरने के पीछे उसके खोरा में रहेहुए विचारों की परछाया से बँधाहुआ मानसिक शरीर समय आनेपर ईथरों की उपाधिले होनेवाले अवतार के छाया शरीर की समान तइयार होता है । इस छाया शरीर में समस्त बुरी टेवों के होने से वह अपने सम्बन्धी स्थूल शरीर के बँधने के निमित्त किसी नीच और पापी टेववाले मा बाप की ओर कि जिसमें भी वैसीही निर्बलता होती है, प्रकृति रीतिसे खिंचजाता है और उसमें वंश परम्परा के नियमानुसार वैसेही निर्बल स्थूलशरीर को बांधता है और उसमें उस पापी जीव को अवतार लेनापड़ता है । इस प्रकार एक अवतार में बुरे विचारों का करनेवाला अपने हाथ सेही दूसरे अवतार में पापी और नीच मा बाप के पेटमें जन्म ले दुःखी होता है । इससे विपरीत जो मनुष्य सदैव दूसरोंकी भलाई के निमित्तही विचार कियाकरता है जो दूसरों को किसप्रकार से सुखहो इन विचारों में रात दिन रहता है, उसके मरने के पीछे इकट्ठा हुए समस्त भले विचार समय आनेपर ईथर की उपाधिले आनेवाले अवतार के निमित्त छाया

शरीरकी समान तइयार होता है, और उस छाया शरीर में समस्त उत्तम टेव हानेके कारण उसके ऊपर उसके सम्बन्धी स्थूल शरीर बंधने के लिये वह प्रकृति के नियमानुसार किसी भली टेववाले मां बापकी ओर खिंचजाता है और उसमें वंश परम्परा के नियमानुसार उत्तम स्वभाव प्रगट होसके ऐसा पवित्र शरीर बांधता है। इसप्रकार एक अवतार में पवित्र इच्छाएं रखनेवाले जीवको दूसरे अवतार में अपनी इच्छानुसार भलेकाम करसके ऐसी उपाधिमें तथा सुखी मा बापके घर जन्मपाता हुआ देख मूर्खलोग विचारते हैं कि इसपर ईश्वरकी कृपाहुई,—परन्तु ऐसा मानना भूल से भराहुआ और अनुचित है यह प्रत्येक गुप्तविद्या का अभ्यासी भलीप्रकार से समझता है क्योंकि जो बोयाजायगा वही उगेगा ऐसा नियम संसार में होनेसे उसके आधार परही सबकोई सुख या दुःखको भोगता है। यह रीति वर्तमान अवतारवाले कर्म के नियमानुसार दुःख भोगने के पापी और तुच्छ मनुष्योंको भली न लगेगी, परन्तु उद्योगी और सद्गुणियों को वह अत्यन्त सुखकारक व धैर्य देनेवाली है। तथा इस बात से यह भी समझना चाहिये कि बुरे विचार मनमें आनेसे अटका हुआ काम चाहेजैसा कठिनहो तौभी बनसक्ता है किंतु ऐसा नहीं करना चाहिये क्योंकि

पीछे से उसके परिणामानुसार मिलीहुई बुरी उपाधिमें मरण पर्यंत दुःख भोगना पड़ता है । मरणही शरीररूपी बंदीगृह से छुड़ाता है, इसकारण उसको दुःख उपजानेवाली बात न समझना चाहिये वरन इसके विपरीत प्रसन्नता की बात है । मरण न होवे तो इस शरीररूपी बंदीगृह में पड़ाहुआ जीव किसप्रकार छूटे और फिर आगे वह किसप्रकार उन्नति करसके ? जन्म और मरण यह दोनोंही क्रियायें जीवके अनुभवके लिये एक समानही आवश्यकीय हैं, इसमें कोई भलाई या बुराई नहीं है । जीव अवतार लेकर स्थूल भुवन के ऊपर आता है, अर्थात् जन्मलेना उसका यथार्थ में छूटकर भी बंदीगृह में पड़ना है, और मरण होनेसे देहरूपी बंदीगृहको छोड़ अँधेरे में से प्रकाश में आनाहै, इसकारण मरणका भय और दुःख केवल अज्ञानपना के कारणही उत्पन्न होता है, ऐसा समझना चाहिये ।

शो०—प्रत्येक जीवको कबतक अवतार लेनेकीआवश्यकताहै?

थि०—काम के वशहुआ जीव अथवा मनस, नीचे के भुवनों का भलीप्रकार से अनुभवले आत्मा—बुद्धिके सम्बन्ध में आवे और उसकी उपाधी के समान समस्त भुवनों के ऊपर काममें लगसके अर्थात् पवित्र और ज्ञानी होवें तबतक उसको अवतार लेनेकी

आवश्यकता है। आत्मा बुद्धि के सम्बन्ध में आवे, अर्थात् ज्ञान और पवित्रताई के आने से जीव जन्म मरण के बंधन से छूटकर मुक्त होता है। इसप्रकार मुक्त होने के पीछे जीव के कारण दो मार्ग खुलजाते हैं। एकतो निरवाणिक भुवन के अत्यंत सुख की अवस्था में रहनेका, और दूसरा निरवाणका कल्पना न करनेयोग्य मार्ग; ऐसे सुखमें पड़ समस्त संसार में जन्म मरण के बंधनमें पड़े हुए अपने अज्ञानी भाइ बंधोंको मुक्ति का मार्ग दिखाना है। पाप कर्म से बंधन में पड़कर दुःखी होतेहुए मनुष्यों के बढ़ेहुए पाप और उनका दुःख में पड़ना रुकजावे और वह निर्वाण के योग्य होजावें इसकारण जीवन मुक्त अत्यन्त दया के वशहो अपने निर्वाणिक सुख और समस्त लाभोंको भोग स्वयंही संसार में आय प्रसन्नता पूर्वक जन्मलेते रहते हैं। ऐसे जीवन मुक्त महात्मा—आरहान इत्यादि नामों में आये हैं। पृथ्वी के ऊपर ऐसे जीवन मुक्त महात्माओं का बड़ा भारी समूह है अबतक जन्मले गयेहुए पैगम्बर इत्यादि पृथक २ धर्मोंके स्थापन करनेवाले महात्मा इसही समूह के सम्बन्धी हैं। वह ज्ञानी होनेसे नात जात आदि की मूर्खाई से छूटेहुए हैं। उनका महान् कामज्ञान का फैलाना और मनुष्यों को पाप से रोकनेका है। धन दौलत व्यय करनेपर

भी न मिलनेवाला गुप्तज्ञान ऐसे महात्माओं की कृपा से योग्य मनुष्यों को मिलजाता है । वे मनुष्य संसार में पृथक २ समय और पृथक २ स्थानों में नवीन २ धर्मोंको स्थापितकर और नई २ सभाएं नियतकर सदैवही मनुष्यों को मुक्ति का मार्ग दिखानेका यत्न करते हैं । 'थियासोफीकल सुसायटी' भी कृपालु महात्माओं ने इसीही नीव से स्थापित की है । साधारण मनुष्यों के मन में यह बातें कदापि नहीं आसक्तीं, परन्तु अभ्यासी इस बात को भलीप्रकार से समझते हैं और इसमें उनको कुछ नवीननहीं लगता

शो०—अब जन्म मरणके बंधनसे बचनेका मार्ग क्या है ।

थि०—एक सहल मार्ग यह है कि समस्त इच्छाओंको मारे, यहांतक किजो सबसे बड़ी जीने की इच्छा है उसको भी मारे, तो जन्म मरण से छूट सकता है; क्योंकि जीव को जन्मलेने के लिये इस भुवन के ऊपर खींच लानेवाली स्वयं उसकीही कीहुई तृष्णाएं हैं । ऐसा नहीं है कि यह आशा तृष्णा बिना ज्ञान के मरसके, इसही कारण जबतक ज्ञान नहीं होता तबतक मुक्ति नहीं मिलसक्ती, ऐसा कहाजाता है । तथा जितने महापुरुष मुक्त होगए हैं; उनका यह कथन है कि मुक्ति कुछ मिलनेवाली वस्तु नहीं है समस्तही प्राणी मुक्त हैं, ज्ञानका संचयकर मैं मुक्त हूं और बंधन

में नहीं हूं ऐसा समझना चाहिये । मैं मुक्त हूं अथवा मैंही ब्रह्म हूं ऐसा योंही कहने से कुछ नहीं होता जबतक कि मनुष्य ज्ञानवान न होवे क्योंकि इसमें ज्ञानकीही आवश्यकता है ।

शो०—अब अवतार संबंधी दो एक बात जानने को रहगई हैं वह यह हैं कि एक अवतार का पुरुष दूसरे अवतार में स्त्रीका जन्म लेसक्ता है अथवा इससे विपरीत होसक्ता है या नहीं ?

थि०—अवतार धारण करनेका अभिप्राय जीवको प्रत्येक जाति काअनुभव मिलना तैसेही उसमें सब अच्छेगुणों के प्रगट होनेका है। पृथक २ जीवोंको पृथक २ जातका अनुभव लेनेकी आवश्यकता होनेसेही अमुक जातिके मनुष्यके सम्बन्ध में, संसार के अमुकखंड में, अमुक देशमें, अमुक धर्मके पालनेवाले मनुष्यों में और अमुक कुटुम्ब में उसको अवतार लेनापड़ता है । जीव यह स्त्री पुरुष दोनों में से एक भी नहींहै। स्त्री, पुरुष आदि नामों की उपाधि तो शरीरकी है । इन दोनों उपाधियों में पृथक २ गुण हैं, जैसे कि स्त्रीमें दया, नम्रता, भक्तिभाव इत्यादि तथा पुरुषमें साहस, धैर्य, स्थिरता, बल इत्यादि है इनमें से जिन २ गुणोंका जीवको अनुभव नहीं होता उन्हीं २ गुणोंके प्रगट करनेके निमित्त उसको स्त्री या पुरुषकी उपाधिमें बारम्बार अवतारलेनेकी आवश्यकता है

शो० —अब अवतार नियम के विरुद्ध यह एक तर्क उपस्थित होताहै कि जो अवतार के नियमानुसार मनुष्यका जी किसी विशेष संख्या मेंही होवे और प्रत्येक बालकके उत्पन्न होनेके समय जो एक जीव की उत्पत्ति न होती होतो पृथ्वी मे पहिले कीअपेक्षा वर्तमान समय में मनुष्यों की संख्या अधिक है इसका कारण क्या है ?

थि०—समस्त पृथ्वी की मनुष्य गणना किसी दिन भी करने में नहीं आसक्ती, इससे पृथ्वीके जानेहुए भाग में मनुष्य संख्या बढने से समस्त पृथ्वी में मनुष्य संख्याबढ़ी है ऐसा नहीं कहा जासक्ता ऐसा होतेहुए भी जो पहिलेकी अपेक्षा वर्तमान में मनुष्य संख्या बढ़ीहो तो उसमें भी अवतार नियम के विरुद्ध कुछ नहीं हुआ। क्योंकि मनुष्यका जीव अथवा मनसकी, जो अमुक संख्या है उसमें पृथ्वी के ऊपर अवतार लियेहुए की अपेक्षा अवतार लेनेको या अवतार लेकर कामलोक में गये हुओं अथवा देवखनमें रहेहुओंकी संख्या अत्यन्त अधिक है। कि इसमें संदेह नहीं स्थूल भुवन के ऊपर अवतार लेकर शरीर छोड़गयेहुए मनसको फिरसे जन्मलेनेके पहिले ऊपरीभुवन अथवा देवखनमें अधिककर १५०० बर्षतक रहनापड़ता है उनमें से थोड़े एक जीवोंको जो इस नियत समयसे पहिले जन्मलेनापड़े तो उससमय पृथ्वीपर रहेहुए मनुष्यों

की संख्या बढ़जाती है । सृष्टिके साथ समानता करने से अपना स्थूलभुवन शहर में के एक मुहल्ले की समान है उसमें जैसे शहरके मनुष्य आया जाया करते हैं इससे वह किसी समय में आधा खाली होजाता है और किसी समय ठसाठस भरजाता है । परन्तु उससे कुछ शहरकी मनुष्य संख्या में घटती बढ़ती नहीं होती. ऐसेही पृथ्वी कीभी मनुष्य संख्या समझना चाहिये अमुक समय में अबबहुत से जीव अवतार लेते हैं तब मनुष्यों की संख्या बढ़जाती है परन्तु उससे कुछ मनुष्यके जीवों में घटती बढ़ती नहीं होती ।

शो०—एक दूसरा तर्क यह उपस्थित होता है कि जो पाप कर्म करनेवाले जीवको उन कर्मों के अनुसार उपाधि मिलने के कारण पापी मा बाप के पेटसे अवतार लेनापड़ताहो तैसेही भले कर्म करनेवाले जीवको भलेफल प्राप्त होनेके कारण भले मा बाप के यहां अवतार लेनापड़ताहो तो सद्गुणी मां बाप के पेटसे पापी और पापी मां बाप के पेटसे सद्गुणी बच्चे होने का कारण क्याहै ?

थि—यद्यपि यह बात अवतार के नियम विरुद्ध जानपड़ती है परन्तु जो यथार्थ में देखाजाय तो ऐसा नहीं हैं । अवतार के नियम के साथ कर्म के नियम के ऊपर भी ध्यान रखनेकी आवश्यकता नहीं है । यह बात निश्चयही है कि पिछले अवतारों में

कियेहुए कर्मोका फल इस अवतार में अपने को भोगनापड़ता है परन्तु उसमें जो २ कर्म दूसरे मनुष्यों के सम्बन्ध में हुएहों अथवा उनके साथ मिलकर कियेगये हों उनका फल रीत्यानुसार उन सब के ऊपर साथही आनेकी आवश्यकता होने से उन सबको एक दूसरे के सम्बन्ध में आनेके कारण उनको उसही प्रकार अवतार लेने में विवश होना पड़ता है । साधारण रीतिसे कहेजाते हुए एक अवतार के सम्बन्धको दूसरे अवतार में चुकानेके निमित्त जीवको एक दूसरे के सम्बन्ध में अवतार लेना पड़ता है । इस प्रकार कर्म के फलोंको भोगने के कारण सद्गुणी मनुष्यों के यहां पापी तैसेही पापी के यहां सद्गुणी जीवको कर्मोका हिसाव चुकाने के कारण जन्म लेना पड़ता है तथा अपने सम्बन्ध में आतेहुए मनुष्यों में कुछ भी जान पहिचान न होने परभी कितने एक को देखने के साथही अपनी ओर खींचने और उनका सम्बन्ध की इच्छा होती है तैसेही कितने एकको देखतेही अपने को दुःख जानपड़ता है और उनसे दूर रहनेकीही प्राकृतिक इच्छा रहतीहै वह भी पिछले अवतार में पड़े हुए सम्बन्ध का दिखाव है इसप्रकार अवतार के नियम के आधार से जन्म मरणसम्बन्धी सब बातोंका स्पष्टीकरण जैसा चाहिये वैसा होसक्ता है क्योंकि वह सत्य है ।

स्थिति और प्रलय हुआ करती है परन्तु पदार्थका स्वयं नाश नहीं होता। वस्तुओं के जो जीवित और अजीवित दोभाग कियेगये हैं उसका केवल इन्द्रियों के द्वारा जानना यह वस्तु में,होतीहुई चाल ढाल के ऊपर निर्भर है। जितनी वस्तुओं में होतीहुई चाल ढाल इन्द्रियों की द्वारा जानी जासक्ती अर्थात् प्रगट होती है उन सब कोही हम जीवित कहते हैं और पत्थर इत्यादि जड़ पदार्थों की चालढाल इन्द्रियों की द्वारा नहीं जानसक्ते इस कारण उन सब कोही हम विनाजीवका कहते हैं। परन्तु यथार्थ में देखा जायतो कुछभी नहीं है, प्रत्येक वस्तु जीवित है केवल इतनीही बात है कि किसीकी चालढाल इन्द्रियों द्वाराजानी जासक्ती है और किसीकी नहीं

शो०—जो मरने के पीछेभी शरीर विनाजीविका न होताहो तो मरने के पीछे और मरने के पहिले शरीर की अवस्था में अंतर क्यों होता है ?

थि०—यह बिल्कुलही असम्भव है कि सृष्टिमें बिना जीवका पदार्थ अस्तित्व में नहोने परभी मरने के पीछे शरीर विनाजीविका पदार्थ बनजाता है। अमुक वस्तु जीवित है ऐसा कहना केवल उसकी चालढाल के ऊपर निर्भर है। जब पदार्थ में स्वयंही चाल ढाल होतीहो तब उसमें जीव होनाही चाहिये यहतो साधारण

रीतिसे ही निश्चय है, तो फिर यदि मरण पायेहुए शरीर में जीव न होवे तो उसमें सड़ने की चाजढाल क्यों होवे ? शरीर सड़ता है इस सेही प्रगट होता कि मृतक शव बिना जीवका पदार्थ नहीं है; परन्तु उसके सब परमाणु जीवित होनेसे खैंचतान करने के कारण एक दूसरे से छूटजाते हैं। मरने के पीछे और मरने के पहिले शरीर की अवस्था में केवल इतनाही अंतर है कि मरने से पहिले शरीर के समस्त परमाणु प्राणकी द्वारा जुड़ रहकर उसके वशमें हो शरीर के आकार में रहते हैं और मरण होनेके पीछे प्राणके पृथक होने से शरीर के रूपमें रहने के बदले बिखरजाते हैं। इस प्रकार केवल शरीर के रूपकाही नाश होवा है।

शो०—स्थूल उपाधिमेंसे जीव किसप्रकार छूट पड़ताहै वहकहो

थि०—मरने के समय छाया शरीर के साथ ऊपर के तत्व स्थूल देहमें से धीरे २ बाहर निकलते हैं और वह बिश्वदृष्टिवाले को धुएं के ढगले की समान दिखाईदेते हैं। उनका रंग नीला होता है समस्त छाया शरीर बाहर निकलने के पीछे स्थूल देहका आकार धारण करता है, और स्थूल देह के बाजू मेंही तैरता हुआ जान पड़ता है। इन दोनों शरीरों के बीच चलते हुए लोह चुम्बकके प्रवाहिक डोरेकी समान सम्बन्ध रहता है कि जिसके टूटजाने से

मरण उत्पन्न होता है । किसी समय लगभग छत्तीस घंटेतक इन दोनों शरीरों में सम्बन्ध रहता है और वह विश्वदृष्टि वाले को जान पड़ता है । सांप जैसे केंचुली से निकलता है तैसेही जीव स्थूल देह से निकल छाया शरीर में बाहर निकलता है । तथा वह मरण के पहिले भी स्थूल देह मेंसे बाहर निकलसक्ता है । कितनेही एक रोगियों का छाया शरीर थोड़ीही देरमें छूटजाता है परन्तु शरीर के इधर उधर घूमकर फिर उसमें भरजाता है क्योंकि जो शरीर से अत्यन्त दूर जायतो दोनोंका लोह चुम्बकी सम्बन्ध टूटजाने से रोगीका मरना सम्भव है । परन्तु जो गुप्त विद्या के अभ्यास से मायावी रूप नाम की मानसिक उपाधि में बाहर निकलता है तो वह शरीर से चाहे जितनी दूरहो जासक्ता है । परन्तु ऐसा करने के निमित्त पहिले बहुतप्रकार की शिक्षा लेनीपड़ती है । शरीर की इच्छाओं के न जीतने से साधारण मनुष्य शरीर का सेवकही बंधन में पड़ा रहता है । यह स्वयं उनकाही अपराध है, शरीरका नहीं । शरीरका बल नहीं है कि वह जीवको बंदी की समान रख कैद रखसके यह तो स्वयंही अज्ञानी मनुष्य विषयों में लिपटकर अपने हाथही अपने को कैद कररखता है ।

शो०—जो मरनेके पहिलेही शरीर मेंसे आनाजाना होसकता हो

तो उसको यथार्थमेंही सुखी होना चाहिये क्योंकि उसको मरनेका भयभी लगनेका कारण तो रहताही नहीं ।

थि०—किसी समयमी स्थूल देहके बंदीगृह मेंसे बाहर निकल सके तो सबसे आवश्यकीय बात यह जाननी चाहिये कि शरीर यह स्वयं मनुष्य नहीं है वरन केवल उसका खोखला है शरीर अस्तित्व में होवे या न होवे उससे जीवको कुछभी हानि नहीं पहुँचती । जीव जन्म मरण रहित होने से सदाही अस्तित्व मे रहता है जब तक उसको शरीर में रहना पड़ता है तबतक वह स्वाधीनता से छूट उलटे कैदमें पड़ारहता है । घरमें से निकलाहुआ मनुष्य जैसे चारोंओर देखने, सुनने, ठहरने और जिस स्थानमें चाहे उस स्थानमें जानेको शक्तिमान होता है, परन्तु घरमें आये पीछे केवल खिड़की मेंसे जितना देखपड़े उतनाही देख सकता है और उसमेंसे जितना शब्द आवे उतनाही सुनसकता है, तैसेही शरीरमें बंदीहुआ जीव आंख, नाक, कान, इत्यादि खिड़कियों के द्वाराही बाहरकी वस्तुओं के साथ सम्बन्धमें आसकता है और उसमेंसे बाहर निकलने के साथही वह जितना चाहे उतना देख सुन सकता है ।

शो०—जो जीव शरीर के बाहर मलीप्रकारसे प्रगट होसक्ता होतो क्यावह बिना शरीरमें अवतार लिये अनुभव नहीं प्राप्तकरसक्ता?

थि०—स्थूलभुवन का अनुभव लेने के कारण और उसकी मायावी अवस्था से लुभा न जावे अर्थात् ज्ञानहोने के कारण जीव को स्थूल उपाधि के धारण करनेकी आवश्यकता है। समुद्र में जानाहो तो जहाज़ में बैठना पड़ता है क्योंकि विना ऐसा किये पारहोना असम्भव है। जिस २ भुवन के ऊपर जीवको प्रगटहोना होता है उन २ भुवनों के पदार्थों की उपाधि धारण करनेकी आवश्यकता है। जिसप्रकार समुद्र के नीचे से मोती लानाहो तो पृथ्वी के ऊपर रहनेवाले मनुष्य को थोड़ीदेर को पानी में डुबकी मार उसके बन्धन में रहना पड़ता है और मोती मिलनेपर पानी से बाहर आय उससे छुटकारापाता है, तैसेही जन्ममरण रहित जीव थोड़े समयके निमित्त स्थूल देहमें प्रवेश करता है और अपना काम होजानेपर देह को छोड़ यथार्थ दुःख रहित छुटकारे की अवस्था में आता है। अब स्थूल शरीर मेंसे बाहर निकलने के पीछे छाया शरीरका क्या होता है यह जानना रहा। इन दोनोंका सम्बन्ध टूटजाने के पीछे छाया शरीर स्थूल शरीरके ऊपर तैरता हुआ सा जानपड़ता है। छाया शरीर के बाहर निकलते समय तैसेही बाहर निकलनेके पीछे मरण के स्थानपर अत्यन्त शांति रखने की आवश्यकता है। इस समय जन्मसे मरण पर्यंत बनेहुए बनाव

और कियेहुए विचार एक के पीछे एक मरनेवाले के ज्ञान नेत्रोंके सामने नाटक के रूप में फिरते हैं । डूबकर मरनेवालों को ऐसी अवस्था में आनेके पीछे यदि बचालिया जाय तो वह ऐसे अनुभवोंका भलीप्रकार से वर्णन करते हैं । इस समय स्थूल उपाधि की कठिनता दूर होने से जीव माया के पर्दासे छूटता है और स्वयं जैसा होता है वैसाही देखसकता है यह समय अत्यन्तही आवश्यकीय और विवशताका है । इसही समय जीव अपनेकर्मोंका हिसाब पढ़ता है, इस कारण उस आवश्यकीय समय में मूर्खों के रोने पीटने से उस मरनेवाले को अत्यन्त हानिहोती है ।

शो०—मरने के समय इस प्रकार समस्त जीवन की बातों के स्मरण आनेका क्या कारण है ?

थि०—मरने के समय समस्त अवतार के एक२ विचार और बनेहुए बनाव चित्रके आकार में मरनेवाले के ज्ञान नेत्रों के आगे विस्तारित होते हैं ऐसा होनेका कारण यह है कि मरने के समय मरनेवाला विश्वदृष्टि की समान अवस्था में आता है, जिससे उसको अपने समस्त अवतार के वृत्तांतोंका स्मरण आजाता है ।

शो०—छूट पड़ने के पीछे छायाशरीर का क्या होता है ?

थि०—मरनेवाले मनुष्य के मस्तिष्क में कुछ कहने या सि-

लनेका अत्यन्त पुष्ट विचारहो और वह पूरा न हुआहो—तो मरने के पीछे छायाशरीर स्थूलपुरन के ऊपर दिखाईदेता है ऊपरी तत्त्व बहुतही थोड़े समय में छायाशरीर से पृथक होजाते हैं और वह स्थूलशरीर के समान दिखाईदेता है तैसेही जीव भी छाया शरीर के बंधन मेंसे छूटता है,—और उसके निकलतेही छाया शरीर स्थूलशरीरकी समान बिखर जाता है यह दोनों शरीर पहिले कहेहुए के अनुसार साथही नाश पाते हैं स्थूलशरीर के पड़ने से उसके बिखरने में जितना समय लगता है उतनाही समय छाया शरीर को भी लगता है इसकारण जैसे होवे वैसे इन दोनों के नाश करनेका यत्नकरे। इनके नाश करनेकी सबसे उत्तम रीतिमुर्दा को जलाना है। जलादेने से दोनों शरीर शीघ्रता से बिखर जाते हैं और फिर प्रकृति के दूसरे आकार में काम आते हैं। रहे हुए छायाशरीर को वाममार्गी (नीच जादूगर) आप कार्य पूर्ण करने के कारण जीवित करते हैं, परन्तु यह क्रिया उसही की होसकती है कि जिसका मुर्दा (स्थूलशरीर) पड़ाहोता है। अच्छी बात यही है कि संसार में ऐसे नीच कर्म करनेवालों की संख्या अत्यन्तही अल्प है। इसही कारण इन आपत्तियों से बचने के निमित्त मुर्दे को जलाने या जानवरों को देदेने की रीति अतिही उत्तम है।

शो०—छायाशरीर के छूट पड़ने से फिर प्राण की क्या अवस्था होती है वह कहो ।

थि०—छायाशरीर यह प्राणतत्व की उपाधि होने से, जैसे समुद्र में तैरतेहुए घड़े में रहाहुआ पानी घड़े के फूटजाने से समुद्र में मिलजाता है वैसेही छायाशरीर के छूटने से उसकी उपाधि के समान काम में आनेवाला प्राण छुटाहुआ नहीं रहसक्ता परन्तु पृथ्वी के प्राण के साथ मिलजाता है प्राण के छूटपड़ने के पीछे केवल चारही तत्व शेष रहते हैं । छायाशरीर के छूट पड़ने से जीव स्थूलभुवन को छोड़ कामलोक में प्रवेश करता है । इस भुवन के अस्तित्वका वर्णन हम पहिलेही कहआये हैं, इसकारण वर्तमान में उसके अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं । स्थूलभुवनकी समान कामलोक भी प्रत्येक भांति के जीवों से परिपूर्ण है परन्तु उन सब के छूटने से मरनेवाले मनुष्य की क्या अवस्था होतीहै इस समय हम उसपरही ध्यान देंगे । जीव (मनस) स्थूलउपाधि के बन्धन में से छूटने के उपरांत कामरूपकी उपाधि द्वारा कामलोक में प्रवेशकरता है । उस समय तक मनुष्य विशेषकर एकही प्रकारकी स्वप्नावस्था के समान बेभानअवस्था में पड़ारहता है । परन्तु कामलोक में पहुँचनेके पीछेही अत्यन्त पवित्र मनुष्य तैसेही अत्यन्त पापी तथा

अपघात या अकस्मात् से देह छोड़ेहुओं की अवस्था में अत्यन्त फेरफार होजाता है। पहिले हम साधारण अवस्था के अच्छे मनुष्यों की कैसी अवस्था होती है वह समझाकर फिर इनविषयोंमें हाथडालेंगे

कामलोक में आने के उपरांतही जीवका दो ओर से आकर्षण होता है। दो लोहचुम्बक के बीच में रक्खीहुई सुई के समान जीव की अवस्था होती है। एक ओर से ऊपरी मनस उसको समस्त अवतारों में मिलेहुए अनुभव के साथ अपनी ओर आकर्षित करता है, और दूसरी ओरसे कामरूप उसको स्थूलभुवन के ऊपर खींचता है। जिस मनुष्य ने कि मरने से पहिले अपने बुरे गुणों को बढ़ने के बदले दाब रक्खा हो उनको कामलोक की कुछभी आपत्ति नहीं भोगना पड़ती और थोड़े ही समय में कामरूपका आकर्षण निर्बल होकर जीव अपने पवित्र मनस के आकर्षण से खींचकर देवखन में जाता है, और इस दूसरे कामलोकका भुवन छोड़ तीसरे देवखन के भुवन में समस्त उपाधियों से छूट दुःख रहित यथार्थ मुक्की अवस्था में आता है। इसीप्रकार कामरूप के न्यून या अधिक आकर्षण के अनुसार न्यून या अधिक समय कामलोक में रह साधारण मनुष्योंका जीव अपनी अंतिम उपाधि कामलोक को छोड़ देवखन में जाता है: इसी स्थानपर पारसियों के चीनवद

पुल का भलीप्रकार से स्पष्टीकरण होता है । जो ऐसा मानाजाता है कि चीनवद पुल में प्रवेश न करनेवाले पापी नर्क में गिरते हैं उसका अभिप्राय यह है कि अत्यन्तही नीच मनुष्यों में कामरूप का आकर्षण अत्यन्त होने से उसमें उसका लिपटाहुआ मनस नहीं छूटसक्ता इसकारण उसको स्वर्ग का सुख छोड़ तत्कालही अवतार लेना पड़ता है या उसका कामलोक में नाश होता है । अत्यन्त पापी,जीव की यही गति होती है । उसका मनस कामरूप के साथ इतना एकत्रित होजाता है कि उसमें से नहीं छूटसक्ता इसही कारण ऊपरी मनस के साथ से चीनवद पुल रूपी अंतःकरण का सम्बन्ध टूटजाताहै और निचला मनस अमर तीन तत्वों मेंके सम्बन्ध मेंसे छूट नाशवंत चार तत्वों के साथही एकत्रित होजाता है (देखो प्रकरण २और३) और कामरूपके साथही उसका भी सदैव के निमित्त नाश होताहै । यथार्थ बात यह है कि दुःखदायक जीवन मरण पापी मनुष्य अपने हाथ सेही लाता है । शरीर जो केवल जीव की उपाधि अथवा खोखला है और जो एकके जाने से दूसरा मिलता है उसके मरने से अनसमझ लोग व्यर्थही रोते पीटते हैं, वरन इस क्षणभंगुर शरीर को सुख के निमित्त सैकड़ों मनुष्य अनजान पने से अपने जीवको पाप के कुवां में डुबोते हैं उनको अपने भले

बुरे का कुछभी ज्ञान नहीं है यह अत्यन्तही शोचकी बात है ।

शो०—अत्यन्त पापी के अतिरिक्त साधारण जीव कामरूप मेंकी उपाधि में से छूटकर सीधा देवखन में जाता है, इतनातो समझ में आया परन्तु फिर छोड़ दियेहुए कामरूप के खोखले की क्या अवस्था होती है ?

थि०—कामलोक में जाने के पश्चात् खोखला स्थूल उपाधि और छायाशरीर की समान बिखर जाकर उस भुवन के पदार्थोंमें मिलजाता है, परन्तु ऐसा होने से पहिले उसके सम्बन्ध में कुछ एक बनाव बनते हैं उनको जानकर ध्यान में रखनेकी आवश्यकता है । पहली बात यह ध्यान में रखनी चाहिये, कि मरण होनेके पीछे देवखनमें जानेके समय तक जीव स्थूल भुवन के मनुष्यों के सम्बन्धमें आसक्ताहै, परन्तु कामलोक को छोड़ देवखनमें गयाहुआ जीव स्थूलभुवन के ऊपर रहेहुए मनुष्योंके सम्बंधमें नहीं आसक्ता ।

शो०—साधारण मनुष्य जिनको भूत कहते हैं क्या वह कामलोक में गयेहुए मनुष्य हैं ?

थि०—जब मनुष्य कासा कुछ आकार दिखाईदेता है तो उसकोही मनुष्य भूत कहते हैं, परन्तु गुप्तविद्या के आधार से देखने पर स्थूलभुवन के ऊपर देखपड़नेवाले भूत नानाप्रकारके हैं॥

१—मरने वालेका छाया शरीर पहले कहेहुए की समान विशेष कारणों से जीवित मनुष्यों में दिखाई देता है, तथा जो स्थूल शरीर गाड़ा गया होतो उसके नाश होने तक ऊपर रहा हुआ छाया शरीर देवालय और कबरस्थान के आगे भ्रमता हुआ दिव्य दृष्टि वालोंको दिखाईदेता है ।

२—कामलोक में पहुंचा हुआ जीवजो अत्यन्त कामी होतो वह किसी समय तृष्णा से भरेहुए काम के बल से स्थूल भुवन के ऊपर आकर्षितहो स्थूल भुवन के ऊपर रहेहुए मनुष्योंको दिखाई देता है । परन्तु यह बात अत्यन्तही थोड़ी है ।

३—मरने वाले जीवको असाधारण तृष्णा न होतेहुएभी जब अनसमझ मनुष्य मरनेवाले के निमित्त अत्यन्तही रोते पीटते हैं तब उनके कामरूप में उत्पन्न होतीहुई लहरियों से मरण पानेवाले के कामरूपमेंभी उसही प्रकार लहरियें उत्पन्न होती हैं, और उससे स्वप्नावस्था की समान शांत अवस्था में पड़ेहुए जीवको सहायता मिलने के बदले उलटे स्थूलभुवन के ऊपर आनेका आकर्षण होता है; इस समय किसी भी 'मिडियम' की सहायता मिलने से जीव स्थूलभुवन के ऊपर भूत के आकार में प्रगट होता है ।

४—अपघात करके देह में से बाहर निकल गयेहुए अभागे

जीव साधारण रीत्यानुसार शांत अवस्था में पड़ेरहने के बदले कामलोक में अधिक भानको धारण करते हैं क्योंकि उनकी अधूरी रहगई हुई इच्छाओं के पूर्णहोने के कारण उनमें अत्यन्त उत्सुकता होती है, और स्थूल उपाधि के होने के कारण वह पूर्ण नहीं होसक्तीं इसही लिये वह 'मिडियम' और निर्बल गठन वालों के आसपास भ्रमण किया करते हैं और उनसे मिलतेहुए सुअवसरों को प्राप्तकर उनके छाया शरीर और स्थूल शरीर के द्वारा स्थूल भुवन के ऊपर प्रगट होसक्ते हैं।

५—अकस्मात से मरण पानेवाले देह छोड़गये हुए अभागे जीवों की नाना प्रकार की भौतिक इच्छाएं और परमाणुओं के जीव में रहजाने से वह भी 'मिडियम' की द्वारा स्थूल भुवन के ऊपर प्रगट होसक्ते हैं।

६—कामलोक में प्रवेशितहो देवखन में जातेसमय मुरदाकी समान छोड़ दियेहुए बिना जीवका कामरूपका खोखल 'मिडियम' की सहायता से अत्यन्तही सरलता पूर्वक आकर्षित होजाता है। 'स्प्रिचुएलिस्टोंका' अर्थात् प्रेतावाहन अथवा भूतों के साथ सम्बन्ध में आनेवाले तंत्रोंके चलानेवालोंकी मंडली में 'मिडियमों, की द्वारा जो भूत स्थूल भुवन के ऊपर प्रगट होते हैं वे बहुधा इन्हीं फिरते

हुए कामरूपके खोखले होते हैं। कामरूप में ऐसा प्रभाव है कि उसमें एक समय उत्पन्न होगई हुई इच्छाएं, भय अथवा किसी प्रकारके आवेशों से बारम्बार उसही प्रकारकी लहरियें कुछही एक सहायता के मिलनेसे उत्पन्न होजाती हैं और उसही प्रकारकी इच्छा इत्यादि होनेकी उसमें टेव पड़जाती है। ऐसे प्रभाव के होनेही के कारण एकही समय हाथ में पड़ी हुई भलीबुरी चाल आदि की टेव, ऐसेही आवेश आदि तथा मुँहमें से कुछ बुरे शब्दों के निकलने आदिकी टेव स्वयंही पढ़जाती है। जिसप्रकार पृथ्वी के ऊपर पानी डालने से, पहिले वह पानी धीरे २ रेलेके आकार में आगेको बढ़ता है परन्तु फिर यदि थोड़ीही देरमें उसके सूखजाने पर और पानी उसी स्थान में डालाजाय तो वह उस रेलेपर पड़कर शीघ्रता से आगेको बह जाता है, और दूसरा नया रेला नहीं पड़ता, इसही प्रकार एकबार दीहुई चालके अनुसार कामरूप बारम्बार उसही अवस्थामें सरलता पूर्वक आजाता है। इसही से स्थूलभुवन के ऊ-पर नानाप्रकार की इच्छाओं तथा प्यार इत्यादिके आवेशों के बा-रम्बार होनेसे, उसही अवस्था में पड़गएहुए टेवबाले कामरूपके खोखले उनके स्वामियों के छोड़जाने के पीछे रहगयेहुए सम्बन्धियों के आकर्षण से खिंचआते हैं, और उसमें जीव के न होतेहुए भी

मरणपाये हुए मनुष्य के उभराव और उसकी जानीहुई बातों की स्मरण शक्ति से उन बिना जीव के कामरूप के खेखचों में जो लहरियें उत्पन्न होती हैं इससे वे अपने यथार्थ स्वभाव के अनुसार उन्हीं २ प्रकार के उभरावों को दिखासक्ते हैं, जिससे वे केवल बिना जीव के कामरूप के मुर्दे होतेहुए भी साधारण 'मिडियम' और 'स्प्रीचुएलिस्ट' उनको अपने प्यारे सम्बन्धी और मरण पाएहुए या बाप समझकर प्रसन्न होते हैं ।

७—कामलोक में रहनेवाले जिन्न, परी और राक्षसइत्यादि जीव जिनको 'थियासोफी' में साधारण रीति से 'अलीमेंटल' के नाम से पुकाराजाता है वेभी बहुत समय से रहनेवाले कामरूप के खेखचों को पहिर 'मिडियम' की द्वारा स्वयंही मरण पायेहुए जिसप्रकार के सम्बन्धी होते हैं वैसेही प्रगट होते हैं । 'स्प्रिचुएलिस्ट' की सभा में जो बाजा बजाना या किसी वस्तुको फेंकदेना, या मण्डल में बैठेहुओं मेंसे किसी के बाल उखाड़ना, या थप्पड़ मारना आदि इसप्रकार की तुच्छ लीलाएं होती हैं वह सब अलीमेंटल' काही खेल समझना ।

८—मरण पाकर कामलोक में गयेहुए जीवों मेंसे जो कितनेही एक अत्यन्त पापी होते हैं उनमेंका निचला मनस कामरूप के साथ

अत्यन्तही लिपटाहुआ होता है, इसकारण वे ऊपरी मनसकी ओर खिचजाकर स्वर्ग में नहीं जाते, बरन उससे छुटजाकर कामलोकमें कामरूप के साथ भटकाकरते हैं ऐसी अवस्था में वह बिना जीवका कामरूप का खोखला होने के बदले मनस के साथका भूत होने से कामलोक में अधिक भान को धारण करते हैं, और उनको अपने जीवन की अधिक इच्छा होने से वह 'मिडियम' और निर्बलगठन वालों में के प्राणतत्व के चूसलेने का यत्न करते हैं तथा वह अनसमझ मनुष्यों से मिलतेहुए सुअवसर को प्राप्तहो स्थूल भुवन के ऊपर भलीप्रकार से प्रगट होसक्ते हैं ।

९—भूत और तुच्छ जाति के जीवों के अतिरिक्त निर्माणकाया महात्मा भी अपने चेलाओं के सम्बन्ध में आते हैं और वह किसी एकही रीतिसे नहीं बरन सरलता पड़तीहुई रीतोंसे होसक्ता है

१०—इसके अतिरिक्त कामलोक तैसेही देवखनमें रहेहुए जीवों के साथ स्थूलभुवन में रहेहुए मनुष्य स्वयं सम्बन्ध में आसक्ते हैं। ऐसा करने के निमित्त स्थूलउपाधि में से बाहर निकलकर मायावी रूप इत्यादि ऊपरीतत्वों की उपाधि में यात्रा करनी पड़ती है कि जो केवल महात्माओं और उनके चेलाओं सेही होसक्ता है।

इसप्रकार गुप्तविद्या के आधार से देखनेपर स्थूलउपाधि में रहने

वाले मनुष्यों के सम्बन्ध में आनेवाले भूतों के नामसे प्रसिद्ध जीवों की अनेक जातियें हैं वह 'थियासोफी' में पृथक २ नामों से पुकारे जाते हैं जो सब अभ्यासियों के जाननेकी आवश्यकता है।

१—कामलोक में भटकतेहुए खोख जिनमें से निचला मनस छूटगया होता है उनको 'शेल' अथवा खाखका नाम कहाजाता है

२—कामलोक में रहतेहुए कामरूप के खोखों में जबतक मनस का थोड़ा भी भाग रहा होवे (पीछे वह ऊपरी मनस के साथ एकत्र होनेकी तइयारी में हो या ऊपरी मनससे छूटकर कामरूप में मिलकर नाश-पागयाहो) तबतक उसका मनस साथ के कामरूप के खोखों का 'शेड' वैसेही 'अलमंटरी' के नाम से पुकाराजाता है।

३—अपघात या आकस्मात से मरण पायेहुए भी 'अलीमंटरी' के वर्गमें जाते हैं। ऐसी अवस्था में साधारण मनुष्यों के साथ समानता करने से जो अंतर पड़ता है वह यह है कि जो किसी का कर्मानुसार (८०) की आयुष्यहो और वह (२०) वर्षकी आयु में अपघात अथवा अकस्मात् में देह छोड़जावे तो उसको (६०) वर्ष तक कामलोक में 'अलीमंटरी' की समान अत्यन्त दुःख में रहना पड़ता है। साधारण मनुष्य जैसे अपने कामरूप के आकर्षणानुसार थोड़ेही काल में कामलोक के भुवन को पार करजाते हैं

तैसा उनके सम्बंध में नहीं होता पाप कर्मों को कड़वा फल धीरज से भोगने के बदले शीघ्रही दुःखों से छूटने की इच्छाकर मूर्ख मनुष्य अपघात करडालते हैं । अपघात से कुछ भी नहीं होता बरन तेल में से निकलकर आग में पड़ना है, जो मनुष्य यह जानता है वह कभी भी ऐसे काम के करनेका साहस नहीं करता ।

४—कामलोक में बसनेवाले जीव जो परी राक्षस आदि नामों से जानेजाते हैं और जो पहले कहे के अनुसार 'स्पिरिचुएलिस्ट' के मण्डल में प्रगट होते हैं वे सबही 'अलीमेंटल' के नामसे पुकारेजाते हैं

शी० —भूवो अथवा 'मिडियम' यह क्या है और 'अलीमंटरी' आदिक भून 'मिडियम' केद्वारा प्रगटहोसक्ते हैं इसकाकारण क्याहै?

कामलोक में रहेहुए जीव जिस मनुष्य के द्वारा स्थूलभुवन के ऊपर प्रगट होसक्ते हैं उनकोही भूवो अथवा 'मिडियम' कहाजाता है और जिस मनुष्य के तत्त्व सरलता से पृथक होसकेहों वही भूवो अथवा 'मिडियम' होसक्ता है । पृथक २ भुवनों की प्रकृति पृथक २ अवस्थाओं में बँटगई है इसकारण एक भुवनकी प्रकृति उससे निकट रहीहुई प्रकृति के द्वाराही दूसरी अधिक उतरती या चढ़ती अवस्था में रहीहुई प्रकृति के ऊपर अपना प्रभाव कर सक्ती है, अर्थात् कामलोक में रहाहुआ जीव अपने कामरूप से

स्थूलभुवन के पदार्थों के ऊपर असर नहीं करसक्ता, वरन ऐसा करनेके निमित्त उसको कामरूप से उतरतेहुए ईथरकी, उपाधिके समान सहायता लेनकी आवश्यकता पड़ती है 'ईथर' कामरूप और स्थूल शरीर के बीचमें रहता है इसकारण इसकेही द्वारा यह दोनों शरीर परस्पर एक दूसरेपर अपना २ प्रभाव करसक्ते हैं। ऐसा करने के निमित्त कामलोक में रहेहुए जीव को स्थूल भुवन में प्रगट होने के लिये 'मिडियम' या छाया शरीर की सहायता लेनीपड़ती है और 'मिडियम' का छाया शरीर शीघ्रतासे छूटजाने से कामलोक में रहाहुआ जीव उसको अपने अधिकार में करलेता है और उसकेही द्वारा प्रगट होसक्ता है।

शो०—अपघात और अकस्मात से देह छोड़ेहुए जीवों की अवस्था में कुछ भी अन्तर पड़ता है या नहीं ?

थि०—अकस्मात से देह छोड़नेवाले अपनी प्रसन्नतासे देह नहीं छोड़ते इसकारण अपघात करनेवालोंकी और उनकी अवस्था में बड़ा अन्तर पड़ता है। अपघात से देह छोड़नेवालों के ऊपरीतत्व कामलोक में बिना किसी प्रकारका आकर्षण किये सुस्त पड़ेरहते हैं जिससे उस जीव को 'अर्थीमंटरी' की समान रहने में विवश होना पड़ता है। परन्तु अकस्मात् से मरनेवालों

के सम्बन्धमें ऐसा नहीं होता। कामलोकमें जानेके पीछे उसके ऊपर व नीचेके तत्व एक दूसरे को खींचते हैं जिससे उस जीव की भली बुरी अवस्थाके होनेका आधार केवल उसकी अधिक या न्यून पवित्रताई के ऊपर रहताहै। अत्यन्तही पवित्र मनुष्य जब पूर्वजन्मके पापोंके कारण अकस्मात्से मरजाता है तब वह कामलोकमें स्वप्नावस्थाकी समान शांत अवस्थामें रहता है, और ऊपरीमनसका आकर्षण अधिक होनेसे वह जीव थोड़ेही समयमें मनसकी ओर खिंचजाकर देवखनमेंही जागृत होता है; परन्तु भौतिक वासनाओं का वशवर्ती पापी जब अकस्मात् से मरजाता है, तब उसकी अधूरी रहीहुई तृष्णाओंका आकर्षण अधिक बल-वानहोनेसे और पापकर्मों के कारण ऊपरी मनसके साथका अन्तःकरणरूपी सम्बन्ध न होने से जीवकी कामलोक के नीचे गति होती है और वह भटकता हुआ पिशाच (बुराइयों से भराहुआ भूत) होताहै तथा जैसे बनताहै वैसे 'मिडियम' की द्वारा अपनी तृष्णाओं के पूर्ण होने के कारण स्थूलभुवनके ऊपर आकर्षित होता रहता है। इससे अतिरिक्त बुरी रातों से जीव के छोड़ने अथवा सीमासे बाहर श्रम करने तैसेही किसीके भले करने को जाते समय उत्पन्न हुई अकाल मौतसेभी जीवको बहुत समयतक

कामलोकमें रहना पड़ताहै । परतु इन प्रत्यकी अवस्था भली वा बुरी होवे उसका आधार केवल मरनेवालेकी चाल चलन के ऊपर तैसेही मरण उत्पन्न होनेके कारण, स्वार्थ से अथवा पर स्वार्थ से होवे उसके ऊपर रहताहै ।

शो०—अत्यन्तही पवित्र जीवोंकी कामलोकमें क्या अवस्था होती है वह कहो ।

थि०—मरने के पहिले जो धर्ममार्ग में चल कामरूपको वश में रखते हैं उनके सम्बन्ध में ऊपरी मनस का आकर्षण अधिक होने से उनके जीव कामलोक में अत्यन्तही थोड़ेसमय में कामरूपका खोल डालकर मनसकी ओरखिंच देवखनमें जागृत होतेहैं ।

शो०—कामलोक में जीवोंकी क्या २ अवस्था होतीहै । वह भलीप्रकारसे समझमें आया, अब कामलोक छोड़ स्वर्गमें जाने के पीछे जीवकी क्या अवस्था होती है उसका स्पष्टीकरण कीजिये ।

थि०—देवखन अथवा स्वर्ग, देवलोक अथवा फरिश्ताओं का स्थान है । समस्त दुःखों से रहित इस भुवन को स्वर्ग, बिहिश्त और देवखन इत्यादि नामों से पुकारा जाता है । यह तो बात साधारणही है कि पैगम्बर इत्यादि महापुरुष स्वर्ग में जाकर पीछे आतेथे, परन्तु तौभी यह बात बहुतों के मनमें संदेहको उत्पन्न

करने वाली और अविश्वास के योग्य होगई है, और फिर आज कलके सुधरे हुए मनुष्यों को तो हँसने के योग्य और मूर्खों को पाखण्ड व भ्रांतिके समान लगती है, परन्तु जब आजकल इस सम्बन्ध को बुद्धि स्वीकार करती और इसका स्पष्टीकरण मिलता है तब उससे जाना जाता है कि आज भी महात्मा और गुप्त विद्या के पूर्ण अभ्यासी मायावी रूप नामकी मानसिक उपाधि में जीवित स्वर्गमें आतेजाते हैं। इच्छानुसार ठहरेहुए हुए लाखों मनुष्यों को इस बात का भान भी नहीं है। मनुष्य और सृष्टि सम्बन्धी इतना स्पष्टीकरण मिलने के पीछे सरलता सेही यह समझमें आसकेगा कि ऐसे बनावों के होने में कुछ नवीनता वा चमत्कारिकता नहीं है। अब देवखनकी अवस्था कहनेके पहिले जानना चाहिये कि प्रकृति में पूर्ण न्याय होने से देवखन में मिलता हुआ सुख सबको एक समानही नहीं होता। समस्त अवतारों में जो २ विचार किये जाते हैं उनमें जितने पवित्र विचार होते हों उन सबही के ऊपर देवखन की अवस्था का आधार है। घर से बाहर निकलाहुआ मजदूर समस्त दिवस मजदूरी करतारहता है और उससे जितना इकट्ठा किया होताहै उतनाही लेकर घरको लौटता है इसही प्रकार स्थूल भुवन में जितने भले

विचार किये जाते हैं उतनेही देवखन में काम आते हैं । देवखन का भुवन मनस के सूक्ष्म पदार्थों का बनाहुआ है इससे मनमें विचार करने के साथ ही उस भुवन के सूक्ष्म पदार्थ आकार पकड़ते हैं, जिससे देवखन में किसी भी वस्तु का विचार करना उस वस्तु के उत्पन्न करने की समान है । मन में क्रिया शक्ति का मुख्य होनेसे उत्पन्न हुई शुभ इच्छाएं और विचार जो मरने से पहिले मानसिक चित्रकी समान मनमेंही दूसरे प्रकार से रहेथे वह सबही देवखन में उपासक की समान प्रगट होते हैं । मरने से पहिले जो मन को बड़े २ पवित्र और उत्तम विचारों और अच्छी २ विद्याओं व गुणों के सीखने के विचारों में रोक रक्खा हो वह सबही जो कि स्थूल भुवन के ऊपर कल्पित थे देवखन के सूक्ष्म पदार्थों में प्रगट होते हैं इससे मनमें रहीहुई इच्छाओं के अनुसार सबही मानसिक भुवन के यथार्थ बनाव जीव दृष्टिके आगे से प्रविशित होते हैं । देवखनके पदार्थ सूक्ष्म होनेके कारण वह विचार वही यथार्थ पदार्थ हो पड़ते हैं, और इससे देवखन में जाने के पीछे प्रत्येक जीव अपने विचारों से अपने पार्थिवक इच्छित जगत में खड़ा रहताहै । जिसके जैसे विचार हैं उसको वैसाही देवखनका सुखहै । स्थूल भुवनके ऊपरके विचार अदृश्य

होतेहुए भी वह ऊपरी भुवनोंके पदार्थ हैं, और जो उसके ऊपर स्थूल भुवन के परमाणु इकट्ठे किये जावें तो वेही विचार रूप सूक्ष्म पदार्थ दृढ़रूप धारण करते हैं, इस प्रकार देखने से यह समस्त देखपड़ता हुआ संसार केवल मनसे उत्पन्नकी हुई माया है। मनमें क्रिया शक्ति का बल होनेसे वह प्रत्येक वस्तु उत्पन्न करसकता है। इसकारण देवखनमें सब जीव अपनी इच्छानुसार ही सुख प्राप्त कर सकते हैं।

शो०—इस बातसे तो ऐसा जानाजाता है कि देवखनमें सब जीवों को एकही प्रकार का सुख नहीं मिलता।

पि०—प्रत्येक जीव अपने बिचारों के अनुसारही अपने निमित्त स्वर्गस्थापित करताहै और इसही कारण प्रत्येकके बिचारों में अंतर होजाने से प्रत्येक के स्वर्गकी अवस्था में भी अंतर पड़ जाता है। ऐसा होते हुएभी प्रत्येक जीव को अपने विचारों के अनुसार अवस्था में रहने से उनकी अवस्थाओं में अंतर रहते हुएभी प्रत्येक जीव अत्यन्त सुख मेंही रहता है। और सुखकी समझ प्रत्येक मनुष्यको पृथकर होनेसे एकको जिस अवस्थासे सुख उत्पन्न होताहै उसही अवस्थासे दूसरे के सुख उत्पन्न होने का कोई कारण नहीं है, इसकारण देवखन में प्रत्येक जीवको एकही

अवस्थामें रक्खाजाय तो वह सब सुखी रहसके ऐसा संभव नहीं हैं। जीवको जिस अवस्था में रहकर अपनेको अत्यन्त प्रसन्नता जानपड़ती हो उसही अवस्था में अपने विचारोंसे अपने निमित्त वह सुख प्राप्त करताहै इसकारण देवखनमें उसको जैसा चाहिये वैसा सुख मिलता है। मरनेसे पहिले जिन २ पदार्थों का विचार व जो २ मनुष्य उससे छूटगये थे उन सबकोही वह देवखन में अपने पार्श्वों में देखता है कि जिससे वह अपने को मरणपाय सम्बंधियों से छुटाहुआ नहीं जानता बरन उसको स्थूलभुवनकीही समस्त अवस्था जान पड़ती है। यदि ऐसा होनेके बदले देवखन में जीवको ऐसा भानहोता हो कि वह अपने सम्बन्धियोंको रोता हुआ छोड़आया है और फिर "स्प्रिचुएलिस्ट" और दूसरे जैसे विना समझायेही मानते हैं वैसी उसको पृथ्वीके रहेहुए संबन्धियों की अवस्था जानपड़ती हो, तथा मांको अपने बच्चों के निमित्त रोता देखे, तैसेही मरण पायाहुआ मनुष्य अपनी स्त्रीको रोता देखे और स्त्री अपने पतिको विलाप करते देखे और थोड़ेही देरमें दूसरे के साथ सम्बन्ध होता देखे तो उसको स्वर्ग में सुखी होनेके बदले पृथ्वीकी अपेक्षा अधिक दुःखदायी नर्कमें पड़ाहुआ कहाजायगा।

शोधक—साधारण मनुष्य जो सात स्वर्गों का अस्तित्व

मानते हैं उन में कुछ अर्थ समाया हुआ है या नहीं ॥

थि०—जिस प्रकार स्थूल भुवनके सात विभागहुए हैं उसही प्रकार कामलोक और देवखनीक भुवनभी सात २ विभागों में बटे हुएहैं यह सातों विभाग एक एकसे सूक्ष्म अथवा बढ़ती अवस्थायें हैं इसकारण उनमें रहेहुए जीवों की अवस्था में अत्यंत अंतर पड़ता है । इन्ही सात विभागोंको सात स्वर्गकी समान समझना चाहिये इन सात विभागोंमें दो बड़े भाग हुएहैं, उनमेंसे निचले चारको रूपलोक और ऊपरी तीनको अरूप लोक अथवा त्रिभुवन कहाजाताहै । मरनेवाले के विचार जितनेही सूक्ष्म, पवित्र और परोपकारी होतेहैं उसहीके अनुसार उसको सातों भागोंके ऊपरी या निचले विभाग में रहनेको मिलताहै । जिसके विचार आत्मा विद्या सम्बधी और बड़े२कार्य करने व परोपकार सम्बन्धी हों उन को अधिकतर अरूपलोक अथवा त्रिभुवनका सुख मिलताहै, और साधारण मनुष्यों को जिनके विचार केवल निचले मनसके संबंधी होतेहैं वह मरनेके पीछे रूपलोकके ऊपरी विभागों में नहीं जासकते

शो०—प्रत्येक जीवको देवखन में कितने समयतक रहना पड़ताहै

थि०—साधारण अवस्थाके मनुष्योंको देवखनमें लगभग एक हजारसे पन्द्रहसौ वर्ष तक रहना पड़ताहै ऐसा जानना चाहिये।

अधिक या न्यून समय देवखनमें रहने का आधार केवल अंतिम अवतार के न्यूनाधिक उपयोगी विचारों और मनकी अधिक व न्यून पवित्रताइ के ऊपरहै। जो लगाया जाता है वही उपजता है इसही प्रकार जितने पवित्र मानसिक चित्र मन में बीजरूपसे रहे होतेहैं उतनेही वह प्रगटहोकर निकलतेहैं । इसही कारण प्रत्येक मनुष्य समान समय तक देवखन में नहीं रहसकता । पृथ्वी के समस्त अनुभव और विचारों के मनमें लीन होजाने के पीछे उन को पिछले छोड़े आये हुए कर्मों का आकर्षण होता है और वह देवखनमें से पीछे लौटते हैं । समस्त अवतार के पवित्र विचार तो देवखनमें काम आजाते हैं परंतु बुरे विचार कुछ व्यर्थ नहीं जाते वह जो अबतक सुस्त पड़े रहेथे वह फिर नए अवतारके कामरूप की समान पीछे मिलतेहैं । इसप्रकार तइयारहुए कामरूपकी उपाधि लेकर जीव स्थूल भुवन के ऊपर उतरता है । कि जहां उसको कर्मानुसार छाया शरीर मिलता है और उसके ऊपर नया स्थूल शरीर बँधताहै कि जिसमें रहकर जीवन या अनुभव प्राप्त करता है । इसप्रकार एक जन्म के मरणसे उसको दूसरे अवतारके जन्म पाने तक पृथक २ जीव पृथक २ अवस्थाओंमें आया जायाकरते हैं

छठवां प्रकरण

॥ कामलोक अथवा 'अस्वल प्लेन' ॥

शो०—स्थूलभुवन से स्वर्ग में और स्वर्गसे स्थूलभुवन में असंख्य फेरे करनेवाले जीव कामलोकमें से बाहर निकलते हैं, इस कारण वह किसप्रकारके भुवन हैं तथा उसमें रहतेहुये 'अलीमन्टल' इत्यादि जीव क्योंहै उनका सम्पूर्ण वर्णन कीजिये?

पि०—पवित्राई और गुप्तविद्या के अभ्यास से जिन महात्मा गुरुओं की सहायता मिलसकती है वह भानसहित कामलोक में फिरने को शक्तिमान होते हैं और उनको जो अनुभव मिलसकता है उसका सौवां भागभी पुस्तकों के बांचने से या वर्णन सुनने से नहीं मिलसकता, ऐसा होते हुएभी थोड़ा विचार उत्पन्न करने के निमित्त पहिले हम इस भुवन के दृश्यका कुछ वर्णन करेंगे, फिर उसमें बसने वाले जीव और अंतमें उसके स्थूल भुवन संबंधी तथा

चमत्कारिक विषयों का वर्णन करेंगे । दृश्यका वर्णन करने से पहिले इतना कहने की अवश्यकता है कि कामलोक का भुवन स्थूल भुवन की समानहीं अस्तित्वको भोगता है और उसमें रहेहुये जीव इत्यादि अपने शरीर, घरबार और सरसामानकी समानही अस्तित्व में हैं । अदृश्यहोते हुएभी जितनी सीमातक यह भुवन यथार्थ समझने में आता है, उतनीही सीमातक कामलोक का भुवन यथार्थ समझना चाहिये । तथा इस भुवनके ऊपर आनेजाने वाले अभ्यासियों की अवस्था अनेक समय व्यर्थ होजाती है परन्तु ऐसा होने के दोमुख्य कारण हैं, एकतो यह कि कामलोक में रहनेवालों के शरीर अथवा उपाधियें सूक्ष्म पदार्थों की बनीहोती हैं इससे वह अपनी समान अमुक रूपमेंही रहने के वशीभूत नहीं होते, परन्तु चाहें जिस समय वह इच्छानुसार रूपधारण करसकते हैं, इस कारण साधारण अभ्यासी बहुतही सरलता से ठगेजाते हैं । दूसरा कारण यह है कि दो आंखोंसे जितना देखने में आता है उससे उतनीही अन्य प्रकार की विश्वदृष्टिका ज्ञान होने–के कारण अर्थात् वस्तु के घरातल देखने के उपरांत समस्त भीतर के परमाणु भी आरपार दिखाई देनेसे बिनाअनुभव के सीखने या जिसको गुरूकी सहायता नहीं होती उसकी दृष्टि खुलजाने से इस भुवन

के ऊपर वह क्या २ देखताहै वह समझना और उसका स्मरण रखना उसको अत्यंत कठिनाई से भराहुआ होजाता है।

फिर 'ईथरों' के सूक्ष्म पदार्थों में स्थूल भुवन का वैसेही उपरोक्त भुवनका प्रतिबिंब पड़ता है इससे सीखने के समय वह लिखे हुए ९३१ नम्बरको १३९ बांचता है। महात्मा गुरुओंकी सहायता से अभ्यासकरने वालोंको जैसा चाहिये वैसी शिक्षाप्राप्त होने के कारण इसप्रकारकी भूल वह नहीं करता। कामलोकमें जाकर सब निद्राके वशीभूत होजाते हैं, परन्तु जाग्रतहोने के पीछे उनका अनुभव मास्तिष्क के द्वारा स्मरण रखना साधारण मनुष्यों से नहीं बनता, इसकारण शिष्यों को प्रत्येक बात स्मरण रहने के निमित्त उसको अपना भान स्थूल भुवन में से कामलोक और देवखन पर्यंत बिना छिन्नभिन्न हुए किसप्रकार लेजाना चाहिये और फिर देवखनिक भुवन में से स्थूल भुवन के ऊपर किसप्रकार लाना चाहिये यह सिखाने की आवश्यकता है।

अब कामलोकके दृश्य में पहिले यह जानना है कि यह भुवन सात विभागों में बँटगया है और सातों के पदार्थ एक एक से चढ़ते अथवा सूक्ष्म हैं। इन सातों विभागों के मुख्य तीन भाग किये गये हैं, वह इसप्रकार से कि ऊपर से अथवा सबसे सूक्ष्म विभाग से

गिनकर ऊपरी तीनका एक भागहुआ है, पीछे चौथे पांचवें और छठे बिभाग का दूसरा भाग हुआ है, और अकेले सातवें बिभाग का तीसराभाग गिनाजाता है इन तीनों मुख्य भागों के पदार्थों में दृढ़ और द्रव तैसेही द्रव और वायुकी बराबर अंतर है और उन प्रत्येक के बिभागों में पृथक् २ जाति के दृढ़ लोहखण्ड और रेती के समान तैसेही तेल और पानी की समान अंतर पड़ता है। छठे बिभाग में जीव इस स्थूलभुवनमेंही शरीर और उसके सम्बन्ध की बस्तुओं से छूटकर जीनेही की समान है। परंतु जैसे २ मान पांचवें और चौथे बिभाग में जाता है वैसे २ ही स्थूलभुवन का ज्ञान और उसके विषयों का आकर्षण न्यून होकर मानचढ़ती अवस्था में होताजाता है और दूसरे भाग का अर्थात चौथे पांचवें और छठे बिभाग का दृश्य स्थूलभवन काही है, बरन स्थूलभुवन का दिखाव साधारण दृष्टि के दिखावकी समान नहीं बरन अन्यही प्रकार का होता है दृष्टि भलीप्रकार से खुल जानेपर प्रत्येक दृढ़ पदार्थ की सब ओर एकही समय में दिखाई देती है; और फिर बस्तुके समस्त भीतरी परमाणु भी दिखातेहैं। इसके उपरांत स्थूल भुवन की वायु और ईथर इत्यादि अदृष्ट बस्तुएं भी देखने में आती हैं जिससे स्थूलभुवन की जानपड़ती हुई बस्तुएं भी काम

लोक में से देखने पर कठिनाई उपजानेवाली होजाती हैं। और स्थूलभुवनभी अन्य प्रकार काही जानपड़ता है।

फिर प्रत्येक प्राणियों के आसपास की रहीहुई 'ओरा' जो आभी देखपड़ती है वह कामलोक से देखने पर पूरी दिखाई देती है और उसमें मनुष्य की 'ओरा' भली प्रकार से विकाशित होने के कारण उसके अनेक प्रकारके रंग और झलक अभ्यासी को यथेष्ट दिखाई देता है। छायाशरीर-प्राण की 'ओरा' और चलायमान तथा खुली देखपड़तीहुई कामरूपकी 'ओरा' साधारण दिव्यदृष्टि होने से देखने में आतीहै परन्तु ऊपरी तत्त्वोंकी अति सूक्ष्म 'ओरा' साधारण दिव्यदृष्टि से देखनेमें नहीं आती। जिस को शास्त्र में देवचक्षु अथवा शिव की आंख कहा है उसके विकशित होने से बुद्धि मनस की 'ओरा' देखी जासकती है।

छायाशरीर के बन्धन में आतेहुए चार ईथरों के दूसरे सात सात विभागहुए हैं इससे उन प्रत्येक विभागों के पदार्थों की न्यूनाधिकता के सम्बन्ध से प्रत्येक मनुष्य को उसके कर्मानुसार जैसा चाहिये वैसा छायाशरीर मिलसकता है। छाया शरीर में रहेहुए इन सब वर्गों के 'ईथर' दिव्यदृष्टिवालों को दिखाई देते हैं। फिर स्थूलभुवन के किसी भी पदार्थ को दिव्यदृष्टि से इच्छा-

नुसार बड़े रूपमें लायाजासकता है, इसकारण पश्चिम की विद्या (मेसमरिजम आदि) के आधारसे जो ईथर का अस्तित्व केवल विशेष कारणोंके लिये स्वीकार कियाजाताहै उसके प्रत्येक परमाणु विश्वदृष्टिवाले को भली प्रकार दिखाई देते हैं।

इसके उपरांत सूरजकी सफेद किरणको 'प्रीसम' नामके कांच मेंसे पृथक कियाजाय तो नीलेसे लाल तक केवल सातहीं किरणें प्रत्येक मनुष्यको पृथकहोते हुए दिखाई देंगी, परंतु इन सातोंके अतिरिक्त नीलेके ऊपर अति नीली और लालके नीचे अति लाल किरणें विश्वदृष्टि वालेको भलीप्रकारसे जान पड़ेंगी। इससे जिसको विश्वदृष्टि प्राप्तहुईहो उसको ज्ञानका मार्ग भलीभांति खुलसकता है। पत्थरका टुकड़ा जो केवल निर्जीव पदार्थ गिना जाताहै उस को यदि काम लोकसे देखाजाय तो वह अन्यही प्रकार दिखाई देताहै। एकतो उसकी एक या दो ओर देख पड़नेके बदले समस्त टुकड़ा एक समयमेंही देख पड़ेगा और फिर उसके समस्त परमाणुभी आर पार जानपड़ेंगे। दूसरे उसके दृढ़ परमाणुओं में चलतीहुई लहरेंभी दीखपड़ेंगी। तीसरे उसकी छायाशरीर दीखेगा कि जिसके सूक्ष्म परमाणुओंमेंभी लहरें हुआकरतीहैं। चौथे उस में आर पार प्रवेश कियाहुआ प्राणतत्त्वभी दिखाई देताहै। पांचवें

उसके चारों ओर फैलीहुई 'ओरा' भी दिखाई देतीहै और छठवें उसमें रही हुई सूक्ष्म प्रकृति जो स्थूल पदार्थके रूपमें अस्तित्व में आनेसे पहिले सूक्ष्म रूपमें रहती है वहभी दिखाई देती है।

शो०—स्थूलभुवनके साधारण जीवोंको कामलोकका मान नहीं होता क्या इसही प्रकार कामलोक के भी जीवोको समझना चाहिये या नहीं ?

थि०—साधारण अवस्थामें काम लोकके जीवोंको स्थूल भुवन का मान नहीं होता, परंतु प्रत्येक वस्तुके भीतर कामलोकके सूक्ष्म पदार्थोंका भागरहा होताहै इसकारण वह उनके जाननेमें आती हैं।

शो०—जो कामलोक के मुख्य दो भागोंका वर्णन किया क्या उसही प्रकार नीचके तीसरे भागको समझना चाहिये ?

थि०—मुख्य तीसरेभागके अथवा सातवें विभागके पदार्थ उस भुवनके ऊपर सबसे थोड़े होनेके कारण अलग हुए सूक्ष्म शरीर को उसमें रहने या उसमें से होकर जाने के कारण उसे अत्यंत कठिनता और कंपाहट होती है, इस कारण उस विभागकी खोज खाजकरनेकी किसीभी विद्यार्थी की इच्छा नहीं होती। उसका दृश्य बड़ाही भयंकर है और उसके जीव शांति बिना अत्यंतही दुःखित रहते हैं। ऊपरी तीन विभागों की अथवा मुख्य पहले

भागकी अवस्था उससे अन्यही प्रकारकी है। कामलोक के इस सूक्ष्म भागमें स्थूल भुवनके अत्यंत पृथक होनेके कारण इन दोनों पदार्थोंमें अत्यंत अंतर पड़ता है। इससे वहांके बसनेवाले जीवों को स्थूल भुवनका भान नहीं रहता। वह अधिकतर अपनीही अवस्थामें लीनहुए जानपड़ते हैं। इस पहले वर्गकी स्थिति नीचे के तीसरे वर्ग से उलटा है अर्थात उस वर्गकी स्थिति अत्यन्तही प्रसन्नताको उत्पन्न करनेवाली है और वहांके जीव अपने निमित्त अनेक प्रकारके घर बार इत्यादिको स्थापित करते हैं।

अब दृश्य का वर्णन पूर्ण करने से पहिले एक विषयके कहने की आवश्यकता है कि कामलोक से अत्यंत सूक्ष्म जो आकाशिक भुवन है उसके सूक्ष्म पदार्थोंमें, बनेहुए वैसेही चाल बनाते हुए समस्त बनाव और विचारों का 'फोटोग्राफ' की समान प्रतिबिंब पड़ता रहता है, और इससे पिछले किसी समय के भी बने हुए बनाव आकाशतत्त्व में देखतेही जानपड़ते हैं। अब स्थूल भुवनके सूक्ष्म ईथरों में ऊपरी भुवनों का प्रतिबिंब पड़नेसे आकाश तत्त्व देखपड़े, इतनी दृष्टि न विकाशित होने से यह विद्यार्थी भी 'ईथरों में पड़ते हुए प्रतिबिंब के ऊपर से बनेहुए बनावों को अंतिम सीमातक जान सकते हैं। कामलोक के दृश्य के निमित्त

यह अत्यन्तही सूक्ष्म वर्णन है परन्तु उसमें मुख्य बातों का समावेश होजावेगे अब उसके जीव का विषय वर्णन करेंगे ।

कामलोक भी स्थूलभुवन की समान बड़ाभुवन है और वहां भी अनेक प्रकार के जीव बसते हैं उनके तीन मुख्यभाग किसेगये हैं उनमें से प्रथम तो वहां के रहेहुए मनुष्य, दूसरे, मनुष्यों के अतिरिक्त कामलोक के समस्त जीव और तीसरे, मनुष्यों के विचारों से उत्पन्नहुए 'अलीमटल' इत्यादि हैं । इनमें से कामलोक में देखे जातेहुए मनुष्य भी दो भागों में विभक्त होजाते हैं ।प्रथम भाग में स्थूल उपाधि में जीवित होकर उसमें से बाहर निकल थोड़े समय के निमित्त कामलोक में फेरा करनेवाले मनुष्यों का समावेश होता है, और दूसरे में जो बिना स्थूलउपाधि के कि जिनकी उस समय में सब से निचली उपाधि सूक्ष्म पदार्थ कीही है उन जीवों का समावेश होताहै । फिर इनमें के पहले वर्ग के मनुष्य कि जिनकी स्थूल उपाधि अस्तित्व में होती है उनके भी दूसरे चारभाग हुए हैं ।

१—मायावी रूप नाम की सूक्ष्म उपाधि में फिरनेवाले महात्मा और उनके चेले ।

२—महात्मा गुरुकी सहायता बिना केवल पूर्व जन्म के उत्तम

कर्मों और अभ्यास से आगे बढ़कर स्थूल उपाधि में से बाहर निकलनेवाले मनुष्य ।

३—घनघोर निद्रामें पड़ने के पीछे स्थूल उपाधि से पृथक हो कामलोक में आनेवाले साधारण मनुष्य; और—

४—मरने के पहिले स्थूल उपाधि में से निकल कामलोक में आनेवाले वाममार्गी, जादूगर और उनके चेले हैं ।

फिर इसही प्रकार दूसरे वर्गके मनुष्य बिना उपाधि वाले अर्थात् जो उपाधि के बंधन से छूटगये हैं वह भी नीचे के अनुसार नवभागों में विभक्त हुए हैं ।

१—निर्माणकाया नामके महात्मा कि जो मुक्त होकर भी जगत के कल्याण निमित्त सूक्ष्म उपाधि में रहते हैं ।

२ —जन्म लेनेके निमित्त तइयार रहेहुए चेले ।

३—मरने के पीछे स्थूल उपाधि को छोड़कर आये हुए साधारण मनुष्य ।

४—कामरूप के 'शेड' अथवा ऊपरी मनससे छूट पड़ेहुए निचले मनस के साथवाले कामरूप के खोखले ।

५—कामरूप के 'शल' अथवा निचले मनस के समस्त छूट

पड़ने पर देवखन में जाने के पीछे रहगये हुए काम रूपके खाली खोखल ।

६—वाममार्ग की क्रियाओं से सजीवन करने में आते हुए खोखल ।

७—अकस्मात् तथा अपघात से स्थूल उपाधि को छोड़ आये हुए मनुष्य ।

८—'वेमपायर' नामके रुधिर चूसने वाले पिशाच तथा वायुके रूपमें स्थूलभुवन के ऊपर प्रगट होनेवाले भूत; और

९—मरने के पीछे उपाधि छोड़कर कामलोक में प्रवेश किये हुए वाममार्गी जादूगर और उनके चेले ।

इसके उपरांत मुख्य दूसरे वर्गके मनुष्यों को छोड़ कामलोक के जीव नीचे के अनुसार चारभागों में विभक्त हुए हैं ।

१—जड पदार्थ के रूपसे अस्तित्व में आने के पहिले 'एली-मेन्टल एसन्स' के नामसे जानपड़ती हुई सूक्ष्म रूप में रहीहुई प्रकृति ।

२—प्राणियों के कामरूप के खोखल ।

३—जिन्न—परियां आदि कामलोक में बसतेहुए जीव ।

४— कामलोक में रहनेवाले देवता अर्थात् फरिश्ते ।

इसही प्रकार मुख्य तीसरे वर्ग में कहेहुए ' अलीमन्टल ' के भी तीन विभाग किये गये हैं ।

१—मनुष्य जाति के विचारों और इच्छाओं के कारण अज्ञानपने से उत्पन्न हुए अली मन्टल ।

२—महात्मा तथा वाममार्गी जादूगरोंसे गुप्तविद्या के आधार द्वारा उत्पन्न करने में आते हुए ' अलीमन्टल ' और—

३—' स्प्रिचुएलिस्टों ' के मंडल में ' अलीमंटल ' की समान दिखाई देनेवाले मनुष्य ।

इसप्रकार कामलोकमें रहेहुए सब जीवोंके ऊपर कहे अनुसार भाग होते हैं कि जिसका प्रत्येक अभ्यासी को स्मरण करना चाहिये ।

शो०—कृपाकरके प्रत्येकका पृथक २ वर्णन कीजिये ।

(१) थि०— मायावीरूप में फिरनेवाले महात्मा और उनके चेले, कामलोक में वैसेही देवखन के रूपलोक में भी आया जाया करते हैं तथा कामलोक में कामतत्वकी उपाधि में प्रवेश करते हैं, बरन जैसे २ उपाधि अत्यन्त सूक्ष्म होतीजाती है वैसेही वैसे जीव अधिक बल और छुटकारे से प्रगट हो सकता है, इसकारण कामतत्व से अधिक सूक्ष्म जो निचले मनस की 'ओरा' है उसमेंसे बनतीहुई मायावीरूप नामकी उपाधि अधिक

तर काम में आती है । विशेष सीमातक चेलों का अभ्यास आगे बढ़नेके पीछे उनके महात्मागुरू स्वयं उनकी 'ओरा' में से मायावीरूप बनाते हैं, और वैसे बनानाचाहिये यह उनको सिखाते हैं । मायावी रूपका बनाना सीखनेके पीछे चेले इच्छानुसार स्थूल उपाधि में से निकल कामलोक और देवखन के रूपलोक में भी प्रवेश करसक्ते हैं और अपने परम गुरू की आज्ञानुसार उनके सौंपेहुए काम को करते हैं । जैसे मायावी रूप की उपाधि में देवखन के रूपलोक में जाते हैं, तैसेही कामलोक में भी फिर सकते हैं, इसकारण दोनों ओरसे सबलता पड़ने के कारण महात्मा और उनके चेले विशेष कर कामलोक मेंही मायावी रूप की उपाधि में फिरा करते हैं मायावी रूप में फिरनेवाले महात्मा और उनके चेले साधारण विश्वदृष्टिवालों को नहीं दिखाई देते परन्तु जो उनके देखने की इच्छा करें तो अपनी सूक्ष्म उपाधि के ऊपर कामलोकके पदार्थोंके परमाणुओंको खींचलेवे तो ऐसा करसकताहै

(२)–महात्मागुरू की सहायता न होतेहुए भी केवल अगले जन्मों के भलेकर्मों और पवित्रताई के फल के अनुसार जो विश्वदृष्टि आदि शक्तिय जन्मसेही लिये आते हैं यह भी कामलोक में चेलों की समान भान सहित फिरसकते हैं,

परन्तु उस भुवन की सूक्ष्मता के विषय में उनको शिक्षा न मिलने से वह वहां के समस्त विषयों को नहीं समझ सकते इसही प्रकार समस्त बातों के स्मरण रहने की शक्ति न होनेसे उसके बताये हुए वर्णन के मिथ्या होजाने की सम्भावना रहती है। इसप्रकार कामलोक में आने जानेवाले मनुष्य केवल कामरूप कीही उपाधि में फिरसकते हैं क्योंकि महात्मा गुरू की सहायता न होनेसे वह मायावी रूप नहीं बना सकते।

(२) पूर्णनिद्रा में पड़नेके पीछे स्थूलउपाधि मेंसे बाहर निकलतेहुए साधारण मनुष्य वहुधा अर्द्ध अचैतन्य अवस्था से कामलोक में फिरतेहुए जान पड़ते हैं। पूर्ण निद्रा में होने के पीछे वहुधा प्रत्येक मनुष्य के ऊपरी तत्त्व स्थूलउपाधि से पृथक होजाते हैं, परन्तु वह कामलोक में चैतन्य या अचैतन्य रहें उस का आधार मनुष्य की अधिक या न्यून पवित्रताई के ऊपर वैसे ही उसकी मनशक्ति के अधिक या न्यून विकशित होनेपर है। जंगली जाति के मनुष्य कि जिनका मनस विकशित न हुआ हो उनका कामरूप वैसेही जो पापी टेव वाले हैं उनका कामरूप सूक्ष्मबन्धाव का न होने के कारण स्थूलउपाधि की समान आकार में नहीं गढ़सकता, इससेही वह उपाधि की समान काम में नहीं

आता और जैसे स्थूलउपाधि निद्रा में अचैतन्य अवस्था में पड़ी रहती है वैसेही ऊपरी तत्त्व भी अर्द्ध अचैतन्य अवस्था में कामलोक में पड़े रहते हैं। इससे विपरीत पवित्र बुद्धिवाले मनुष्यों का कामरूप में सूक्ष्मपदार्थ अधिक होने से तथा मनशक्ति के विकाशित होने से कामरूप स्थूलउपाधि के समान आकार पकड़ता है और ऊपरी तत्वों के छूटपड़ने के पीछे वह उपाधि के समान शरीर से बहुत दूर जाने को शक्तिमान होता है।

(४)—वाममार्गी जादूगर और उनके चेले महात्मा और उनके चेलोंही की समान कामलोक में फिरते हैं, परन्तु इनदोनों वर्गके जादूगर परस्पर एक दूसरेसे विपरीत हैं। वाममार्गी अथवा काले जादूगर भी अत्यत गुप्त शक्तियों को धारण करते हैं, परन्तु वे अपनी सब शक्तियोंको अपनेही स्वार्थमें लगाते हैं इस कारण वह जगतके शत्रु हैं। इससे विपरीत दक्षिणमार्गी महात्मा और उनके चेलोंकी अवस्था है। वह बहुत समय तक अत्यंत परिश्रम से मानसिक शक्ति और ज्ञान को प्राप्तकर सब भोगोंको भोग संसार के कल्याणार्थ काम में आने से जगतके मित्र हैं। कामलोक में फिरने वाले वाम मार्गियों में आफ्रीका के 'ओबीह' और 'वुड' नामकी तंत्रविद्या के सिखाने वाली मंडलियों के

सम्बन्धी सीधिओं तैसेही अफ्रिकाके तंत्रविद्या जाननेवाले बड़दलोग तुच्छ प्रकार के जादूगरों की समान गिनेजाते हैं। उनसे भी अधिक पापी और अधिक हानिकारक जादूगर तिब्बत के दुगपा नामक मनुष्य हैं कि जिनका ज्ञान अधिक होने से वह जगतको अधिक हानि पहुँचा सकते हैं। वह तंत्रविद्याका अभ्यास करते हैं उनका बुधधर्म के साथ कुछभी सम्बन्ध नहीं है। इन वाममार्गी जादूगरों के अतिरिक्त वामलोक में दूसरे भी दक्षिण मार्गी चेले घूमते हुए जानपड़ते हैं। हिमालय के मरुय आश्रम के अतिरिक्त संसार में गुप्त विद्याके सिखाने वाले दूसरे भी अनेक बड़े आश्रम हैं, परन्तु प्रत्येक अभ्यासी स्वीकार करता है कि संसार में अस्तित्व भोगते हुए बड़ेसे बड़े महात्मा हिमालयही के आश्रममें हैं।

अब कामलोक में रहेहुए बिना स्थूल उपाधिके मनुष्यों के जो नवमुख्य भागहुए हैं उनके सम्बन्ध में कहूं।।

(१)–निर्माणकाया नामके महात्मा कि जिनके स्थूल उपाधि नहीं है वह कामलोक की समान निचले भुवन में कभी ही प्रवेश करते हैं, क्योंकि जैसे २ उपाधि सूक्ष्म और भुवनों में चढ़ती जाती है तैसेही तैसे जीवकी शक्ति बढ़ती जाती और

कामों के करने से छुटकारा मिलता जाता है, और जब उसको अपने महान् कार्यों के करने के निमित्त कामलोक में प्रवेश करने की आवश्यकता होती है तब वह अपने निमित्त कामलोक के पदार्थों में से शीघ्रता पूर्वक उपाधि को खड़ा करता है, और उस में प्रगट हो काम पूर्ण होने के पीछे अंत में बिखर जाता है ।

(२)—अवतार धारण करने को तइयार रहेहुए चेले कामलोक में कुछ समूह के समूह नहीं देखने में आते ऐसा होते हुए भी बारंबार देख पड़ने के कारण दूसरे वर्ग में उनको प्रवेश करने की आवश्यकता होती है । महात्मा गुरूकी शरणमें जाय उस की कृपा से गुप्तविद्या का अभ्यासकर बहुत समय तक जब चेला अपने अभ्यास और पवित्रताई में अमुक श्रेणी पर पहुंचता है तब अपने महात्मा गुरुकी सहायता से साधारण मनुष्यों के सम्बन्धी प्राकृतिक नियमके चक्करसे छूटने को शक्तिमान होता है । पीछे कहआये हैं कि मरने के पीछे कामलोक में से होकर प्रत्येक जीव को बहुत शताब्दियों तक देवखन में अत्यंत सुखके साथ रहना पड़ता है. और वहां अधिक या न्यून समय के रहनेका आधार मरनेवाले की पवित्रता के ऊपर और मनशक्ति के कियेहुए विचारों पर होताहै, जो चेला, कि साधारण मनुष्यों की अपेक्षा

अत्यंतही पवित्र हैं, तैसेही जिनकी मनशक्ति भी साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अधिक विकाशित हुई है वह जो स्थूल उपाधि में से छूटने के पीछे देवखनमें आवें तो नियमानुसार उनको अनेक शताब्दियों तक सुखमें रहने को मिलता है; परन्तु इस प्रकार स्थूल भुवन के सम्बंध में से बहुत समय तक पृथक रहने से सृष्टि के उत्तम २ और भारी २ कर्मों के करने और उनके चलते हुए अभ्यास में विघ्न पड़ने से चेले बहुधा देवखनके बहुत समयवाले सुखके भोगको छोड़ तत्कालही स्थूलभुवनके ऊपर अवतार ले अपने परम गुरूकी कृपासे अपने अभ्यास और उनके समर्पण किये हुए कर्म के करने को अति उत्तम समझते हैं। इस प्रकार तत्काल ही अवतार लेना प्रकृति के साधारण नियम के अनुसार नहीं है इससे उनको ऐसे अवतार के लेने में गुरुकी भी आज्ञा लेनी पड़ती है। जबतक चेलेको नये अवतार के लेने योग्य कोई उत्तम गठन नहीं प्राप्तहोती तबतक उसको कामलोक मेंही रहना पड़ता है, क्योंकि जो चेला एक समय भी कामलोक को छोड़कर देवखन में जाय तो फिर वह साधारण नियम के चक्कर में आजाता है और नियमानुसार उसको भी देवखनमें रहने को विवश होना पड़ता है। कितनेही समय जन्म के दुःख और आपत्तियों

से बचनेके निमित्त चेले पूर्ण आयुवाले बच्चेके शरीर मेंही अवतार लेलेते हैं, और वह इस प्रकार कि वे कर्मानुसार किसी छोटी आयु में मरण पानेवाले को ढूंढते हैं और जब वह मरण पाता अथवा देह छोड़ जाता है तभी वे चेले उसकी उपाधि को अधिकार में करलेते हैं। इसप्रकार के अवतार कभीही देखने में आते हैं, क्योंकि चेले को योग्य उपाधि मिलना अत्यंतही कठिन है। साधारण रीति से तत्काल अवतार लेने के निमित्त तइयार हुए चेलों को योग्य मा बाप के पेटसे जन्म लेने के कारण थोड़ेही समय तक कामलोक में रहना पड़ता है। जन्म लेनेके निमित्त तइयार रहेहुए चेले कामलोकमें अपने समय को नहीं व्यतीत करते वरन उस अवस्थामें वह मरनेके पहिले सैकड़ों बेर के आने जाने से वहां अपने गुरूके सौंपे हुए कामको भानसहित करतेहैं।

शो०—इस रीति से प्रत्येक अभ्यासी को तत्काल अवतार मिल सकताहै या नहीं?

थि०—नहीं, साधारण स्थितिके जीवोंको देवखन में जाने की आवश्यकता होने से उनका साधारण नियमों सेही संबंध होता है, परन्तु महात्मा गुरुओंने अपने चेलों की समान जिसको स्वीकार कियाहो उस आगे बढ़ेहुए जीव कोही तत्काल अवतार मि-

लने की संभावना रहती है । फिर चेलोंके स्थूल उपाधि में होते हुए देवखन में भान सहित आने जाने से देवखनका सुख कैसाहै, इसका उसको सम्पूर्ण भान होता है इससे इच्छानुसार मिलतेहुए अनेक शताब्दियों पर्यंत स्वर्ग के सुखको छोड़ इस दरिद्र संसार में तत्काल अवतार लेना और शरीर के बंदीगृह में पड़ना यह उनको अत्यंत दुःख की समान होता है, ऐसा होनेपर भी अपनें अभ्यासमें विघ्न न पड़े और अपने परम गुरूका सम्बन्धी भी स्थिररहे इसकारण वह तत्कालही अवतार लेनेमें प्रसन्न रहतेहैं । साधारण अभ्यासी कि जिनको स्वर्गके सुखका कुछ भी भान नहीं है वह तत्कालही अवतार लेनेको तइयार हों इसमें कुछ नवीनता नहींहै ।

[३] मरण होने से स्थूल उपाधि छोड़ कर आये हुए साधारण मनुष्य कामलोक में अधिकतासे देखेजाते हैं देवखनमें जानेसे पहिले कामलोकमें रहनेका समय प्रत्येक मनुष्यका पृथकर होताहै । कोई थोड़ेही दिनमें या थोड़े घंटोंमें कामलोक को पार करजाते हैं, और किसी को बहुतवर्ष या बहुत शताब्दियों तक कामलोकमें रहना पड़ताहै । धर्म मार्गमें चलकर जो अपने अवतारों का फैलाव करते हैं उनका काम तत्व अधीन रहने से वे कामलोक में अर्द्ध अचैतन्य अवस्था में रहते हैं और संसार के

पदार्थोंका आकर्षण होनेसे जैसे स्थूलउपाधि छोड़ने के पीछे जीव तत्कालही छाया शरीर छोड़देताहै छाया शरीर से छुटने के पीछे काम रूप का खोल पृथक होजाने से समस्त मनस देवखन में जाता है । बहुधा साधारण मनुष्यों की आशा और इच्छा नहीं छूटती इससे उनको काम रूप में उत्पन्न किये हुए आवेशों से छूटने में बहुत समय लगता है और उतने समय तक जीव को कामलोक में न्यून या अधिक भान के साथ रहना पड़ता है ।

चेले इत्यादि गुप्तविद्याके अभ्यासी जैसे स्थूल उपाधि में से निकल कामलोक के पूर्ण विभाग में फिर सकते हैं तैसे मरने के पीछे कामलोक में प्रवेश कियेहुए मनुष्यों से नहीं होसकता वह पहिले निचले विभाग में प्रवेश करते हैं और जबतक उस विभाग सम्बन्धीय तुच्छ जाति की इच्छाओं के आवेशसे छूटते हैं तबतक उस विभागमें रहने के पीछे उससे ऊपरी विभाग में जासकते हैं ऐसा करने से जैसे २ उनकी तुच्छ इच्छाओं का नाश होताजाता है अथवा कामरूप से उनका बल निकलता जाता है वैसेही वैसे कामरूपमें से उसके घट पदार्थ न्यून होते जाते हैं और ऊपरी विभाग में जीव प्रवेश करता है । जितनी श्रेणी के जीव कामलोक के निचले भुवनपर होते हैं इतनीही

श्रेणी वह 'मिडियम' के द्वारा सरलता से प्रगट हो सकते हैं अथवा वह स्थूल भुवन के ऊपर खिंच आते हैं।

अपघातमे देह छोड़ गये हुए बहुधा काम लोकके सातवें विभागमें भ्रमण करते रहते हैं इस कारण 'मिडियम, के द्वारा सहलतासे स्थूल भुवनके ऊपर खिंचआते हैं।

शो०—अपघातसे मरण पाये हुए जीवोंको काम लोकके सबसे निचले विभागमें किस कारण रहना पड़ताहै ?

थि०—जिस प्रकार पकेहुए फलमेंसे गुठली निकाली जावे तो वह सहलतासे बाहर निकल आती है परंतु यदि वह कच्चे फलमेंसे निकाली जाय तो उसको चीरकर अत्यंत बलसे खींच कर निकालना पड़ताहै और फिर इसप्रकारसे गुठली निकालनेपर उसके साथ फलका थोड़ासा भागभी लिपटकर निकल आता है, वैसेही प्रकृतिक नियमानुसार अपने समय पर मरण पानेवालेके ऊपरी तत्व बहुत समयसेही स्थूल उपाधिके रोग से या किसी दूसरे कारणसे छूट पड़ते हैं और मरनेके समय स्थूल उपाधिके समस्त पदार्थोंसे छूटकर बाहर निकल आते हैं। ऐसा होने के कारण छूटपड़े हुए कामरूप मे किसी प्रकार की स्थूल उपाधि न रहनेसे बहुधा वह कामलोकके छठवें या पांचवें विभाग में रह

सकते हैं, परंतु जो अपघातसे अथवा बल पूर्वक ऊपरी तत्वोंको स्थूल उपाधिसे पृथक किया जाता है तब कच्चे फलमेंसे चीरकर निकाली हुई गुठली के समान छूटा हुआ काम रूप थोड़े बहुत स्थूल परमाणुओं के लिपटे हुएही बाहर निकलते हैं, और कामलोकके ऊपरी विभागमें नहीं जासकते, बरन आरंभ में सातवें विभागमेंही प्रवेश करतेहैं। इस विभागमें उनको अपने कर्मानुसार आयुष्य अथवा आयु पूर्ण होने तक रहना पड़ता है और पीछे वह छठे या पांचवें विभाग में प्रवेश कर साधारण मनुष्यों की अवस्था में आजाते हैं।

शो०—अमुक मनुष्य मरणपाकर कामलोक में आया है अथवा थोड़ेही समयके निमित्त स्थूल उपाधि से छूटकर आया है वह कामलोकमें किसप्रकार जाना जासकताहै?

थि०—अपना कामरूप कामलोकके सात विभागोंके पदार्थों का बनाहुआ है इसही कारण उसमें भली या बुरी इच्छाओं के अनुसार तैसेही उच्च या नीच प्रकारके आवेशों के अनुसार ऊपरी या निचले विभाग के सूक्ष्म या घट पदार्थ स्थितहोते हैं; और ऐसा होनेके कारण जबस्थूल उपाधिको छोड़कर थोड़े समय के निमित्तही जीव कामलोकमें जाताहै तब उसके छूट पड़ेहुए

कामतत्वमें इन सातों विभागोंके न्यून या अधिक पदार्थ एक में एक मिलेहुए देखनेमें आते हैं, परन्तु मरने के पीछे ऐसा नहीं होता । मरने के पीछे जीवके स्थूल उपाधि छोड़ आनेपर, काम रूपमें रहेहुए पृथक २ विभागोंके पदार्थ परस्पर एक दूसरे से पृथकहो उन प्रत्येककी एकके ऊपर एक ऐसी पृथक २ उपाधिएं होजातीहैं जिससे मरनेवालेके कामरूपके मिलेहुए पदार्थोंका एक ही खोखला होनेके बदले छोटी २ पांच छह या सात उपाधियें एकके ऊपर एक ऐसी खोखलों के आकार में रहीहुई देखने में आती हैं । इसप्रकार का अंतर पड़नेसे इन दोनोंवर्गों के बीच कामलोकमें पहिचाने जाते हैं । निचले विभाग का खोल सबसे बाहर और सूक्ष्मपदार्थ का खोल सबसे भीतर मरनेवाले के काम रूपमें गँठजाता है, और जैसे २ उसके कामरूपमेंसे निचले खोल छूटकर विखरते जाते हैं तैसे ही तैसे वे निचले विभागों में से ऊपरी विभागों में चढ़ते जाते हैं ।

मरनेके पीछे स्वर्ग अथवा नर्कमें जानाहोगा ऐसा तो साधारण मनुष्य मानतेही हैं इसकारण मनुष्य जब मरने के पीछे काम-लोकमें चैतन्यहोताहै तब उसे अपने निश्चयके अनुसार फल मिलताहै उसको जान पड़ता है कि मैं स्वयं जीवित हूं मेराही

नहीं । वरन दूसरी ओरसे नर्क में पड़नेका भय रखनेवाले मनुष्योंको उनके कामलोकमें जाने के पीछे उस डरका बिचार मन में होनेसे वह बिना कारणही दुःखी होते हैं । इसप्रकार मरने के पीछे कामलोक में प्रवेश किये हुए मनुष्यों की पृथक २ अवस्था होती है ॥

फिर 'प्रेतावाहन' अथवा 'स्प्रिचुएलीस' नामकतंत्रके चलानेसे मरण पानेवालोंको तैसेही मण्डलमें बैठनेवालोंको बहुतसी हानि पहुँचती है यहांपर इसका स्पष्टीकरण करनेकी आवश्यकता है ।

१—मरनेके पीछे कामलोक में निचले मनसके ऊपर होते हुए दोनों ओरके आकर्षणमें 'स्प्रिचुएलीजम' से कामरूपके निचले आकर्षणको अनुमोदन मिलताहै जिससे जीवको बिना कारणही कामलोकमें बहुत समयतक रहनापड़ता है और उनके दोनों अवतारोंके बीचका समय व्यर्थही बीतताहै ।

२—कामलोक में रहेहुए जीव को 'स्प्रिचुएलीजम' से या किसी दूसरी रीतिसे 'मिडियम' के द्वारा स्थूलभुवनके ऊपर खेंचा जाता है तब वह जीव अपनी अधूरारहीहुई इच्छाओं को पूर्ण करता है वह नए पाप कर्म उसकेही हिसाब में लिखे जाते हैं कि जो उसको आनेवाले अवतार में पूरा करना पड़ता है ।

३—'स्प्रिचुएलीजम' से या किसी दूसरी रीतिसे 'मिडियम' के द्वारा वारम्वार जीवको स्थूलभुवन के ऊपर आकर्षण करने से कामरूप का निचला आकर्षण ऊपरी मनस के आकर्षण के साथ मिलने से इतना अधिक से अधिक होपड़ता है कि कितने ही समय समस्त निचला मनस कामरूप के साथ मिलकर एक होजाता है और ऊपरी ममस के साथ का सम्बन्ध अंतःकरण से छूटकर कामरूप के साथही नाशपाता है । ऐसा भयंकर परिणाम कमीही होता है, वरन साधारण रीतिके ऐसे प्रयोग से मरनेवाले का थोड़ावहुत मनस कामरूपके साथ एक होकर नाशपाता है ।

४ —वारम्वार 'स्प्रिचुएलिस्टों' के मंडल में बैठनेसे बैठनेवालों में विशेष प्रभाव उत्पन्न होता है, जिससे उनके मरने के पीछे वे स्वयंही इस मण्डली की ओर खिंचआते हैं और ऊपरकही हुई तीनों हानियें उन्हे स्वयं भी पहुंचती हैं ।

५—प्रगट होनेवाले भूतोंके चमत्कार उत्पन्न करनेवाले प्रयोग करनेके निमित्त प्राण तत्वकी आवश्यकता पड़ती है इससे वह बहुधा मण्डल में बैठने वालों के प्राण तत्व को चूस लेते हैं कि जिससे प्रयोग से निश्चित होनेपर मण्डल में बैठनेवालों के प्राण तत्व के घटजाने से थकावट लगनेकी निर्बलतासी जान पड़तीहै ।

फिर स्थूल उपाधि की अवस्था में रहेहुए सगे संबंधियोंकी अज्ञानता से उत्पन्न हुए शोक द्वारा और रोने से मरनेवाले का काम मनस जाग्रत होताहै और इससे प्राकृतिक नियमानुसार कामलोक में प्रवेश कर देवखन में जाने के समय बहुत सी आपत्तियें और दुःखदायक विघ्न भोगते हैं । इस बात से मरनेवाले का स्मरण करने की कोई आवश्यकता नहीं है अथवा ऐसा करना बुरा है यह समझना न चाहिये, बरन जो ऐसी दृढ़ इच्छा होवे कि मरनेवाला शीघ्रता से काम लोक छोड़ स्वर्गको जावे तो मरनेवाले के निमित्त यथार्थ प्यार दिखलानाही अच्छा है ।

फिर इसके अतिरिक्त काम लोकमें प्रवेश करनेके पीछे, मरनेवाले को अपने मरण समय में कोई वसीयतनामा या कोई ऐसाही आवश्यकीय समाचार कहने को रह गयाहो तो उसको वारंवार स्थूलभुवन का भान होकर उसका आकर्षण होताहै, उस समय जो कोई 'मिडियम' के द्वारा उसको अपना संदेशा कहनेका अवसर आवे तो उससे उसके विषयमें अत्यन्त लाभ होताहै । इस समय जिसके द्वारा वह सरलतासे बोल या लिखसके ऐसे 'मिडियम' की सहायता अत्यन्त उपयोगी होजाती है ।

शो०—यदि 'मिडियम' की सहायता न होवे तो

मरनेवाले से अपना संदेशा प्रगट किया जासकता है या नहीं ?

थि०—नहीं, जबऐसेजीवको 'मिडियम' की सहायता नहीं मिलती तब वह अपनी इच्छाशक्ति के बलसे ऊपरीतत्वों को चलाय मान कर पत्थर फेंकने या घंटा बजाने इत्यादि का यत्न करता है पहले कह आये हैं तैसे ही एक अवस्था में रहे हुए पदार्थ उससे तत्काल ही उतरती या चढ़ती अवस्था में रहे पदार्थों के ऊपरही अपना प्रभावकरसकतेहैं इसही कारण जीव कामरूप की उपाधि की सहायतासे स्थूल भुवन केकलम इत्यादि नकर पदार्थों को हिलःनहीं सकता वरन ऐसा करनेके निमित्त स्थूल उपाधि और कामरूपके बीचमें रहेहुए 'इथरों' की सहायता लेनेकी आवश्यकता होने से 'मिडियम' की जिसके तत्व शीघ्रता से छूट गएहों ऐसा होवे उसके छाया शरीर को अपनी उपाधि के समान काममें लाय उसकी द्वारा जो कहना होता है वही कह अथवा लिख सकताहै

(४)–कामरूप के 'शेड' अथवा 'अलीमनटरी'–पवित्र मनुष्यों के सम्बन्ध में काम का आकर्षण निर्बल होने से ऊपरी मनस निचले मनस को समस्त अवतारों में इकट्ठा कियेहुए 'मानसिक पिक्चरों' समेत अपने में खींचलेताहै और केवल काम रूप का खोल स्थूलउपाधि के समान मुर्दे के रूप में कामलोक

में बिखर जाताहै, वरन साधारण मनुष्य बहुधा भौतिक इच्छाओं के आधार में रहते हैं, इसकारण मरने के पीछे उनके निचले मनस का थोड़ा बहुत भाग कामरूप के खोखल के साथ मिलकर एकही ऊपरी मनस से पृथक होजाता है और पीछे शेषरहाहुआ भाग ऊपरी मनस की ओर खिचजाकर देवखन में जाने के पीछे कामलोक में रहेहुए मनस के साथ का खोखल भूत के आकारमें भ्रमता है और उसको 'शेड' अथवा 'अलीमनटर, के नाम से पुकाराजाता है यथार्थ मनुष्य तो वही है जो देवखन में प्रवेश करता है और नहीं तो पिछला रहगया हुआ खोख है, ऐसा होनेपर भी उन खोखों में मनस का भाग रहने के कारण वह मरनेवाले के समानही रूप और वैसीही उसकी स्मरणशक्ति को धारण करता है और जानीहुई चाल इत्यादि को करसकता है। जब 'स्प्रिचुएलिस्टों' के मण्डलमें ऐसे 'शेड' दिखाई देते हैं तब मण्डलमें बैठनेवाले प्राकृतिक रीतिसे उसको मरनेवाले की समान ही मानते हैं। उस उपाधि का सम्बन्धी यथार्थ मनुष्य अथवा जीव तो उस समय देवखनमें गयाहुआ होताहै, परंतु तौभी उस का 'शेड' कि जो केवल उसकी तुच्छ से तुच्छ टेवों (स्वभावों) का समूह है उसको भूल से यथार्थ मनुष्य समझा जाता है।

शो०—ऐसे 'शेड' कामलोक में कितने समयतक जीसकतेहैं ?

धि०—जितनी श्रेणी 'शेड' में मनसका भाग अधिक होताहै उतनीही श्रेणी वह अधिक समय तक जीसकता है। समय आने पर मनसके पदार्थ उससे पृथक होकर मानसिक भुवन के ऊपर विखर जाते हैं और उसके पीछेही कामरूपके खोलका नाश होजाता है। इस 'शेड' के साथ ऊपरी मनस का सम्बन्ध न होने से उसमें से तुच्छ इच्छायें अत्यन्त सरलता से बाहर निकलतीहैं। वाममार्गी ऐसे 'शेड' को अमुक चाल दे उनकी द्वारा अपनेकाम को करातेहैं।

(५)—कामरूप के 'शल' अथवा खोख—मरने के पीछे जब कामरूप से निचले मनस के समस्त परमाणु छूटजाते हैं तब उस शेष रहे हुए कामरूप के खोलल अथवा विखर जाने को तइयार हुए मुर्दे को 'शल' के नाम से पहिचाना जाता है। जब ऐसा खोख 'मिडियम' की 'ओरा' के सम्बन्ध में आता है तब उसके परमाणुओं में लहरियें उत्पन्न हो वह सजीवन होताहै। उस का आकार मरनेवाले की स्थूल उपाधि के समानही होता है और उसमें जीव न होते हुए भी उसके कोषों को मिली हुई चालके अनुसार वह जानी हुई चाल इत्यादि करसक्ताहै।

इसके अतिरिक्त 'शल' अथवा खोलों के वर्ग में मरनेवाले का

छायाशरीर भी लिया जासकता है। छायाशरीर कामरूप के खोख की समान जहां तहां नहीं लटकता वरन केवल स्थूलशरीर के निकट मेंही रहकर नाश पाता है। मुर्दा गाड़ने के स्थानपर दिव्यदृष्टि वालों ने ऐसे छायाशरीर के खोखों को ढगले की समान देखा है। इस बात से इतना ध्यानरखना चाहिए कि स्थूलभुवन को छोड़ देवखन में जाने के पहिले जीव एक के पीछे एक ऐसी तीन उपाधियों को अपने पीछे छोड़जाता है। वाममार्गी 'शव' को तैसेही छायाशरीर के खोखों को अत्यन्त नीच और कँपकँपाहट उत्पन्न करनेवाली क्रियाओं से सजीवनकर भयंकर भूत का रूप देते हैं कि जिस के निमित्त अधिक जानने की कुछ आवश्यकता नहीं।

६–वाममार्ग से उत्पन्न करने में आते हुए 'शव' अथवा खोख–आफ्रिका के ओवीह और बुदुमण्डली के तांत्रिक जादूगर अपनी इच्छाशक्ति के बल से भूत की समान खोखले उत्पन्न करतेहैं कि जिसका हम पूर्ण स्पष्टीकरण तीसरे वर्ग में करेंगे।

(७)–अपघात अथवा अकस्मात् से मरणपानेवालों के संबंध में जो अत्यन्त हानि होती है वह यह है कि दर्द से अथवा उस के बुढ़ापे से मरण होने के समय जिस प्रकार ऊपरी तत्व ढीले पड़कर सरलता पूर्वक स्थूलउपाधि से निकल आते हैं ऐसा होने

के वदले वलपूर्वक उन वत्वों के पृथक होने से. कच्चेफल मेंसे चीरकर निकाली हुई गुठलीकी समान कामरूप के साथ स्थूलउपाधि के अधिक पदार्थ लिपट रहते हैं, तैसेही मरनेवाले की इच्छाएं अधिकही वलवान होने के कारण स्थूलउपाधि छोड़ने के पीछे कामरूप सबसे निचले अर्थात् सातवें विभाग में प्रवेशित होता है। साधारण रीति से मरण पानेवालों का कामरूप वहुधा चौथे, पांचवें या छठवें विभाग में रहसकता है। अब सातवें विभाग में जीव की अवस्था स्थूलभुवन की अपेक्षा अधिक दुःखदायी होने से अपने हाथसेही खड़े किये हुए दुःख में से छूट जाने की इच्छाकर वल पूर्वक देह छोड़नेवाले को उलटे भागमेंसे तेल में पड़ना है। फिर अपघात करके मरणपानेवालों में साक्रेटीस की समान निर्दोष मनुष्य से वह अत्यन्तपापी मनुष्य भी होते हैं, इससे प्रत्येक के कर्मानुसार और मरने के पहिले की अवस्था के अनुसारही मरने के पीछे की अवस्था का आधार रहता है। इसही अकस्मात से मरण पायेहुए जो साधारण अवस्था के मनुष्य होते हैं उनपर कामलोक के सातवें विभाग का आकर्षण नहीं होता और मरने के पीछे, जब वह सातवें विभाग में प्रवेशित होते हैं तौभी वहां शान्त स्वप्नावस्था की समान

अवस्था में रह ऊपरी विभागों में जाते रहते हैं । परंतु जो अकस्मात् से मरणपानेवाले पापी हों तो उनकी अवस्था अपघात से मरणपानेवालों के समानही होती है । यह सब कुकर्मी भूत और पिशाचों के नाम से पुकारे जाते हैं । उनको तुच्छप्रकार के भोग भोगने की इच्छा अधिक होती है परन्तु स्थूल उपाधि के न होने से जब ऐसा नहीं बन सकता तब वह खाटिक की दूकानके ऊपर तैसेही शराब, ताड़ी इत्यादि के पीनेके अस्थानपर और जहां नीच कर्म होते हों उस स्थानपर वह भ्रमण करतेहुए दिव्यदृष्टिवालों को ढगले की समान दिखाई देते हैं वह उपाधि में रहेहुए अपने समानही नीच मनुष्यों को कुमार्ग में लेजाने का यत्न करते हैं और उसी में वह स्वाद लेतें हैं । कामलोक में इसप्रकार समय बिताने से इन अभागे जीवोंके पापकर्म बढ़तेही जातेहैं और इससे उनके आनेवाले अवतार अत्यन्त दुःखदायी होतेहैं । ऐसे पिशाच तैसेही 'शेल' और सजीवन करने में आतेहुए खेखसे कामलोक में अपने जीव के रुके रहनेके कारण उनके सम्बन्धमें आतेहुए 'मिडियम' और निर्बल स्वभाववाले मनुष्यों का वह प्राणतत्व चूस लेते हैं और इससे 'स्प्रिचुएलिस्टों' के मण्डलमें बैठनेवालों का प्रयोग पूरा होनेके पीछे थकावट सी लगीहुई जान पड़तीहै ।

(८) दूसरे का लोहू चूसकर जीनेवाले पिशाच और बवंडर के रूपमें प्रगट होतेहुए भूत—कि जो वर्तमान समय में उत्पन्न नहीं होते, परंतु तौभी अगले समय में इनका अस्तित्व होताथा और वर्तमान में भी रूशिया और हंग्री के समान स्थानों में मिलते हैं इसकारण यह इस वर्ग में लिये गये हैं । अत्यन्त पापी मनुष्य कि जिनके मरनेके पीछे समस्त निचले मनुष्य कामरूपके साथ एकही ऊपरीतत्वों से पृथक् होजाते हैं उनमें से कुछ एक विशेष कारणों से लोहू के चूसनेवाले पिशाच होते हैं। अत्यन्त पापियों मेंभी कुछेक दयावाले और अच्छे गुणवाले होते हैं इस कारण समस्त निचलामनस कामरूप के साथ कभीही एक होता है, और फिर उन थोड़ों मेंसे अल्पसंख्यही थोड़े 'वेमपायर' की समान जीसकते हैं । इसप्रकार के मनुष्यों में से जो थोड़ी बहुत वाममार्गी की जादू जानते हैं वे कामलोक में अपने जीवन के बढ़ाने के निमित्त 'वेमपायर' की समान जीने का प्रयत्न करते हैं । अपने छायाशरीर के द्वारा दूसरे निर्बल स्वभाववाले मनुष्यों की स्थूलउपाधि के साथ वे सम्बन्ध करते हैं और उन का लोहू सूक्ष्मरूप में चूसकर अपने गाड़ेहुए शवमें भरते हैं। इसप्रकार बहुतसा लोहूभर वे अपने दरिद्र जीवन के बढ़ाने का

पान करते हैं । जब गांववाले ऐसे मनुष्यों के जीवों को बारम्बार देखते हैं तब वे इसके यथार्थ कारण को ढूंढ़ ' वेमपायर' के नाश करने के निमित्त उनकी कबर को खोद उसमें से उसके शवको निकालते हैं; और वह मुर्दा वैसाही मोटा ताजा और मुहँ में लोहू से भराहुआ देखनेमें आताहै । उसके जला डालनेसे उस भूतका उसके ऊपरसे अधिकार जाता रहताहै और 'वेमपायर' के जीवक जीनेका बन्धन पड़ने से कामलोक में उसका नाश होताहै । जिस स्थानपर मुर्दा गाड़नेकी रीति नहीं होती वहांपर 'वेमपायर'का होना अत्यन्तही असम्भव है, इस कारण इन आपत्तियों के देखते हुए भी मुर्दा गाड़ने की अपेक्षा जलादेनेकी रीति अत्यन्तही उत्तमहै ।

अब बवंडर के रूप में देख पड़नेवाले भूत ' वेमपायर ' की अपेक्षा अत्यन्तही थोड़े होतेहैं, परन्तु वेभी 'वेमपायर' की समान हानि पहुँचा सकते हैं । इस प्रकार के भूतों को मुख्य पहले वर्ग के रहनेवालों की समान गिनना चाहिये क्योंकि बवंडर के रूप में प्रगट होने के समय वह मनुष्य के आकार की साधारण स्थूल उपाधि के अस्तित्व में होतेहैं । वाममार्ग की क्रियाओं से जब पापी जादूगर स्थूल उपाधि को छोड़ कामलोक में फिरने को शक्तिमान होते हैं, तब किसी समय विशेष कारण के निमित्त कामलोक में

के तुच्छ जाति के भूत उस कामरूप की उपाधि को वश में कर उस मनुष्यरूप के बदले किसी जानवर का और बहुधा बवंडरका रूपधर उसके ऊपर स्थूल भुवन के पदार्थ की उपाधिलाय अथवा उसको दृढ़रूप में लाय स्थूलभुवन के ऊपर उसको बवंडरकी समान अस्तित्वमें लाते हैं । इसप्रकार के अस्तित्व में आयेहुए बवंडर अपने चक्कर में आयेहुए प्राणियों और मनुष्यों को मारडालते हैं, जिससे उनकी नीचइच्छा पूर्णहोती है इतनाही नहीं बरन उसको अस्तित्व में लानेवाले भूतभी उसके द्वारा लोहू को चूसकर अपना पोषण करता है । इसप्रकार से उत्पन्न हुए नीच बवंडर के शरीर पर किसी भी प्रकार का घाव करने से उसमें भरे हुए जीवों की यथार्थ मानसिक उपाधि के ऊपर भी उसही स्थान पर उसही प्रकार का घाव होता है, कि जिस चमत्कारिक बनाव को अंग्रेजी में 'रीपरकशन' के नामसे पुकारते हैं । ऐसे 'वेमपायर' का कामरूप स्थूल उपाधि के मरने के पीछेभी बवंडर के आकार मेंही कामलोक में जीता है और वहांपर अपनी शक्तिभर हानि करके नाश पाता है । गांववालों के मुँहसे इसप्रकार की बातें सुन कर बहुत से मनुष्य उसको केवल हँसीही समझते हैं, परन्तु गुप्तविद्या के अभ्यासी ऐसा नहीं करते, वे सृष्टिकी रचना और

मनुष्य के बंधाव आदिको जान किसी भी बातको मिथ्या या पीछे से यथार्थ मान बैठने से पहिले अपने दृढ़ विचार से उसको भली भांति समझ लेते हैं ।

(९)—मरने के पीछे स्थूल भुवनको छोड़ आनेवाले वाममार्गी जादूगर और उनके चेले अवतार धारणकरने को तइयार रहेहुए चेलोंसे मिलते होते हैं । परन्तु इन दोनों के मार्ग एक दूसरे से विपरीत हैं; क्योंकि जब महात्माओं के चेले अपने गुरुके बड़े २ कार्मों में सहायता करने व अपने अभ्यास को आगे बढ़ने के निमित्त उनकी आज्ञा से अवतार लेने का यत्न करते हैं तब वाममार्गी प्राकृतिक नियमों से विमुखहो अत्यंतही तुच्छ और कँपकँपी उत्पन्न करनेवाली क्रियाओं की सहायता से अपना पापी जीव जैसे बने वैसे कामलोक में बढ़ाने का यत्न करते हैं । ऐसे जादूगर भी अपनी निश्चय के अनुसार व किियेहुए उपायों से काम बनाते हैं और वह जैसे काम बनाते हैं वैसेही बर्गों में बटजाते हैं, परन्तु यह बातें जितनीही तुच्छ जानी जांय उतनाही अधिक अच्छा होने से गुप्तविद्या के अभ्यासी उससे दूर रहना सीखें इन सबका जानना केवल इतनाही है कि जिन २ क्रियाओं और उपायों से वह काम बनाते हैं उन सबका अभिप्राय

दूसरे के प्राणतत्व को चूसकर अपने पोषण करने का है।

शो०—अब कामलोक में रहेहुए मुख्य दूसरे वर्ग के अर्थात् मनुष्य जाति के अतिरिक्त जीवोंका वर्णन करो।

वि०—इस विचित्र जगत् में मनुष्यही सबसे ऊंची श्रेणी का जीव है ऐसा समझना तथा दृष्टि पड़ते हुए सब पदार्थ केवल सुख केही निमित्त उत्पन्नहुए हैं और उन सबके मूल्य का आधार केवल मनुष्य के न्यून या अधिक काम में आने के ऊपर ही है यह समझना मूर्खता की बात है। प्रत्येक व्यक्ति अपने को शिक्षित और सभ्य मानता है, परन्तु दूसरे प्राणियों के साथ तुलना करने से प्रकृति की दृष्टि में उसका स्वयं कितना मूल्य है तथा उसके अस्तित्व का अभिप्राय और उसका कर्तव्य क्या २ है इसका उसको कुछ थोड़ासा भी विचार नहीं होता। मुर्गे बत्तक और बकरे भेड़ों को तो ईश्वरने खानेके निमित्तही उत्पन्न किया है, ऐसा मानना केवल मूर्ख लोगों काही काम है। जो बात अत्यन्त बड़े मनुष्यों में अत्यन्त शिक्षितों में, तैसेही अत्यन्त कोमल मनवाले और कोमल हृदयवालों में है, वैसीही बात अभागे, अत्यन्त मूर्ख, अत्यन्तहीं हिंसक, और अत्यन्तही नीच पने में भी देखने में आती है। जगत की उत्पत्ति उनके मनकी प्रसन्नता

केही निमित्त उत्पन्न हुई है ऐसा विचारकर अपवित्र मनुष्य शिकार के नाम से बिना कारण और बिना विचारे अपने मार्ग में रहनेवाले निर्दोष प्राणियों को जंगल में जाकर मारते हैं । ऐसे मनुष्य अविकता से बुरी अवस्था में रहने के कारण ऐसे हिंसक कामों को करते हैं, कि उनमें बहुतसी बुराइयें होती हैं तथापि वे उनको नहीं देख पड़तीं । परन्तु गुप्तविद्या के अभ्यासियों को अपने मित्रों की ऐसी जंगली अवस्था और दुर्बुद्धि देखकर अत्यंत दुःख उत्पन्न होता है । ' अहिंसा परमोधर्मः ' यह वाक्य उनके भलीप्रकार ध्यानमें होनेसे दूसरे प्राणियों को बिना कारणही मारने अथवा जीभ के स्वाद के निमित्त उनका गला काटने में उन गुप्तविद्या के अभ्यासियों की छाती फटजाती है और यह उनको हिंसकपना जान पड़ता है ।

सृष्टिमें अस्तित्व भोगनेवालों में उच्च और नीच श्रेणियों के असंख्य जीव हैं उनमें से मनुष्यजाति का एक बहुतही तुच्छ भाग है, अतएव जगत में रहतेहुए दूसरे प्राणियों की अपेक्षा उनका कुछ अधिक अधिकार नहीं है । सृष्टि में वह सब से ऊंची श्रेणी का जीव है ऐसा समझना उनका अज्ञानपना है । जैसे पानी में और वायु में रहेहुए अनेक प्रकार के जीव 'अनुवीक्षणयंत्र'

की सहायता से ही जान पड़ते हैं, तैसेही विश्वदृष्टि की सहायता से ऊपरी भुवनों के ऊपर मनुष्यजाति से नीचे श्रेणी के तैसेहीं अत्यंत ऊंची श्रेणी के असंख्य जीव अस्तित्व भोगतेहुए देखने में आते हैं। इनमें से कामलोक में रहेहुए जीवों के मुख्य चार भाग हुए हैं कि जिनका वर्णन हम आगे करेंगे। यह प्रत्येक भाग पहिले कहेहुए विभागों की समान अत्यंत छोटे नहीं है बरन जैसे स्थूलभुवन के ऊपर जड़पदार्थ वनस्पति, प्राणी और मनुष्य के चार बड़े वर्ग हुए हैं तैसेही बड़े यहभी चार वर्ग हैं।

(१) जड़पदार्थकी समान अस्तित्वमें आनेके पहिलेकी सूक्ष्म प्रकृति से प्रगटीकरण के मनुष्यों तक में मुख्य सातभाग किये गए हैं, उनमेंसे जड़पदार्थ मेंसे उतरतेहुए बरन सूक्ष्मप्रकृति से जो अधिक से अधिक प्रगट होकर जड़पदार्थ के रूपमें अस्तित्व में आता है उसके तीनभाग हुए हैं। इन सूक्ष्म पदार्थों को 'अलीमंटल एसंस' कहा जाता है। यह सात वर्ग के नीचेके अनुसारहैं।

(१)—'अलीमंटल असंस' नं० १

(२)———,,———,, २

(३)———,,———,, ३

(४)—जड़पदार्थ

(५)—वनस्पति

(६)—प्राणी

(७)—मनुष्य

इन में से पहिले नम्बरका 'अलीमंटल एसंस' देवखन के अ-रूपलोक का सम्बंधी है, दूसरा देवखन के रूपलोक का सम्बंधी है और तीसरा कामलोक के भुवनका सम्बंधी होनेसे केवल तीसरे के सम्बन्धसेही जानने योग्य बात कहेंगे। 'अलीमेंटल एसंस' नंबर तीसरा सूक्ष्म होतेहुए भी जड़पदार्थ से उतरताहुआ गिना जाता है, और दूसरे वर्गके एसंस, की अपेक्षा पहिले वर्ग का एसस, अत्यंत सूक्ष्म होतेहुए भी उससे उतरताहुआ गिना जाताहै; इस का कारण यह है कि प्रगटीकरण में पहिले सूक्ष्म पदार्थ ठोसरूप धारण करता है और ठोसरूप में आने के पीछे फिर वह पदार्थ अपनी सूक्ष्म अवस्था के ऊपर आता है।

शो०—उससे प्रगटीकरण के होने का कारण क्या है?

थि०—प्रगटीकरण आरम्भ होने के पहिले सूक्ष्म रूप में रहा हुआ पदार्थ बेभान अवस्थामें होताहै परन्तु प्रगटीकरणमें पृथक २ रूपोंमें से फैलाव होनेके कारण अंतमें वह स्वभाव सहित अपनी यथार्थ सूक्ष्म अवस्था में आताहै। ऐसा होनेसे 'अलीमंटल एसंस'

नम्बर पहिले की अपेक्षा दूसरा और दूसरेकी अपेक्षा तीसरा चढ़ता हुआ गिना जाता है और तीसरे वर्ग के एसंस की अपेक्षा नव पदार्थ प्रगटीकरण में चढ़ताहुआ गिना जाता है। इन तीनों वर्गों के 'अर्लीमेंटल एसंस' में एक समानही अवस्था में रहेहुए पदार्थ नहीं हैं, बरन वह दोहज़ार से अधिक अवस्थाओं में बँटगये हैं इसही कारण कामलोक भुवन से सम्बन्धवाले समस्त शक्तियों के मिलने की इच्छा रखनेवाले अभ्यासियों को अभ्यास करने के साथ ही उन सबको पहिचानकर प्रत्येक को पृथक रीति से कैसे उपयोग में लायाजाय, यह सीखने की आवश्यकता पड़ती है। इन में से एक दो अवस्था के पदार्थों पर अधिकार मिलने से सब प्रकार के चमत्कारिक प्रयोग किये जासकतेहैं। परन्तु बिना गुरूके यह इनका जानना और काम में लाना सीखने में बड़ी कठिनाई पड़ती है, और किसी महात्मा गुरु की सहायता से यह सीखने में अत्यन्त सरलता पड़ती है,और परिश्रम भी अत्यंत थोड़ा करना पड़ताहै।

बड़े समुद्ररूप में रहेहुए इन सूक्ष्म पदार्थों के ऊपर मनुष्य जातिके विचार से तत्कालही प्रभाव होता है; यहांतक कि विचार चाहे जितना तुच्छ अथवा भला या बुराहो, चाहे जान पड़ता हुआ अथवा अनजानताहो परन्तु तौभी मनमें से विचार निकलने

के साथही यह सूक्ष्म पदार्थ आकार धारण करते हैं और बिचार से उत्पन्न होते हुए प्रभावों के पृथक होजाने से वे पदार्थ पीछे बिखरजाते हैं । इसप्रकार धारण किये जातेहुए आकारों को 'अलीमेंटल' कहते हैं कि जिसका अधिक स्पष्टीकरण हम पीछे करेंगे । ऐसे 'अलीमेंटल' अनेक प्रकार के होते हैं, उनके सम्बन्धकी बात अभ्यासियों के अतिरिक्त और दूसरा कोई नहीं जानसकता। जैसे उबलते हुए पानी में बुलबुले उत्पन्न होते और फिर उसी में लीन होजाते हैं तैसेही सदैव 'अलीमंडलएसंस' में मनुष्यों के बिचारों से आकार उत्पन्न होकर फिर बिखरजाते हैं । ये आकार बहुधा किसी जीतेहुए जानवर या मनुष्यों की समान होते हैं । उनके भले बुरे होनेका आधार केवल भले बुरे बिचारों परही निर्भर है । बहुधा मनुष्यों के बिचार स्वार्थ से भरेहुए और तुच्छ होते हैं इस कारण 'अलीमेंटल' भी तुच्छ प्रकृति होते हैं । जब कामलोक में कोई अभ्यासी प्रवेश करता है तब समूह के समूह 'अलीमेंटल' उसके सामने आते हैं परन्तु जिससमय साहस से वह आगे बढ़ताहै तब वे सब बिखरजातेहैं । मनुष्य के साथ उनका ऐसा उलटा सम्बन्ध होने के कारण वह स्वयंही मनुष्य हैं । सत्ययुग की समान युगों में जब प्रत्येक मनुष्य में दयाधर्म या तत्व

'अलीमंटल' और मनुष्य के बीच मित्रता थी, ऐसा कहाजाता है ।

'अलीमंटल एसंस' के सम्बन्ध में एकबात यह ध्यान में रखनी चाहिये कि उसके प्रगटीकरण का आधार अपने विचारों के ऊपर रहनेके कारण भले या बुरे विचारोंसे उसके ऊपर जो प्रभाव होता है उसकी हानि अपनेही शिरपर होती है । बुरे विचारों के निमित्त प्रत्येकही धर्म में निषेध कियागया है परंतु तौभी साधारण मनुष्य उसपर कुछभी ध्यान नहीं देते । अपने कर्मों और अपनी वार्ता से दूसरे का हानि न होते देखकर बहुतसे मनुष्य अपने को पवित्र समझकर प्रसन्न होते हैं, परंतु उनके तुच्छ विचारों से उनके सम्बन्ध में आनेवालों के मनपर वह कितना नीच प्रभाव कर जाते हैं उनकी उनको कुछभी सुध नहीं है ।

तत्रविद्या से होतेहुए समस्त चमत्कारिक प्रयोग, जादूगर अपनी इच्छाशक्ति के बलसे या किसी दूसरे भूतकी सहायता से इस 'अलीमंटल एसंस' के द्वारा कर सकते हैं ।

(२) प्राणियों के कामरूप खोखल कामलोक में समूह के समूह देखने में आते हैं । स्थूलउपाधि के मरनेपर प्राणियों का कामरूप स्थूलउपाधि का आकार पकड़ मनुष्यकी समान ही कामलोक में जाताहै और वहां अत्यन्तही प्रसन्नता में रहकर

थोड़ेही समयमें बिखर जाताहै । उनका कामरूप कितने समय तक कामलोकमें रहसकता है उसका आधार पृथक २ प्राणियों में जितना अधिक या न्यून भानहो उसके ऊपर निर्भर है । जिस प्राणी का भान अधिक विकाशित होताहै उसका कामरूप कामलोक में बहुत समयतक रहता है । मनुष्य के समागम में आनेसे जिन प्राणियों में साधारण स्वभान विकशित होताहै, वे कामलोक में दूसरे जंगली जानवरों की अपेक्षा बहुत समय तक रह सकते हैं और फिर वह जानवरों की समान जन्म भी नहीं पाते । ऐसे वर्ग में 'एन्थ्रोपोइड्एप' नामके बंदरभी आ जाते हैं और वह सब बहुत समयतक अर्द्ध वेभान बरन सुखकी अवस्था में पड़े रहकर विशेष समय के पीछे मनुष्य की उपाधि में जन्म लेते हैं जबकामरूप में स्वभान प्रगट होताहै तभी वह जीव मनुष्यों के वर्ग में प्रवेश करताहै तदनन्तर अवतार लेता है इसके पहिले प्रत्येक प्राणियों का पृथक २ जीव नहीं होता बरन मरने के पीछे उनके जीव एक समूह के रूप में एकत्रित होजाते हैं ।

(२)—कामलोक में रहनेवाले जिन्न परी आदि भूत अनेक प्रकार के हैं इस कारण उन सबका भलीभांति से पूरा २ वर्णन नहीं होसकता । प्रगटीकरण में उनका मार्ग अपने से वि-

एकुल्ही पृथक है; यहांतक कि जैसे 'अलीमेंटल एसंस' आदि ऊपरके रहेहुए वर्ग धीरे २ आगे बढ़कर मनुष्य की उपाधि के समान अस्तित्व में आते हैं और जैसे वर्त्तमान अस्तित्व भोगतेहुए मनुष्यों के शरीर के पदार्थ इन निचले वर्गों में फैलकर वर्तमान स्थिति के ऊपर आते हैं, वैसी अवस्था उनकी नहीं होती। यह सब जीव किसी भी समय मनुष्य की समान अस्तित्व में नहीं आते तैसेही इस अवस्था में वह किस प्रकार आये और आगे बढ़कर वह कैसी अवस्था में जायगे, इस सम्बन्ध में अबतक कुछ भी नहीं जानागया। उनके साथ का अपना सम्बन्ध केवल अड़ोसियों पड़ोसियों की समान है।

ठोस पदार्थों में, पानीमें, वायु और आग में जैसे 'अलीमेंटल एसंस' रहता है तैसेही जीव भी रहते हैं इसकारण वे भी सातवर्गों में बांटेगये हैं।

शो०—कंकड़ अथवा पहाड़की समान ठोस पदार्थों में जीव किस प्रकार से रहसकते हैं?

थि०—उनकी उपाधि सूक्ष्म पदार्थों की होती है इस कारण स्थूल पदार्थों का उनको अटकाव नहीं होता। और जैसे पक्षी वायुमें व मछलियें जल में रहसकती हैं तैसेही वह ठोस पदार्थ

जल या अग्नि में रहसकते हैं । इन सबको परियें, जिन्न राक्षस आदि कहते हैं । उन प्रत्येक का विशेषरूप होताहै और वह बहुधा मनुष्योंसेही मिलताहुआ होताहै, ऐसा होनेपर भी उनकी उपाधि सूक्ष्म पदार्थ की होनेके कारण वह चाहे जिस समय चाहे जिस रूप को धारण कर सकते हैं । जिनको दिव्यदृष्टि नहीं प्राप्तहुई उनको वह परी, भूत आदि नहीं देख पड़ते, परंतु जो वह चाहें तो स्थूल परमाणुओं को अपने ऊपर आकर्षण कर स्थूलभुवनके ऊपर दिखाई देने के शक्तिमान होते हैं । मनुष्यों की समान उन में भी पृथक २ वर्ग तैसेही पृथक में अधिक या न्यूनबुद्धि और पृथक २ जाति के स्वभाव देखने में आते हैं । वह मनुष्यों से दूर रहने को सदैवही अच्छा समझते हैं क्योंकि उनके तुच्छ विचारों और इच्छाओं से सूक्ष्म पदार्थ के ऊपर जो प्रभाव होता है उस से उनको अत्यन्तही दुःख होताहै । ऐसा होनेपर भी मनुष्य के साथ अनेक समय वह मित्रता रखकर अपने उपाय भर उसकी सहायता करते हैं ।

परियें अनेक प्रकार के उपायों से मनुष्य को ठगकर स्वाद लेती हैं उनमें इन्द्रियों के भुलाने की सामर्थ्य अधिक बलवान होती है, इस कारण बहुतसे मनुष्यों पर एकही समय में वह इतना

अधिकार कर सकती हैं कि उनके चक्कर में आये हुए समस्त मनुष्य 'मेसमेराइज' होजाने की समान उन परियों की इच्छानुसार ही देख सुन सकते हैं। उनमें मनुष्य के मन को अपने वश में लाने की शक्ति नहीं होती, वरन इन्द्रियों को भुलावे में डालदेने की शक्ति यथेष्ट होती है। अपने देश के मदारी (बाजीगर) कितनेही एक चमत्कारिक प्रयोग वैसेही साधना से करते हैं, इस कारण उन प्रयोगों में जो दिखाई देता है उसमें यथार्थपन कुछभी नहीं होता वरन केवल साधन करनेवाले मदारी के इच्छानुसारही सब प्रकार के पदार्थ वर्तमान जान पड़ते हैं। परियों मेंभी ऐसीही शक्ति है इसकारण उनको मनुष्यों से चढ़ती हुई श्रेणी का जीव नहीं कहा जा सकता है। वरन इससे विपरीत मनुष्यों की अपेक्षा उनको नीची श्रेणी का जीव कहा जासकताहै। कारण कि उनमें के सबसे ऊंचे वर्गके जीवों मेंभी अवतार धारण करने योग्य स्वभाव देखने में नहीं आता। इनमें से कितने एक जीव मनुष्यों की अपेक्षा अत्यन्तही थोड़े जीवन को भोगते हैं और कितनेएक बहुत समयतक जीसकते हैं; वरन उन सबका जीव अत्यन्त खिलाड़ी छोटे बच्चे की समान शोक और दुःखरहितसा जानाजाता है। मतवाला करके या अनेक प्रकार के उपायों से मनुष्यों के

ठगने में वह स्वाद लेती हैं परन्तु उनमें किसी प्रकार का भी द्वेष देखनेमें नहीं आता । जब अभ्यासी कामलोकमें नया२ प्रवेश करता है तब वह अनेक प्रकार के भयंकररूप धर कर उसके डराने का प्रयत्न करती हैं परन्तु उसमें निष्फल होनेपर उसकी रोकको छोड़ अपने मार्ग में रहती हैं ।

इसके उपरान्त जो गांव या जंगलके देव या देवी नामसे पुकारे जाते हैं वहभी इन परियों आदिके ऊंची अवस्थावाले 'अलीमेंटल' हैं । उनके ऊपर गांववाले मनुष्य भक्तिभाव रखते हैं । इसकारण वह सदा प्रसन्न रहते हैं और बहुधा अपने उपाय भर उन मनुष्यों की सहायता भी करते हैं । महात्मा इन सबको अपने अधिकार में रखकर वह काम करासकते हैं कि जो दूसरे तुच्छ जादूगरों से नहीं होता । उनमें से कितने एक तो इन भूतों की आराधना कर उनकी सहायता चाहते हैं और कितने एक विशेष क्रियाओं से कामलोक में ऐसा प्रभाव उत्पन्न करते हैं कि जिससे इन भूतों के साधन करनेवालों को अधिकार में होने की आवश्यकता पड़ती है । यदि यह दोनों प्रकार की रीतें गुप्तविद्या की दृष्टि से देखी जांय तो अत्यन्तही कुढंगी हैं तैसेही दोनों की अंतिम अवस्था तो अत्यन्तही हानि से भरीहुई है, क्योंकि जब भूत बलात्कार से वशमें किये

जाते हैं तो साधन करनेवाले और उनके मध्य में सदैवही बैर बना रहताहै । राजयोग के अभ्यासियोंको यह कठिनाएं नहीं होतीं ।

(४) देवता अथवा फरिश्ते–प्रगटीकरण में मनुष्य से ऊंचे श्रेणी के जीव हैं । जैसे जानवरों से चढ़ता हुआ मनुष्यों का वर्ग है वैसेही मनुष्यों से चढ़ताहुआ देवता अथवा फरिश्तों का वर्ग है, परंतु अन्तर इतनाही है कि जैसे जानवरों को आगे बढ़ते २ मनुष्यों के वर्ग में आने के अतिरिक्त छुटकारा नहीं है वैसेही प्रत्येक मनुष्य को आगे बढ़नेके पीछे फरिश्तों की समान अस्तित्व में आने की आवश्यकता नहीं पड़ती । अमुक श्रेणी तक चढ़ने के पीछे मनुष्य की दृष्टि के आगे बहुतसा मार्ग खुलपड़ता है तब उसको फरिश्ता या देवहुआ कहते हैं ऐसेही दूसरे निर्माणकाया महात्मा भी होते हैं । इन दोनों की तुलना करने पर 'थियासोफिस्टों' की दृष्टि में फरिश्ता होने का मार्ग कुछेक उतरता हुआ जानपड़ता है क्योंकि अपने सुख की अपेक्षा दूसरों के सुखकी ओर देखनेकी उनकी टेव पड़ीहुई होतीहै; परन्तु प्रत्येक मनुष्यों में निर्माणकाया महात्मा होने की चाल नहीं होती इसकारण उनके निमित्त तो फरिश्ता होने काही मार्ग उत्तम है

देव अथवा फरिश्ताशब्द साधारण रीतिसे बिना समझे परियें

आदि 'अहीमंटलौं' से उस अंतिम जगत के आस्तित्व में लानेवाले ध्यान चौहान अथवा अमशासंपद के भी संबंध में आता है, परंतु यथार्थ में देखाजाय तो उनका केवल बीच वाले वर्ग के फरिश्तों सेही सम्बन्ध रहताहै । मनुष्य जाति जैसे वर्तमान में केवल पृथ्वी परही अवतार ले २ कर आगे को बढती है वैसे इन देवों का प्रगटीकरण नहीं है; वह सातों गृहों के ऊपर बारम्बार चक्कर में फिरते हैं । इन फरिश्तों मेंके कितने एक वर्ग के फरिश्ते ऐसी अवस्था में पहुंचने के पहिले किसीभी गृहके ऊपर से नहीं आते कि जैसे हम मनुष्य जाति मेंसे नहीं आते । उनके प्रगटीकरण का कहां से आरम्भहुआ है और अंत में वह किस श्रेणी पर पहुंचने के योग्य हैं यह बात तत्कालही हमारे जानने में नहीं आसकती यह सब फरिश्ते भी अनेकों वर्गों में बंटगए हैं कि जिनमें के निचले तीन वर्गों के फरिश्तोंकाही कामलोक के साथ सम्बन्ध है इसही कारण उसके संबंध में जो जाननेयोग्य होगा वह कहेंगे । यह तीनोंवर्ग नीचे के अनुसार हैं ।

(१)—कामदेव (२)—रूपदेव और (३)—अरूपदेव हैं

(१) कामदेव साधारण रीति से कामलोक काही रहवासी है और जैसे हम सबसे निचली उपाधि स्थूलभुवन के सम्बन्धी हैं,

तैसेंही उनकी सबसे निचली उपाधि कामरूप की है तथा जैसे हम स्थूलउपाधि को छोड़कर कामलोक में जाते हैं उसही प्रकार वेभी अपनी निचली उपाधि को छोड़कर मायावीरूप की उपाधि देवखन में प्रवेश करते हैं और मायावीरूप में से बाहर निकलना जितना हमको कठिन है उतनाही कारण शरीर में से बाहर निकलना यह उनके निमित्त है।

(२) रूपदेव की साधारण निचली उपाधि मायावी रूपकी है, जिससे उसकी प्राकृतिक रहन देवखन के निचले चार विभागों में अथवा उस रूपलोक में है। जिस प्रकार मनुष्य कामरूप की उपाधि से कामलोक में जासकता है वैसेही वह कारण शरीर में से देवखन के अरूपलोक में जासकता है।

(३) अरूपदेव की साधारण उपाधि अपने कारणशरीर से सम्बन्ध रखनेवाली है। इसकारण उसका प्राकृतिक रहन देवखन के ऊपरी तीन विभागों में अथवा अरूपलोक में है।

इन तीनों वर्गोंके फरिश्तों में रूपदेव और अरूपदेव कामलोक में कभी ही दिखाई देते हैं इसकारण उनके सम्बन्ध में कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। कामदेव के सम्बन्ध में इतनाही जानने की आवश्यकता है कि मनुष्य के साथ तुलना

करने से उनका वर्ग अत्यंतही चढ़ती श्रेणी का है और उनमें किसी प्रकार के भी पापी नहीं देखने में आते, परंतु तौभी ऐसा समझना कि प्रत्येक मनुष्य उनकी अपेक्षा उतरती श्रेणी का है, भूल से भराहुआ है। यथार्थ में पवित्र पुरुष कि जिनका ध्यान जगतकीभलाईके ऊपर और आत्मविद्याके अभ्यासके ऊपर लगा हुआहै उन धर्ममार्गमें चलनेवाले मनुष्यों को कामदेवकी अपेक्षा चढतीहुई श्रेणीका जीव गिन सकतेहैं। 'अडीसंटलों' की समान कामदेव को अधिकारमें रखने की शक्ति महात्माओं में होतीहै।

बहुधा इन फरिश्तोंको स्थूलभुवनका मान नहीं रहता, बरन किसी समय किसी मनुष्यको अत्यन्त दुःखमें देख उन को दया आजाती है तब जैसे हम किसी जानवरको दुःख में देखकर अपनी शक्तिभर उसकी सहायता करतेहैं तैसेही वह भी करसकते हैं। ऐसा होनेपरभी मनुष्य अपने कर्मों के कारण दुःख भोगता है इसकारण ऐसी स्थितिमें कर्मोंका नियम तोड़ बीचमें पड़ने से उनको लाभ के बदले हानि पहुँचना संभव है इसकारण वह यह जानकर बहुधा बीचमें नहीं पडते।

कामदेव, रूपदेव और अरूपदेवसे चढ़तेहुए दूसरे और भी

चार बड़े वर्गोंके फरिश्ते हैं और उन सबसेभी उच्चश्रेणी के देव वह 'ध्यान चौहान' अथवा अमशास्पद हैं।

इसके अतिरिक्त चारमहाराजाओंके नामसे जानेजातेहुए चार बड़े देव अथवा फरिश्तेहैं जो समस्त जगतके कर्मोंका बनावकरते हैं इस सम्बन्धमें यहां दो बोल कहने की आवश्यकता है। चारों दिशाओं के और पृथ्वी, पानी, अग्नि तथा वायुके अधिपति यह चारमहाराजा हैं। इन चारोंको धृतराष्ट्र, वीरुधक, वीरुपक्ष और वैस्रवन कहते हैं, तैसेही इनके नीचे रहते हुए देवोंको गन्धर्व, कुम्भन्ध, नाग और यक्ष कहते हैं। यह चारों महाराजा ऊपरोक्त क्रमके अनुसार पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तरके अधिपति हैं और उनही क्रमके अनुसार उनका वर्ण भी सफेद, नीला, लाल और सुनहरे रंगका है। लीपिका नामके सात फरिश्ते जो समस्त जगत के कर्मों का हिसाब रखते हैं वह प्रत्येक मनुष्यको प्रत्येक अवतार में कि जिसप्रकार का छायाशरीर देना चाहिये उसही, प्रकार का उसके कर्मोंके अनुसार बनाते हैं, और उस छायाशरीर के बंधान में आतेहुए चार 'ईथरों' के ऊपर महाराजाओंके मव-क्किल होनेसे वह उनका न्यूनाधिक परिमाण बनाते हैं कि जिसे लीपिका देखकर वैसाही रूप रंग और गुण अवगुण वाला छाया

शरीर प्रस्तुत करसकते हैं । संसार में किसी भी जीवपर अन्याय न होवे और प्रत्येकको उसके कर्मानुसार फल मिलजाय, सदैव ऐसा विचार रखकर यह बडे २ काम और उनकीहानि इन महाराजाओंकेही मत्थेहै । वह अत्यंत ऊंची श्रेणीके देव और फरिश्ते होकर भी किसी समय कामलोक में भी जाते हैं ।

शो०—अब मनुष्यजाति के विचारों से जो 'अलीमएटल' उत्पन्न होता है उसके संबंध में जो जानने योग्यहो वह कहिये ।

थि०—मनुष्य जाति के विचार असंख्य प्रकार होनेके कारण 'अलीमेंटल' भी असंख्य प्रकार के होते हैं, और इससे उन के पृथक २ भाग नहीं किये जासकते । समझनेके निमित्त उनको दो भागों में बांटागयाहै, कि जिनमेंके पहिले भागमें साधारण मनुष्यों से अनजानपने में उत्पन्न करने में आते हुए 'अलीमंटलों' का समावेश कियाजाता है, और दूसरे में महात्माओं तथा वाममार्गी जादूगरों से उत्पन्न किये 'अलीमंटलों' का समावेश होता है ।

[१] मनुष्यों के विचार से अनजानपने से उत्पन्न होतेहुए 'अलीमंटल' 'अलीमटल असेंस' का सूक्ष्म पदार्थ कि नो अपने आस पास चारोंओर वर्तमान है उसके ऊपर मनुष्य के विचारों से तत्कालही प्रभाव होता है । अत्यंत तुच्छ विचार कि

जिनका भान विचारनेवाले मनुष्य को भी नहीं रहता उनके भी मास्तिष्क में से निकलने के साथही 'अलीमंटल एसंस' के पदार्थों में नानाप्रकार के आकार उत्पन्न होते हैं जब किसी प्रकार के विचार कियेजाते हैं तब उनके बाहर निकलते ही उनसे उत्पन्न होती हुई लहरों से 'अलीमंटल एसंस' में भी उसही प्रकार की लहरें उत्पन्न होकर विशेष प्रकार का आकार अस्तित्त्व में आता है। ऐसे आकारों को मानसिक आकार कहा जाता है, और वे आकार विचारों को उपाधि की समान घेरकर कामलोक में देखे जाते हुए भूतों की समान प्रगट होते हैं। एकसमय ऐसे 'अलीमंटल' स्थिर होकर फिर पीछे विचार करनेवाले मनुष्य के वशमें नहीं रहते वरन जितने बलसे विचार कियेजातेहैं उसही के अनुसार वह अधिक या न्यून समय तक कामलोकमें अस्तित्त्व भोग कर नाशपाते हैं। इसही कारण समस्त दिनमें होतेहुए मनुष्य के बहुत से तुच्छ विचार जो अति दृढ़ इच्छासे नहीं होते उनसे जो 'अलीमंटल' उत्पन्न होते हैं वह थोडेही मिनटों में या घंटोंमें नाश पातेहैं। परन्तु जब अत्यंत बल पूर्वक और अत्यंत आतुरता से विचार किये जाते हैं तब उससे उत्पन्न होतेहुए 'अलीमंटल, बहुत दिनों तक अस्तित्त्व में रहते हैं। फिर साधारण मनुष्योंके

विचार बहुधा अपनेही सम्बन्ध के होते हैं इसकारण उनसे उत्पन्न होतेहुए 'अलीमिएटल' विचार करनेवाले के आस पासही घूमा करते हैं और प्रत्येक 'अलीमंटल' जैसे विचारों से उत्पन्न हुआ हो उन्हीं विचारों के बारम्बार करवाने का वह प्रयत्न करते हैं । इसका कारण यह है कि एकही प्रकार के विचार बारम्बार कियेजाने से पृथक् २ 'अलीमंटल' नहीं बनते बरन उस एकही 'अलीमंटल' को नवीन बल मिलजाताहै इसही से वह 'अलीमंटल' अधिक समय तक स्थिर रहता है । ऐसा होने के कारण प्रत्येक 'अलीमंटल अपने अधिक समयतक स्थिर रहने के निमित्त उस विचार करनेवाले से बारम्बार उन्हीं विचारों को करवाता है यदि एकही विचार बहुतसमय तक कियाजावे तो 'अलीमंटल' को इतना बल मिलजाता है कि वह वर्षों पर्यंत जी सकता है और अन्तमें विचार करनेवाला मनुष्य उस 'अलीमंटल' के वश में होजाता है । ऐसा होनेसे वह एकही प्रकारके विचार अथवा इच्छा विना उसकी इच्छाके भी हुआही करतीहैं। यह तो अपने निमित्त किये जातेहुए विचारों का परिणाम है परन्तु दूसरे के निमित्त किये हुए विचारों से इसकी अपेक्षा अधिक हानि से भराहुआ परिणाम दिखाई देता है इससे उसका भी जानना अधिक आवश्यकीय है ।

दूसरों के निमित्त कियेजातेहुए विचार करनेवाले मनुष्यके आस पासही नहीं घूमाकरतें वरन जिसके निमित्त विचार किये जाते हैं वे उसकीहीं ओर खिंचजाते हैं । अच्छे विचारों से उत्पन्नहुए 'अलीमंटल' फरिश्तों की समान होते हैं इस कारण दूसरों के भले के निमित्त जो विचार किये जाते हैं वह उसकी ओर कि जिस के निमित्त विचार कियाजाता है बलपूर्वक खिंचते हैं और उससे उत्पन्नहुए 'अलीमंटल' अपनी शक्ति के अनुसार फरिश्तों की समान उसकी रक्षाकरते हैं। इसही प्रकार 'कोईरोगी मित्र आरोग्य हो' ऐसी अत्यन्तही आतुरतासे इच्छाहो तो उससे उत्पन्न होतेहुए 'अलीमंटल' अत्यन्तही बलपूर्वक रोगी के ऊपर घूमकर अपनी शक्तिके अनुसार उसपर अपना प्रभाव करते हैं और जहां तक होसकता है वहांतक उसके दुःखों के अधिक होने के कारणों का नाश करते हैं ।

अमुक 'अलीमंटल' कितने समयतक जीसकता है और वह कितने बलसे अपने ऊपर प्रभाव करसकता है इसका आधार केवल उत्पन्न होतेहुए विचार जितने बल और आतुरता से किये जाते हैं उसकेही ऊपर निर्भर है। ऊपर कहे अनुसार जैसे अच्छे विचारों से अच्छा प्रभाव होता है उसही प्रकार तुच्छ और नीच

विचारों से नीच प्रभाव करनेवाले 'अलीमंटल' उत्पन्न होते हैं। इस बात से यह समझमें आवेगा कि संसार में मुख्य करके स्वार्थ पना, ईर्षा, काम, क्रोध, लोभ इत्यादि होने से कामलोक में फिरनेवाले अभ्यासियों को इसप्रकारके 'अलीमंटलों' में भयंकर रूप के और बुरे प्रभावों के करनेवाले 'अलीमंटल' समूह के समूह मिलते हैं। जो अभागे मनुष्य रात दिन क्रोध, धिक्कार, काम और लोभसे भरेहुए विचारों को बेधड़क अपने मनमें आनेदेता है और उनके रोकने का कुछभी यत्न नहीं करता वह अपनी अल्प बुद्धि के कारण अपने आस पास समूह के समूह पापी 'अलीमंटलों' की सेना इकट्ठा करता है, और जहां २ वह जाता है वहां २ गुप्त रीति से अपने साथ अपने उत्पन्न कियेहुए भयंकर साथियों की सेना लिये फिरता है यह समस्त 'अलीमंटल' उसके ऊपर निरन्तर अपना प्रभाव कियाही करते हैं इससे उस मनुष्य का तुच्छ स्वभाव हो जानेके कारण वह बिना बातकेही क्रोध और ईर्षा से परिपूर्ण रहताहै। इसके अतिरिक्त उसके 'ओरा' मेंभी तुच्छ 'अलीमंटलों' के रहने के कारण उसके सम्बन्ध में आनेवाले निर्दोष मनुष्यों के मनके ऊपरभी अत्यन्त तुच्छ प्रभाव होताहै।

दूसरे के निमित्त कियेजाते हुए बुरे विचार, जिसके निमित्त

विचार कियेजाते हैं उसके ऊपर घूमाकरते हैं और कुछभी अवसर मिलने पर उसको हरप्रकार से हानि पहुँचाने में नहीं चूकते । और फिर बारम्बार ऐसे विचारों के करने से उन पापी 'अलीमंटलों' को अधिक बल मिलजाता है इस कारण वह वर्षोंतक जीवित रहकर अपने तुच्छ और नीच प्रभावों के करने में नहीं चूकते । बुरे बिचारों से उत्पन्न हुए 'अलीमंटल' चाहे जैसे बलवानहों परन्तु उनसे पवित्र मनुष्य के ऊपर प्रभाव नहीं होसकता; क्योंकि जिस मनुष्यमें क्रोध या किसी दूसरे नीच स्वभाव का आवेश है ही नहीं उस मनुष्य की 'ओरा' के साथ क्रोध से या किसी दूसरी नीच इच्छाओं से उत्पन्नहुए 'अलीमंटल' का किसी प्रकार सेभी सम्बन्ध नहीं होसकता और जब ऐसा होताहै तब वे 'अलीमंटल' उलटे बल पूर्वक अपने उत्पन्न करनेवाले के ऊपरही पीछे फिरकर उसकीही हानि करते हैं। यह तो बहुधा देखाही जाताहै कि बहुत से जादूगर कि जो पवित्र मनुष्यों को हानि पहुँचाने का प्रयोग करते हैं वह स्वयंही अपनी जादू के प्रभाव से हानिपाते हैं क्योंकि उन का जादू उन पवित्र मनुष्यों पर प्रभाव नहीं करसकता, इसही बात से उपरोक्त बात का भी स्पष्टीकरण होसकता है । वाममार्ग से उत्पन्न किये जातेहुए म-

यंकर 'अलीमंटलों' को जब अत्यन्तही पवित्र पुरुष के हानि पहुँचाने की इच्छा से उनकी ओर भेजाजाता है तब जिस प्रकृति के वे अलीमंटल' होते हैं वे तुच्छ प्रकृति उस पवित्र मनुष्य की 'ओरा' में न होने से उस पवित्र पुरुष के साथ उन 'अलीमंटलों' का सम्बन्ध नहीं बंधसकता इसकारण वे वहां से पीछे फिरकर उस बनानेवाले जादूगरको, कि जिस के 'ओरा' में ऐसी तुच्छ प्रकृति होती है सम्बन्ध में आकर, उसकाही नाश करते हैं। किसी समय ऐसा भी होता है कि इस प्रकार से उत्पन्न कियेहुए 'अलीमंटल' जब किसी विशेष कारण से अपने उत्पन्न करनेवाले और जिसके निमित्त उत्पन्न किये गये हों इन दोनों के सम्बन्ध में न आसकें तब उसही अवस्था में कामलोक के भ्रमते हुए पिशाच बन किसी पापी मनुष्यपर आक्रमणकर अपने समस्त बलसे उसका नाश करते हैं। इसके अतिरिक्त यदि यह घूमते हुए 'अलीमंटल' अत्यन्त बलवानहों तो वह किसी घूमतेहुए 'शल' अथवा खोखको पहिर किसी मिडियम के द्वारा किसी जानेहुए मित्र या संगी के रूपमें 'स्प्रिचुएलिस्टों' के मंडल आदि में दिखाई देकर उसका प्राणतत्त्व चूस अपने जीवनको बढ़ाने का यत्न करते हैं।

इस बातकी अत्यन्त आवश्यकता होने से उसके ऊपर गंभीरता

से दृढ़ विचार करने की आवश्यकता है, और तैसेही यह किस प्रकार से प्रत्येक मनुष्य के ध्यान में आवे इस बातपर भी विचार रखने की अति आवश्यकता है । बहुत से ऐसे भोले मनुष्य अपने को देखने में आते हैं कि जो इस बातपर ध्यान रखते हैं कि अपने चाल चलन से दूसरेको किसीप्रकार का दुःख न पहुँचे,—परन्तु 'अपने विचार चाहे जैसेहों उनमें किसी प्रकार की भी खोटाई नहीं' ऐसा समझकर मनमें बारम्बार चले आते हुए बुरे विचारों के रोकने का कुछभी यत्न नहीं करते । ऐसे मनुष्यों को इस बात के भयंकर होनेपर भी यथार्थ स्पष्टीकरण मिलने के पीछे सावधान होने की अत्यन्त आवश्यकता है । समस्त दुःखों के कारण पापी विचार और सुखों के कारण पवित्र विचार हैं ऐसा निश्चयही जानना चाहिये । इस जगत में उत्तम विचारों के अतिरिक्त कुछ अमृत नहीं है—तैसेही पापी विचारों के अतिरिक्त कुछ विषभी नहीं है । रुपया, पैसा और वस्त्र इत्यादिक दान करने की जिनमें शक्ति नहीं है ऐसे दरिद्र मनुष्य भी अपने भले विचारों से सृष्टिका भला करसकते हैं । माँ अपने दयालु विचारों से अपने बालक के निमित्त फरिश्तों की समान 'अलीमंटल' उत्पन्न करती है कि जो बच्चों की रक्षा करने के निमित्त अत्यन्त उपयोगी होते हैं उन 'अली-

मंटलों ' का बच्चों के आस पास घूमना विश्वदृष्टिवालों को दिखाई देताहै; तैसेही माता के मरने के उपरान्त भी देवखनमें वह अपने निकट अपने प्यारे बच्चों को देखती है इसही कारण उनके निमित्त जो वह दयालु विचार करती है उससे भी मर्त्यलोक में रहे हुए बच्चों को उतनाही लाभ होता है। फिर बहुत समय तक अमुक वस्तुके मिलने की इच्छा रख उसकी प्रार्थना करनेवाले अपने काम में सिद्धपाते हैं इसका कारण भी यही है कि अत्यंत बल और अत्यंत आतुरता से किये जाते हुए विचारों से अत्यंत बलवान ' अलीमेंटल ' उत्पन्न होते हैं और वह अवसर पर अपने स्वामीके काम में अपनी शक्तिभर सहायता करते हैं । ऐसे ' अलीमेंटल ' बहुधा बहुत समय तक अपनी चाल के अनुसार काम कियेजाते हैं, यह विचित्र बनाव नीचे लिखीहुई बात से भली प्रकार समझ में आजायगा ।

' थिआसोफीकल सोसायटी ' के लंडन लोडजके एक ' थिआसोफिस्ट ' के कुटुंबमें बहुत शताब्दियों से यह बात होतीं थी कि जब उसके कुटुंब में कोईभी मरनेवाला होताथा तो उसके थोड़े दिन पहिले से वायु में विशेष प्रकारका गाना बजाना होताहो ऐसा शब्द उस कुटुंबके किसी एक मनुष्यको सुनाई पड़ता था और

उस शब्द सुननेके पीछे उस कुटुंबमें बिना किसीका मरणहुए नहीं रहताथा । इस शब्दको इस 'थिआसोफिस्ट' ने भी स्वयं दोबार सुना तब वह इस शब्द के होने का यथार्थ कारण और अपने बाप दादोंसेही यह सम्बन्ध चला आता है ऐसा होनेका कारण क्या है इसके जाननेका गुप्तविद्या के आधार से यत्न करनेलगा बड़ी खोज खाज से ज्ञातहुआ कि बहुत शताब्दियों पहिले किसी समय उसके कुटुंबका कोई मनुष्य अपने सबसे छोटे और प्यारे बच्चे को लेकर 'क्रुजेड' के युद्ध में गया । वह बच्चा उसको अत्यन्तही प्यारा था परंतु वह युद्ध में मारागया इसकारण उस के बाप को इतना दुःखहुआ कि जिसकी सीमा नहीं । वह अपने दुःख को न भूलसका, इस से संसार को छोड़ साधुओं के एक मन्दिर में जारहा ।

(२) महात्माओं तैसेही वाममार्गी जादूगरों से उत्पन्नहुए 'अलीमंटल' पहिले वर्ग के अलीमंटलों' की अपेक्षा अत्यन्त बलवान होते हैं । साधारण मनुष्य कि जिनको अपने विचारों से क्या २ परिणाम उत्पन्न होते हैं इसका बिलकुलभान भी नहीं होता, उनके विचारों से जब ऊपर कहे अनुसार बड़े २ भारी परिणाम होते हैं तो फिर महात्मा और वाममार्गी जादूगरों से कि

जो अत्यन्त बलवान इच्छाशक्ति से अति बलपूर्वक 'अलीमंटल' उत्पन्न करते हैं; उत्पन्न किये जाते हुए 'अलीमंटलों' द्वारा कितने अधिक या न्यून भले या बुरे परिणाम होसकते हैं इसका विचार करने से यह सरलता पूर्वकही समझमें आजायगा। महात्मा और वाममार्गी अपनी विद्या के बलसे अनेक प्रकार के 'अलीमंटल' उत्पन्न करके उनके द्वारा अपने बहुतसे काम करातेहैं। ऐसे 'अलीमंटल' जब विशेष क्रिया से विशेष काममें लाने को उत्पन्न किये जाते हैं तब उनके द्वारा इच्छानुसार परिणाम लायाजासकता है। साधारण मनुष्यों के विचारों से अनजानपने से उत्पन्नहुए'अलीमंटलों'का विचार करनेवाले मनुष्यके साथ कुछभी संबंध नहीं रहता, बरन जानबूझकर उत्पन्न कियेहुए 'अलीमंटलों' का उनके उत्पन्न करनेवाले महात्माओं अथवा वाममार्गियों के साथ सम्बन्ध रहता है इसही कारण 'अलीमंटल' चाहे जितनी दूरहो तौभी पीछे से यदि उनका अनुमोदन कियाजावे तो उससे मानों स्वयं अपनीही बुद्धिका निश्चय होरहाहो इस प्रकार वह अत्यन्त बल और चतुराईसे अपनी चालके अनुसार कामकरातेहैं।

महात्मा बड़े २ फरिश्तों की समान बलवान 'अलीमंटल' उत्पन्न करसकते हैं और अपने चेलों के किसी हानिकारक काममें

सहायता देने के निमित्त साथ में जैसे सिपाही होवे वैसे इन रक्षा करनेवाले 'अलीमंटलों' की सहायता लेतेहैं। वाममार्गी भी अत्यन्त भयंकर और बलवान 'अलीमंटल' उत्पन्न करसकते हैं, जब ऐसे 'अलीमंटल' अस्तित्व में आने के पीछे अपने उत्पन्न करनेवाले के अधिकार में से छूटजातेहैं तब वह पहले वर्गके 'अलीमंटलों' की समान कामलोक में फिरतेहुए भूतहोकर फिराकरते हैं वैसेही पहिले वर्गमें कहेहुए 'अलीमंटलों' की अपेक्षा उनमें अधिक भान और अधिक समय तक जीने की शक्ति होती है इसही कारण वह अधिक भयंकर होजाते हैं। वे प्रत्येक रीति से अपने जीवन के बढाने का यत्न करते हैं। इसके अतिरिक्त लोहू चूसनेवाले पिशाचों की समान मनुष्यों का प्राणतत्व चूसलेते हैं।

ऐसे घूमतेहुए 'अलीमंटल' बहुत समयसे जहां जंगली मनुष्य बसतेहों वहां जाकर कुछेक चमत्कार दिखाते हैं या कोई दूसरायत्नकर स्वयं अपने को उसगांव के देवता या देवी की समान पुजवानेका यत्न करते हैं, और प्रत्येक युक्तियोंसे खाद्य पदार्थोंका भोग लेनेको उन जंगली मनुष्यों को विवशकरते हैं। ऐसे 'अलीमंटलों' में जो मांस लोहू आदिका भोग मांगतेहैं उनको सबसे नीची प्रकृतिके 'अलीमंटल' जानना चाहिये। उनसे

कुछेक चढ़तीहुई श्रेणीके 'अलीमंटल' पके चावलों आदिकाही भोगपानेसे संतुष्ट होजातेहैं। भारतवर्ष के बहुतसे भागोंमें आजभी ऐसेही 'अलीमंटलों' की पूजाकीजाती है और भारतवर्षके साथ तुलनाकरनेसे आफ्रीका में उनकी अधिक संख्या पाई जाती है। भोजन आदिपाने तैसेही उनकी भक्ति करनेवाले अज्ञानी मनुष्यों का प्राणतत्व चूसनेसे 'अलीमंटलों'को बल प्राप्त होजाताहै. इसही कारण वे अपने जीवनको बहुत वर्षों तथा बहुत शताब्दियों तक बढ़ासकते हैं और अपने भक्तोंका विश्वास न उठजाय इसकारण किसी २ समय पे कुछ चमत्कार भी दिखाते हैं। जब संदैव की रीत्यानुसार उनको भोग मिलनेमें कुछ अटकाव होजाताहै तब वह गांवमें रहनेवाले मनुष्योंको एकही समयपरस्थान २ में आगलगाय या किसी दूसरे उपायों से डरवाते हैं, कि जिससे उनके अधिकार में आगये हुए अज्ञान मनुष्य भयभीत होकर उनकी देवता के समान सेवाकरने और सदैव अनुसार भोग आदि देने लगते हैं।

सहस्रों वर्ष पहिले जब हम आर्य प्रजाके पूर्व 'अटलानटीअन' नामके राक्षसों की समान पृथ्वीके ऊपर बसतेथे तब ऐसे 'अली-मंटलों' के उत्पन्न करने का उपाय अत्यन्तही साधारण था। उस समय मनुष्य तंत्रविद्याकी सहायता से इतने बलवान 'अली-

मंडल, उत्पन्न करते थे कि उनमें से बहुत तो आज दिन तक वर्त्तमान हैं। यूरोपखण्ड के प्रकट होने से पाहिले आज जहां अटलांटिक समुद्र है वहां 'अटलांटीसं' नाम का एक बड़ा खण्ड था और इस खण्ड मेंही 'अटलांटियन' मनुष्य बसतेथे। उन में जब तंत्रविद्या का अत्यन्त फैलावहुआ और जादूगरी अत्यन्त ही बढ़गई तब धीरे २ वह खण्ड पानीमें डूबने लगा और उस के बदले अंत में 'अटलांटिक' समुद्र अस्तित्व में आया। इस बात को आज ग्यारह हजार वर्ष से भी अधिक होगए और समस्त 'अटलांटिअन' मनुष्योंका नाश होगया, परन्तु उनमें के उत्पन्न कियेहुए 'अलीमंटलों' में से कितने तो आजतक भी जीवित हैं। इन भयानक और नीचे प्रकृतिके 'अलीमंटलों' की तुच्छमनुष्यों में आजभी पूजाकी जाती है, यह अत्यन्तही निश्चय कीहुई बात है। उनके द्वाराही समस्त पापकर्म होसकते हैं। हिंसा या चोरी करने के पहिले तथा किसी को मंत्रसे मारडालनाहो तब वाममार्गी इन देवता और देवियों में प्रवेश कियेहुए 'अलीमंटलों' (भूतों) की आराधना करते हैं।

(३) स्पिरचुएलिस्टोंके मंडल में अलीमंटलों की समान दिखाई देनेवाले मनुष्य अत्यन्त थोड़े हैं। कामलोक में इनकी

साधारण अवस्था होने के बदले ऐसी दशा क्योंकर होती है यह जानने के पहिले 'स्प्रिचुएलीसम' का मंत्र यूरोप और अमेरिका में किस प्रकार फैला इसके जाननेकी आवश्यकता है। सृष्टि में अति प्राचीन कालसे और आजतक धर्मके फैलाव करनेवाले और योग्य मनुष्यों को गुप्तविद्या सिखाने वाले महात्मा तथा उनके छोटे बड़े आश्रम वर्त्तमान हैं। इनमें से 'अटलान्टियन' मनुष्यों के समय से चला आताहुआ एक गुप्तविद्या का आश्रम आजतक अपने कार्य को यथार्थ रीत्यानुसार किये चलाजाता है। यद्यपि उसके गुरू महात्माओं की श्रेणीको नहीं पहुँचे परन्तु तौभी उस आश्रम मेंसे सैकड़ों पुरुष शिक्षित होकर ज्ञानी हुए हैं, और उन में के सीखेहुओं मेंसे कितने एक तो आजभी हिमालय के सबसे बड़े आश्रमों के महात्मा हैं। इस आश्रम में जानेवालों को यथार्थ रीति के अनुसार 'अटलान्टिअनों' की प्राचीन भाषा सखिनी पड़ती है। सृष्टि में ज्ञान का फैलाव करनेके निमित्त वहभी अन जान रीति से अपने नियमके अनुसार काम कियेजाते हैं। पचास वर्ष पहिले की बात है कि जब समस्त यूरोप अमेरिका में नास्तिकपना अत्यन्त बढ़ता जाता था और मरने के उपरांत कुछ हैही नहीं ऐसा लक्षों मनुष्य मानने लगे थे, तब उस अज्ञानके नाश

करने के निमित्त इस आश्रम के गुरुओं ने कोई ऐसा मार्ग ढूंढ निकालनेका विचार किया कि जिसकी सहायतासे, "मरनेके पीछे जीवपृथक अवस्थामें अस्तित्व भोगताहै" ऐसा किसी भी साधारण बुद्धिवाले को प्रमाणित कराने में कुछ कठिनता न पड़े। ऐसा करने के निमित्त जिस उपायसे उन्होंने काम लिया उसके परिणाम में 'स्प्रिचुएलीसम' की तंत्रविद्या का फैलाव हुआ। यूरोप और अमेरिका में लाखों मनुष्य इस विद्याके माननेवाले होगए। "मरने के पीछे कुछ हैही नहीं" ऐसा माननेवाले बड़े २ विद्वान भी अपने प्राचीन विचारों को छोड़कर भूत पिशाच के अस्तित्व को स्वीकार करनेलगे।

'स्प्रिचुएलीसम' के आरम्भ करनेके निमित्त जो रीति काम में आई वह यहथी कि मरणाकर कामलोकमें प्रवेश कियेहुए किसी एक मनुष्य को कामलोक में भलीप्रकार से जाग्रतकर अर्थात् वह मानसहितहो ऐसा उपायकर कामलोक मेंसे स्थूलभुवन के ऊपर किसप्रकार से प्रगटहो इसप्रकार के तथा दूसरे अनेक चमत्कार कैसे कियेजावेहैं यह सीखकर उसको किसीअमुक 'स्प्रिचुएलिस्टों' के मंडलमें प्रगट होने का काम सौंपागया। इसके उपरांत उस मनुष्य के द्वारा दूसरों को भी इसकार्य के निमित्त प्रस्तुत किया

गया और उन सबों की सहायता से 'स्प्रिचुएलिस्टों' के मण्डल में 'मिडियम, किसप्रकार से होता है यह मनुष्यों को सिखाया गया, धीरे २ इस तंत्र का फैलाव होगया। कितने एक समय आरम्भ में इस आश्रम के चेले स्वयं भी 'मिडियम' के द्वारा प्रगटहुए थे, परन्तु अधिकतर तइयार कियेहुए मनुष्यों के समीप ही यहकार्य किया जाताहै। यूरोप और अमेरिका निवासियों के हाथ में इसविद्या के आतेही थोडेही समयमें इसका इतना फैलाव होगया कि उसके चलानेवाले गुरुओं का उनके ऊपर कुछ भी अधिकार न रहसका और अनेक हानियें भी होनेलगीं। यद्यपि उन्होंने इस विद्याको उत्तम नियम और पवित्रहेतुसे उत्पन्न किया था, और उस के परिणाम में लाखों मनुष्यों को मरण पीछे की अवस्थाकानिश्चय हुआ तथापि हिमालयके महात्मा पहिले सेही ऐसे मार्गपर चलने को अयोग्य समझते थे। फिर मरणपाकर साधारण रीति के अनुसार देवखन में जाते समय इस काम के निमित्त अटकाव होजानेसे कामलोकमेंही रहजाने के कारण स्वयं अपनी हानि होतीहुई जान दो विचित्र उपायों से काम लिया। एक तो यह कि बहुधा प्रत्येक के समीप कामलोक में थोडे समय ही इस कामकोकर उस स्थानपर दूसरे को छोड वह देवखन में

चला जाता है। परन्तु जब वैसा करनेसे जो मण्डल उसको सौंपा गयाहो उसमें हानि होना सम्भव देखाई देता हो तब उस मनुष्य को देवखन में छोड उसके 'शेड' अथवा 'शल' को दूसरे के अधिकार में करें तैसेही खोलके द्वारा मण्डल में बैठेहुओं का फेर फार जान न पडे और कुछ सदेहभी न उत्पन्नहो इसप्रकार उस को प्रगटहोना सिखाय काम लियाजाताथा। इस प्रकार काम में आतेहुए 'शेड' अथवा 'शल' को 'ह्युमन आर्टीफिश्यल' कहा जाताहै। यद्यपि दूसरे वर्गके साथतुलना करनेपर यह वर्ग अत्यन्त ही छोटाहै परन्तु तौभी कामलोक में जीवों की टिप्पणी जहांतक बने अधूरी न रहे इसकारण उनका भी हमने पृथक वर्ग कियाहै अब कामलोकमें बसनेवाले जीवोंका कुछ वर्णन पूर्णकर हम काम लोकका भुवन और उस में बसनेवाले जीवों द्वारा होतेहुए चमत्कारिक प्रयोग और दूसरी असाधारण बातोंके स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न करेंगे।

चमत्कार के नामसे चलतेहुए प्रयोग करने में कामलोक में इतनी अधिक सबलता पडती है कि एकप्रयोग अनेकरीतोंसे हो सकता है। इसकारण प्रत्येक का साधारण स्पष्टीकरण करकेही हम स्वयं रुकेंगे। उदाहरण की समान, जब किसी साधारण

मनुष्य को किसी समय कुछ मनुष्य की समान आकारमें दिखाई देता है तब वह उसको भूत कहता है, परन्तु कामलोक में अनेक प्रकार के जीव रहते हैं इसकारण वह भूत कौन होगा इसका स्पष्टीकरण करना अशक्य होजाता है ।

(१) समाधि और कबरस्तानआदिस्थानों में जानपड़ते हुए भूत, जो किसी कबरके ऊपर अथवा उसके आसपास घूमता हुआ भूत दिखाई देता है तो उसको मरनेवालेका छूटकर बिखरा हुआ छायाशरीर समझना चाहिये । फिर किसी समय मरनेवाले का कोई मित्र जब कि वह घोर निद्रामें सोजाता है तब उसका छायाशरीर स्थूलउपाधिसे छूटकर कामतत्वकी उपाधिमें मरनेवाले की समाधिपर भान अवस्थामें खिंचकर आताहुआ दिखाई देताहै ।

२–किसी को मरनेकेसमय दिखाई देतेहुएभूत–अत्यन्त साधारण हैं और वह बहुधा मरणपानेवालों केही छूटपडेहुए मित्र आदि की ओर खिंचकर आतेहुए कामरूप होते हैं । तैसेहीमरने वाले को अपने किसी मित्रसे मिलने की दृढइच्छा होनेके कारण उससे उत्पन्नहुए ' अलीमंटल ' भी उन मित्रों को दिखाई देसकते हैं

(३) भूत पिशाच से बसेहुए स्थान और घर–जिस स्थान अथवा जिसघरमें किसीकी हिंसा करनेका घोर कुकर्महुआहो

उस स्थान पर मनुष्यों को भूत दिखाई देते हैं और वह बहुधा अप्रावों। उस समयमें कियेहुए विचारोंसे तैसेही मुख्यकर मरने के पीछे कामनाओंमें स्वयं बनेहुए बनावके उपर विचार करनेसे उत्पन्नहुए 'अलीमेंटल्स' होते हैं। ऐसा बनाव बननेके एक वर्ष पूर्णहोने के दिन विशेष कारणों के लिये उस बनावके सम्बन्धमें होनेहुए विचार करनेवालेके मनसे फिरसे बलपूर्वक उत्पन्न होतेहैं और उसमें उन 'अलीमेंटलों' को अधिक बल मिलताहै जिससे उस दिन वह महत्ता में प्रगट हो सकते हैं इसही कारण वे मनुष्यों को देख पडते हैं। कितने एक वर्षों में अथवा अमुक स्थानों में अमुक २ समय में ही भूत दिखाई देते हैं उसका भी कुछ ऐसाही कारण होना चाहिये। इसके उपरांत जिस स्थान में कुछ ऐसा बनाव बनाहो कि जिससे वहां वर्तमान रहनेवालों के मन में अत्यन्त डर, अत्यन्त दुःख, संताप, विकार या किसी प्रकार का अत्यन्तही दृढ सम्बन्ध उत्पन्न हुआ है तो उस बनाव का अत्यन्त भयंकर प्रतिबिम्ब फोटोग्राफरीसमान स्थूलभुवनके इथरों में पडता रहताहै कि जिससे उनके दिखाई देनेपर उस स्थान में भूत का होना दूसरेको निश्चय होताहै।

(४) कुटुम्बसे सम्बंध रखनेवाले भूतोंके सम्बंधमें अनेक

बातें सुननेमें आतीहैं और वह बहुधा किसी बाप दादाके असाधारण विचारोंमे उत्पन्नहुए 'अलीमेंटल' होते हैं अथवा उनके किसी असाधारण बनावके ईथरोंमें पड़नेकी परछांयी होतीहै परंतु इसके अतिरिक्त जब मरण पानेवालेकी इच्छाकियी सम्बंधीके विषय में प्रवीन हुईहो तो वह देखनेमें नहीं आसकता इससे कारण अपने जाने हुए स्थानोंमें और अपने सम्बंधी मनुष्योंके सामने घूमता फिरता है इससे बारंबार कुटुंबमें के किसी एक आदमीको दिखाई देजाताहै ।

(५) घंटा बजाना या पत्थर फेंकना नेमेही कांचके बर्तन आदिके तोड़डालनेका बनावभी किसी २ समयमें बनता है और वह मुख्य कर 'अलीमेंटल' आदि शक्तियों के द्वाराही होसकताहै। मरण पायाहुआ कोई मनुष्य अपने मित्र या संबंधियों का ध्यान करनेके कारण, तैसेही परियें आदि वहांके रहनेवालोंसे केवल हँसी करनेके कारण कामलोककी शक्तियोंको बिना समझे चलायमानकर उससे स्थूलभुवनके ऊपर ऐसे बिना अर्थके परिणाम लासकती हैं

(६)–परियें–भावोंमें भूत और परियोंकी जो विचित्र बातें सुनने में आती हैं उनका आधार मुख्यकर कामलोक में रहीहुई परियों ही के ऊपर है । परियें किसी समय में हँसी के कारण किसी को घबड़ाने के निमित्त उसकी इन्द्रियों को ऐसे भुलावे में

डालदेती हैं कि जिस स्थानपर कुछभी नहीं होता उस स्थानपर उसको अपने घरबार आदिके मनुष्य दिखाई देते हैं और फिर वह स्वप्नावस्था की समान अवस्था में आप मानों बहुत बरसों से अपने जीवनको बिताता है ऐसा स्वप्न देखता है। परन्तु जब जागृत होता है तब फिर अपनेको यथार्थ अवस्था में देख अत्यंत ही आश्चर्य करता है फिर परियों के चमत्कार की प्रत्येक बात माननेको विश्वासकरनेकीभी कुछ आवश्यकता नही है क्योंकि बहुधा ऐसी बातें कल्पित होती हैं और जब यथार्थ होती हैं तब गांव के मनुष्य अपनी भ्रांतियों को उभाडकर उसको सुई का फावडा करदेते हैं। 'स्प्रिचुएलिस्टों' के मंडल में बहुधा परियें दिखाई देतीहैं और अत्यन्त आश्चर्य कारक चमत्कारकर दिखाती हैं। मेजके पायेको उठाकर प्रश्नका उत्तर देना,--वायु में जलती हुई आग दिखाना, बैठेहुओं में से किसीके विचार कहना कागज के ऊपर लिखना या चित्रका छापना और फिर स्थूल पदार्थ की उपाधिसे स्थूल भुवन के ऊपर ठोस रूप में प्रगट होना आदि प्रयोग वे अत्यन्त सहजसे करसकती हैं और यदि ऐसाहो कि वह कोई अमुक प्रयोग न करसकें तौभी मनुष्यों की इन्द्रियों के भुलाने की उनमें ऐसी बलवान शक्ति होती है कि वह प्रयोग

किये बिनाही देखनेवालों को भुलावे में डाल प्रयोग की यथार्थता दिखा सकती हैं।

(७) स्थूल भुवन के साथ सम्बंध रखनेवाले जीव— कामलोक में बसतेहुए प्रत्येक वर्गके जीव 'स्प्रिचुएलिस्टों' के मण्डलमें 'मिडियम' की द्वारा प्रगट हो सकतेहैं। इसप्रकारसे प्रगट होनेवाले जीव कौनहैं यह नहीं कहाजासकता। कितने एकसमय प्रगट होनेवाला जीव, मरण पायाहुआ कोई विशेष मनुष्य स्वयं ही हैं, इसप्रकार से कहकर उसही मनुष्य में खपजाता है, परन्तु बहुधा ऐसा नहीं होता। कामलोक में रहेहुए जीव अपनी सूक्ष्म उपाधि के पीछे ऐसे रूपको धारण करसकते हैं इस कारण जिस मनुष्य में वह मिलना चाहें उसके रूप धारण करने में उसको कुछ कठिनता नहीं पड़ती। फिर कामलोक में दूसरी कितनी एक असाधारण शक्तियोंके मिलनेसे शक्ति बढ़जानेपर वह प्रगट होने वालाजीव स्वयं ही अमुक मनुष्य है ऐसा मण्डल में बैठनेवालों को अत्यन्तही चमत्कारिक रीति से निश्चय करादेता है परन्तु यथार्थमें यह वह मनुष्य नहींहोता, उससे बहुधा समस्त मण्डल ठगाजाता है। उदाहरण की रीति पर जब प्रगट होनेवाला जीव मंडल में बैठेहुए किसी एक के बहुत बरस पहिले मरेहुए भाईकी

समान प्रगटहोना चाहे तो वह अत्यन्त सहजसे ऐसा करसक्ता है। मंडल में बैठनेवालों को निश्चय कराने के निमित्त मरनेवाले की कुछेक गुप्त बात, कि जिसको उसके भाई के अतिरिक्त और दूसरा कोई नहींजानता उस ज वके भाईके मनमें सेही बांचकर वह कहदेता है, तैसेही फिर मरनेवाले की कोई घरेलू बात कि जिसको कोई भी नहीं जानता उसको भी 'अस्त्रललाइट' में पड़ी हुई परछांयीं के ऊपर से बांचकर उसके भाई से कहकर उसको निश्चयकराता है, कि जिससे वह अनजान मनुष्य उस भूत को अपनाही भाई समझने में कुछ आनाकानी नहीं करे इससे इतना ही ध्यान में रखना चाहिये कि ऐसी बातोंसे 'स्पिचुएलिस्टों, के ठगजाने की संभावना रहती है।

कितनेही समय 'स्प्रिचएलीजम' के आरंभ में उसके फैलाव करनेवाले आश्रम के चेले स्वयंही प्रगट होते थे और मंडल में बैठनेवालों को अमूल्य उपदेश देजाते थे।

(८) कामलोक मेंसे मिलती हुई शक्तियें स्थूलभुवन के ऊपर होतेहुए चमत्कारिक बनावोंके समझने के निमित्त चमत्कार करनेवालों को किस प्रकारकी असाधारण शक्तियें मिलती हैं उस के जानने की आवश्यकता है। प्रयोग किस रीति से कियाजाय

यह कुछ साधारण मनुष्यों के सीखने में नहीं आसकता परन्तु इतना तो समझना चाहिये कि सृष्टिमें जितनी असंख्य अवस्थाओं में पदार्थ बँटगए हैं उन सबसे सम्बंध रखनेवाली असंख्य प्रकार की लहरें सदैव हुआ करती हैं समस्त सृष्टि में रहीहुई असंख्य पृथक २ वस्तु केवल एकही मूल पदार्थकी बनीहुई हैं ऐसा ध्यान में रखना चाहिये । यद्यपि यह मूल पदार्थ एकही है परन्तु तौ भी उसके परमाणु पृथक २ रीति से गठजाते हैं और ऐसा होने से उनमें पृथक २ रंग रूप और गुण प्रवेश करते हैं. इसकारण यह एकही मूल पदार्थ असंख्य प्रकारकी पृथक २ वस्तुओं के रूप में दिखता है । अब असंख्य अवस्थाओं में रही पदार्थों से सम्बन्ध रखनेवाली असंख्य लहरियों में विशेष २ प्रकारकी लहरें स्थूल उपाधि के द्वारा अथवा पांच इन्द्रियों की सहायता से हम जानसकते हैं इनमें विशेष प्रकारकी लहरोंको हम शब्दकी समान पहिचान सकते हैं तैसेही उससे विपरीत लहरों को हम उजाले की समान जानसकते हैं और उससे पृथक प्रकार की लहरें हम को बिजली के रूपसे जान पड़ती हैं । इसप्रकार सृष्टिमें रहेहुए असंख्य अवस्थाओंके पदार्थ मैंसे केवल विशेष अवस्था में रहेहुए पदार्थकी स्थूल उपाधि के द्वारा अपने को जानने में आते हैं ।

यन्तिक कि केवल थोडीही प्रकार की लहरों वा स्थूल उपाधि के द्वारा भान होने से उनके सम्बन्ध का जो इस स्थूल भुवन के अस्तित्वमें है भान होताहै । इसके उपरांत सृष्टिमें रहेहुए दूसरे असंख्य सूक्ष्म अवस्थाओं के पदार्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाली असंख्य प्रकार की लहरें चलायमान रहाकरती हैं कि जो अत्यन्त शीघ्रता से होनेके कारण पाच इन्द्रियोंके द्वारा नहीं जानीजासकतीं और इससे उनके सम्बन्धवाले भुवनों के अस्तित्व का भान भी नहीं होसकता। जो इनमें की कितनी एक लहरों का सूक्ष्म उपाधि के द्वारा अपने को भानहो तो उससे सम्बन्ध रखनेवाले भुवनों की अपने को जानकारी हो और उनके सम्बन्ध में आनेसे अपने को अधिक शक्तिओं का बल मिलसकता है ।

(९) विश्वदृष्टि की शक्तिभी ऊपर कहेहुए कारणों सेही मिलसकती है । सूक्ष्म पदार्थ सम्बन्धी अत्यन्त शीघ्रता से होती हुई लहरों को दृढ पदार्थका अटकाव नहीं होता । वह दृढ पदार्थों में से सरलता पूर्वक निकल जासकती हैं, और उससे उसही प्रकार की लहरोंका भान होनेसे दृढ पदार्थ के आर पार देखने का शक्ति आती है जब यह शक्ति आजाती है तब उसको विश्वदृष्टि गिना जाता है । विश्वदृष्टि के विकाशित होने से अनेक चमत्कारिक

प्रयोग होसकते हैं। बंद कीहुई पुस्तक को पढ़ना दूसरे के मनकी बात जानना, तैसेही दुनिया के किसी भी भागमें रहीहुई वस्तुका देखना सरलता से हो सकता है।

(१०) देवअक्ष अथवा शिवकी आंख कि जिसको तीसरी आंख कहाजाता है वह साधारण विश्वदृष्टि से अत्यन्तही चढ़ती श्रेणीकी शक्ति है। वह कुछ दूरकी वस्तु देखने की या दृढ़ पदार्थ के आर पार देखनेकी शक्ति नहीं है। मस्तिष्कमें रहा हुआ 'पाइनी अलग्लएड' नामका भाग जो वर्तमानमें सुस्त पड़ा हुआ है, उसके विकशित होनेसे किसी भी पदार्थ को देखने के साथही उसका सबवृत्तांत अथवा विशेषता जाननेकी और विचार किये विना यकायक देखने के साथही उसकी यथार्थ अवस्था समझजाने की शक्ति होती है और ऐसा होने के पीछेही राजयोगी को सब सृष्टि का ज्ञान होजाता है। शराब, भांग, अफीम आदि वस्तुओं के उपयोग से 'पाइनी अलग्लएड' के ऊपर अत्यन्तही बुरा प्रभाव होताहै और इसही कारण अभ्यासियों को ऐसी वस्तुओं के उपयोग करने का कठोर निषेध किया गयाहै।

(११) कामलोक के भुवन के ऊपरसे काम में आनेवाली शक्तियें—नानाप्रकारकी हैं परंतु उनका किस प्रकारसे उप-

योग कियाजाय यह साधारण मनुष्योंके सीखने में नहीं आता 'स्प्रिचुएलिस्टों' के मंडलों में बारंवार बैठनेवालोंने स्वयं निश्चय किया है कि दिखाई देनेवाले 'अशीमंटल' कामलोक मेंसे अत्यन्त बलवान शक्तियों को काममें लाय बड़े २ भारी बोझ एक स्थानसे दूसरे स्थानको अदृश्य रहकर लेजासकते हैं । विचारवान मनुष्य ऐसे चमत्कारिक प्रयोगोंसे चक्करमें पड़कर अत्यन्त विस्मित हो जातेहैं क्योंकि वर्तमान 'सायंस' द्वारा उसका स्पष्टीकरण नहीं होसकता। ऐसे चमत्कारिक प्रयोग बहुत प्रकार से होसकते हैं परंतु अभी केवल उनकी चार साधारण रीतें जाननेकी आवश्यकताहै और वह नीचेके अनुसारहैं ।

(१२) ईथरों की मौज (लहर)-पृथ्वी के दोनों ध्रुवों मेंसे बहुतसी ईथरों की लहरें निकलकर पृथ्वीके धरातलके ऊपर बड़े समूहों से प्रवेश करती हैं । इनकी बलवान लहरोंके अत्यंत बढ़नेपर जब वे विशेष रीति से काम में लाई जाती हैं तब उनके द्वारा स्थूलभुवन के ऊपर बड़े २ चमत्कारिक परिणाम किये जा सकते हैं तैसेही यदि विनासमझे उनका उपयोग कियाजाय तो उससे अत्यंत हानिकारक परिणामोंके उत्पन्न होनेकी संभावनारहतीहै

(१३) ईथरों से उपजता हुआ दबाव-यह तो 'सायंस'

के द्वारा प्रमाणितही होचुका है कि पवन का दबाव प्रत्येक पदार्थ के ऊपर है। जब किसी बर्तन मेंकी रहीहुई सब हवा खींचली जावे तब वह बर्तन शीघ्रता सेही टूटजाता है और इससे बाहर की वायुका दबाव इसपर पड़ता हुआ प्रमाणित होता है; परन्तु इसही प्रकार प्रत्येक वस्तुके ऊपर ईथरोंका दबाव रहता है इस हीं कारण जो किसी उपायसे एकबर्तनमें की हवारहने देकर उस में का ईथर निकाल लियाजाय तो बाहरी ईथरोंके दबावसे उस ही प्रकार वह बर्तन टूटजायगा और ईथरोंका भी दबाव प्रमाणित होसकेगा; परन्तु यह बात 'सायंस' से नहीं जानीगई, इसका कारण यह है कि प्रत्येक दृढ़ पदार्थ मेंसे ईथर आरपार होसकते हैं इसही कारण किसी भी दृढ़ पदार्थ के बनेहुए सांचे के द्वारा अमुक स्थानपर रहाहुआ ईथर खाली नही किया जासकता।

गुप्तविद्या के अभ्यसियोंको यह प्रयोग किस प्रकारसे करना चाहिये यह सीखना आवश्यकीयहै। हवाके दबावकी सहायता से जो १ परिणामलाये जासकते हैं; उसकी अपेक्षा अधिक बडे परिणाम ईथर के दबाव की सहायता से लाये जासकते हैं।

(१४) पदार्थ में गुप्तहुई शक्ति—दृढ पदार्थ की अवस्था बदलने से जैसे उसमें की छुपीहुई शक्ति गर्मी के रूप से बाहर

निकलती है वैसेही कामलोक के सूक्ष्म पदार्थों की अवस्था बदल डालने से उनमें की छिपीहुई शक्ति को पृथक करनेके उपाय से काम में लासकते हैं ।

(१५) लहरों के सम्बन्धसे उत्पन्नहोतेहुए परिणाम-लहरों की इयर्गति के आधार से छोटे बड़े चमत्कारिक प्रयोग अत्यन्त सरलता से किये जासकते हैं । इसही नियम के आधार से दश बारह बाजों को एक समान सुरपर लाय उनमेंसे एक के तारको बलपूर्वक लहराने से आसपास के सब बाजोंकेतार लहरा जावेंगे और उन सबमेंसे एकही प्रकारका शब्द निकलेगा । फिर यहभी बात जानना चाहिये कि जब झूलतेहुए पुलके निकट बहुत सी सेना कि जो एकसाथ पांव उठाएजाती है उसको बखेरकर पुलपरसे लेजाते हैं क्योंकि यदि वह सब श्रेणी बद्ध जावें तो उनके मिलेहुए कदमों से चलने पर एक विशेषप्रकार का शब्द उत्पन्न होता है कि जिससे पुलपरभी एक विशेषप्रकार की लहरें उत्पन्नहोकर थोडीही देर में अधिक बढ़जावें और फिर अंत में पुलके लोहखण्ड का खिंचाव टूटकर समस्त पुलके टुकडे २ हो जावें । शब्द में इस शक्ति के रहने के कारण किसी भी अवस्था में रहेहुए पदार्थके ऊपर शब्द से जैसा चाहिए वैसा प्रभाव किया

जासकता है । प्रत्येक वस्तु के परमाणु खिंचाव से एक दूसरे के साथ मिलेरहते हैं इसकारण उनका खिंचाव तोडने के निमित्त अथवा उनके ऊपर विशेष प्रकारका प्रभाव करने के निमित्त किस प्रकारका शब्द उत्पन्न करना चाहिए, इसके जानने में विशेषता है । कामलोक में रहीहुई पृथक २ अवस्था की प्रकृति के ऊपर किस २ प्रकार का प्रभाव शब्द से होताहै यह जानलेनेपर बड़े २ परिणाम लाये जासकते हैं । शब्द में उत्पत्ति, स्थित और प्रलय करने की शक्ति है । शब्द से आकार उत्पन्न होताहै । व शब्द सेही अस्तित्व में रहसकता और शब्द सेही उसका नाश होता है समस्त सृष्टि भी 'लागास' अथवा 'वर्ड' के शब्द सेही बँधी हुई है । महात्मा कि जो शब्द के सब विषयों से जानकार हैं शब्द के द्वारा अद्भुत परिणाम लासकते हैं ।

(१९) मंत्र—जो मंत्र अथवा मयूखाण से किसीभी 'अमी-मंडल' को बिना वश किये परिणाम लायाजाताहै उसका आधार मंत्र की अमुक रीति से जुडेहुए अक्षरों से उत्पन्न हुए शब्द के ऊपर निर्भर है । अक्षरों को अमुक रीति सेही जोड़कर मंत्र का अर्थ न समझकर भी उच्चारण करने से उत्पन्न हुआ शब्द सूक्ष्म प्रकृति के ऊपर प्रभाव कर उसमें लहरें उत्पन्न करता है

और इससे जिस अभिप्राय व जिस कारणसे वह मंत्र जोडागया हो उसहीके अनुसार उसका परिणामभी होताहै शब्द में उत्पत्ति और नाशकरने की शक्ति रहतीहै इसकारण मंत्र से तत्कालही के मरेहुएको फिर जीवित किया जासकताहै, इसही प्रकार जीव को मारभी डाला जासकताहै । इसबातको अभ्यासीही जानते हैं ।

(१७) वस्तुको परमाणुके रूपसे पृथक करनेका प्रयोग—यह प्रयोग भी शब्दकीही सहायता से किया जासकता है । वस्तु के परमाणुओं को 'मोलीक्युल' के साथ पकड़ रखनेवाला खिंचाव टूटजाय ऐसी लहरें उस वस्तु में विशेष शब्द द्वारा उत्पन्न करने से थोड़ेही समयमें 'मोलीक्युल' के खिंचाव की अपेक्षा उसमें पृथक करने का बल बढ़जाता है इससे वह वस्तु छूटकर 'मोलीक्युल' के रूप में आजाती है । ऐसा होने के पीछे छूट पड़ेहुए 'मोलीक्युल' में अधिक सूक्ष्म लहरें उत्पन्न होजाने के कारण उनके बंधाव में आयेहुए समस्त परमाणुओं का खिंचाव टूट जानेसे 'मोलीक्युल' परमाणु के रूपमें छूटपड़ता है इसप्रकार किसी भी पदार्थ को परमाणुके रूपमें छूट पड़ने के पीछे एक स्थानसे दूसरे स्थानके ऊपर कहेहुए ईथरकी लहरोंसे अत्यंत शीघ्रतापूर्वक लाया जासकता है ।

दृढ़ पदार्थ को परमाणु के रूप में छूट पड़ने के पीछे उसके

ऊपर चलायमान संकल्प का दबाव रखछोड़ना पड़ताहै यदि ऐसा न हो तो समस्त परमाणु ईथर के दबाव के कारण अपने यथार्थ दृढ़रूप में बँधजावें। इस प्रयोजन के आधार सेही 'स्पिरचुएलिस्टों' के मंडलों में बहुत दूर के पदार्थ एक पलमेंही लाये जासकते हैं। परमाणुके रूपसे छूट पड़ेहुए पदार्थ का दीवार आदि दृढ़ पदार्थों से अटकाव नहीं होता, यहांतक कि वह उसके भीतर से आर पार निकल जा सकता है इसकारण उसे एक स्थान से दूसरे स्थान को लेजाने में कुछ कठिनता नहीं पड़ती।

(१८) सूक्ष्म ईथर को दृढ़ पदार्थ के रूप में लाने का प्रयोग—यह प्रयोग भी शब्दही के द्वारा किया जाता है, परन्तु उसमें ऊपर कहेहुए प्रयोग से उलटीही रीति काम में आती है। सूक्ष्म ईथरों में विशेष प्रकार की लहरें उत्पन्न करनेसे उनके परमाणु इकट्ठे मिलकर दृढ़ पदार्थ का रूप पकड़ते हैं परंतु जैसे ऊपरके कहे प्रयोग में कियाजाता है वैसेही ऐसी वस्तु को दृढ़रूप में लाने के निमित्त संकल्प के चलतेहुए दबाव के रखने की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि जैसेही वह दबाव निकाल डालने में आता है वैसेही वह वस्तु छूटकर अपनी यथार्थ अवस्था में सूक्ष्म पदार्थ के रूप से बिखरजाती है। 'स्पिरचुएलिस्टों' के मंडल में

ऐसा प्रयोग होता है । परंतु वहां बहुधा 'मिडियम' के छाया-शरीर के पदार्थों कोई दृढ़ पदार्थके रूप में लाया जासकता है कि जिससे वह पदार्थ केवल 'मिडियम' के आस पासही रहसकते हैं और 'मिडियम' से दूर लेजाने पर वह टूटजाते हैं और उसके पदार्थ तत्कालही 'मिडियम' के छाया शरीर में खिंचजाते हैं । इस प्रकार होतेहुए प्रयोगों से 'मिडियम' को हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है, इसलिये सावधान रहना चाहिये ।

(१९) स्पिचुएलिस्टों के मंडलमें प्रगटहोने के समय 'अलीमंटल' को प्रकाशकी अपेक्षा अँधेरा अधिक भाता है इस का कारण भी ऊपरी नियमों के आधार सेही समझना चाहिये । प्रगट होने के समय 'अलीमंटल' अथवा कामलोक के मनुष्यों का कारण भी ऊपरी नियमों के आधार सेही समझना चाहिये । प्रगट होने के समय 'अलीमंटल' अथवा कामलोक के मनुष्यों को अपनी सूक्ष्म उपाधि के ऊपर स्थूल भुवन के ईथरों के परमाणुओं को आकर्षणकर संकल्प के दबावसे इकट्ठा रखने की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि जबतक ऐसा न हो तबतक मण्डल में बैठनेवालों को कि जिनको दिव्यदृष्टि नहीं हुई होती वह देखने में नहीं आसकते । अब वह जीव जिस स्थानपर दिखाई देना चाहता

हो, उस स्थानपर जो तीक्ष्ण प्रकाशवाली बत्ती (दीपक) जलती हो तो उसकी गरमी से आसपास के ईथरों में अत्यंत शीघ्रता से लहरें पड़तीहैं, और उससे वह जीव अपनी उपाधिके ऊपर उन्हें आकर्षण कर ईथरके परमाणुओं में बिखरजाना चाहता है। उस के सामने अत्यंत बलसे अपने दृढ़रूपमें प्रगट होनेको 'अलीमंटल' में शक्ति नहीं होती, इस कारण उस स्थिति में अर्थात् प्रकाश होनेपर उस स्थान में वह नहीं प्रगट होसकते।

फिर ' अलीमंटल ' तीन पृथक २ रीतियों से प्रगट हो सकते हैं। पहिली रीति से प्रगट होनेपर ' अलीमंटल ' दिखाई नहीं देते परन्तु उस मंडल में बैठनेवालों का स्पर्श करसकते हैं, दूसरी रीति से प्रगट होनेवाले दिखाई देते हैं परन्तु उनका स्पर्श नहीं किया जासकता और तीसरी रीति से प्रगट होनेवाले ' अलीमंटल ' दिखाई देते हैं तैसेही उनको रोकाभी जासकता है। इनमें से पहिली रीति प्रगट होने की अत्यंत साधारण और यथार्थ में 'अलीमंटल' इसही प्रकार प्रगट होसकते हैं। यद्यपि ऐसी अवस्था में वह दिखाई नहीं देते परन्तु तौ भी 'स्पिचुएलिस्टों' के थप्पड़ मारने और बालआदि खींचने का प्रयोग करसकते हैं। इसही प्रकार अत्यंत छोटी वस्तुओं कोभी एक स्थान से दूसरे स्थान में लेजासकते हैं।

(२०) भूतोंका चित्र अथवा फोटोग्राफ–भी आजकल बहुत से देखने में आते हैं । भूत पिशाचके अस्तित्व को न मानने वाले ऐसी बातों के माननेवालों को मूर्ख मानते हैं । परन्तु उन अज्ञानियों को आज आंख उघाड़कर सीखने का समय आया है । वहभी मनुष्य ठगजांय और झूठे को सच्चामान बैठें इसमें कुछ नई बात नहीं है परन्तु 'फोटोग्राफ' के प्लेट के ऊपर ऐसी असत्य बात नहीं बनाई जासकती ।

जिस वस्तु से प्रीसम नामके कांचमेंसे निकलतीहुई सात किरणें दीख पड़ती हुई किरणों की रोकहो उसके ऊपरसे प्रतिबिंब के रूप में आतेहुए प्रकाशको लहरें आंख के ऊपर पड़ती हैं उसही वस्तु को हम आंखों से देखसकते हैं, परन्तु जो वस्तु इतनी सूक्ष्महो कि जिससे यह सातों किरणें आरपार होसकें वह वस्तु नहीं दिखाई देती । अब प्रीसम में से निकलती हुई इन सात किरणों के अतिरिक्त और भी दूसरी अतिलाल और अतिनीली नामकी अति सूक्ष्म किरणें अस्तित्व में होतीहैं इस कारण जबकोई जीव कामलोक मे से, ऊपर कही हुई प्रगट होने की तीन रीतों में प्रगट होता है, तब उसकी उपाधि से अतिनीली सूक्ष्म किरणों की रोक होती है और उससे प्रतिबिंब के रूपमें आतेहुए प्रकाश की लहरें

(जो आंखपर प्रभाव नहीं करसकती) 'फोटोग्राफ' के प्लेट पर प्रभाव करसकती हैं। 'वाडरलन्द' नामके मासिकपत्र में भूतोंके जो चित्र देखनेमें आतेहैं। वह सब प्रायः ऊंघतेहुएकी समान होतेहैं।

जब प्रगट होनेवाले 'अलीमेंटल' अत्यंत समूहमें स्थूलभुवन के परमाणुओं को खैंचकर इकट्ठा रखसकते हैं अर्थात् बल को काम में लाते हैं तभी प्रगटहुआ आकार दिखाई देता है और तब वह दृढ़ होने योग्य होसकता है।

यहांपर एक बात यह जानने की आवश्यकता है कि मायावीरूप की उपाधि में फिरनेवाले महात्मा तैसेही उनके चेले जब किसी अमुक कारणके निमित्त स्थूलभुवन पर दिखाई देनेकी आवश्यकता देखते हैं तब वह भूतों की समान दूसरे के छायाशरीर के परमाणुओं को नहीं खींचलेते बरन गुप्तविद्या के बल द्वारा ईथरों मेंसे या आकाश मेंसेही योग्य परमाणुओं को खैंचलेते हैं।

(२१) एकवस्तु के समानही दूसरी वस्तुके बनाने का प्रयोग—भी गुप्तविद्या के जाननेवाले सरलता से करसकते हैं जो वस्तु अस्तित्व में लानीहो तो मनमें रही हुई क्रिया शक्तिसे ईथरों में सूक्ष्म आकार उत्पन्नकर उसके ऊपर स्थूलपदार्थ को खींचलेने से यह प्रयोग होसकता है। जैसे छायाशरीर के प्रत्येक सूक्ष्म

परमाणुओं के ऊपर उसके सम्बन्धी दृढ़पदार्थ के परमाणुओं के बन्धाव से वह स्थूलशरीर के अस्तित्व में आता है तैसेही सूक्ष्म-आकार के प्रत्येक परमाणुके ऊपर दृढ़पदार्थ को खैंचलेने के निमित्त अत्यंतही बलवान संकल्प और अत्यंत स्थिर ध्यान की आवश्यकताहै। इस प्रयोग के आधारसे एक योगी ५ या सात स्थानों पर एकही समय दिखाई देसकता है।

(२२) कोरे कागजपर लिखना अथवा चित्र बनाने का प्रयोग-महात्मा और उनके चेलों में अत्यंत साधारण हैं। महात्माओं की ओरसे उनके चेलों को कागज नहीं लिखेजाते वरन इस प्रयोग सेही काम लियाजाता है ऐसा 'थिआसोफी' की पुस्तकों में पढ़ागया है। यह प्रयोग कई प्रकार से होसकता है। महात्मा अपने सामने कोरे कागजको रख उसके ऊपर जो लिखना चाहते हैं उसका मनमें चित्र कल्पितकर ईथरों मेंसे देखपड़तीहुई वस्तुओं को खींचलेते हैं तदनन्तर अपने कल्पित चित्रको कागज के ऊपर दृढ़रूप में लासकते हैं। फिर इसही प्रकार वह चाहें तो अत्यंत दूरसे भी लासकते हैं। जिसके समीप वह पत्र भेजना चाहते हों वह चाहे जितनी दूरहो ऊपर कहेके अनुसार समीप पड़े कागज पर अपनी इच्छानुसारपत्र लिखकर भेजसकते हैं। यह प्रयोग

तीसरी रीति सेभी होसकता है और वही रीति सरल पड़ती है इस कारण बहुधा वही काम में लाईजाती है । महात्मा बहुधा अपने चेलों के मनमें जैसे कागज पर लिखना चाहते हों वैसीही छाप डालते हैं कि जिससे चेले अपने मनमें रहेहुए लेखको ऊपर कही हुई रीति के अनुसार कागज के ऊपर डालसकते हैं ।

यह अत्यन्तही आनन्द की बात है कि लोभी लालची साधारण मनुष्यों को इस प्रयोग के करने की शक्ति नहीं है । क्योंकि यदि ऐसा होता तो दूसरों के झूठमूठ हस्ताक्षर और नोट आदि बनाने में इतनी सफाई होसकती कि साधारणरीति से उसका पहिंचान-नाही अशक्य होजाता । फिर जैसे २ इस प्रयोग के करने की चेलों को टेव पड़ती है वैसेही वैसे वह शीघ्रतापूर्वक लिखसकते हैं और इस प्रयोग के आधारसेही 'स्पिचुएलिस्टों' के मण्डल में बड़े २ लंबे कागज थोड़ेही समय के भीतर लिखे जासकते हैं । चित्रभी इसही प्रकार उत्पन्न किये जासकते हैं परन्तु उनके पृथक २ स्थानों में पृथक २ रंग आदि होते हैं इसकारण लिखने की अपेक्षा उनका बनाना अधिक कठिन होताहै । साधारण चेलों की अपेक्षा चित्रका काम जाननेवाले चेले भली प्रकार से चित्र उत्पन्न करसकते हैं ।

(२३) मनुष्य को अथवा किसी भी पदार्थ को हवामें अधर रखने का प्रयोग—'स्प्रिचुएलिस्टों' के मंडलमें यह प्रयोग किसी२ समय में होतेहैं, परन्तु भारतवर्ष के योगी तो साधारण रीति से इसे जानते हैं । उनमें एक रीति झूठी और एक रीति सच्ची है । जब 'स्प्रिचुएलिस्टों' के मंडल में यह प्रयोग होताहै तब वह झूठी रीति होती है । अर्थात् प्रगट होनेवाले भूत स्वयंही मिडियम को ऊंचा कर रखते हैं जिससे उससमय भूत तो नहीं दिखाई देता वरन 'मिडियम' वायुमें अधर तैरता हुआ मण्डल में बैठनेवालों को दिखाई देताहै । यही प्रयोग भारतवर्ष में योगी करसकते हैं परन्तु उनमें किसी प्रकार इन्द्रियों की ठगाई या नजरबन्दी नहीं होती । गुप्तविद्या की विशेष क्रियाओं से गुरुत्वाकर्षण का प्राकृतिक खिंचाव योगी अपने शरीरके ऊपर या किसी दूसरी वस्तुपर कर उसे अटका सकते हैं, जिससे वह स्वयं अथवा वह वस्तु अत्यंत सरलता से हवा में अधर रह सकती है ।

इस प्रयोग के आधारसेही 'अटलान्टीस' और हिन्दुस्तान के प्राचीन समय में बड़े २ हवाई जहाज हवा में अधर रहकर तैरा करते थे । फिर 'साइक्लोपियन' और 'पीरेमीडो' के पुलों में अत्यन्त बड़े २ पत्थर कि जिनका पृथ्वी से ऊपरको उठना

किसी भांति अबतक भी समझमें नहीं आता वहभी इसही प्रयोग के आधार से उठाये गये होंगे ।

(२४) वायु में प्रकाश दिखानेका प्रयोग—भी अत्यन्त चमत्कार उत्पन्न करनेवालों से कामलोक की शक्तियों के धारण करने के द्वारा अत्यन्त सरलता से होसकता है । अनेक प्रकारके प्रकाश कुछही नहीं, बरन् केवल ईथरों में होतीहुई पृथक २ भांति की लहरों के होने के कारण जो मनुष्य 'ईथरों' में पृथक २ प्रकार की लहरें किस प्रकार से कीजाती हैं यह जानताहो वह किसीभी स्थानपर जैसा चाहे वैसा प्रकाश उत्पन्न करसकता है इस में कुछ नई बात नहीं ।

(२५) हाथ में अग्नि पकड़ने का प्रयोग—गुप्तविद्या के जाननेवाले सरलता पूर्वक करसकते हैं । यह प्रयोग बहुत प्रकार से कियाजाता है परन्तु उसकी साधारण रीति यह है कि विशेष क्रियाओं से हाथके ऊपर अत्यन्त सूक्ष्म ईथरों को अपने हाथमें रोक रखते हैं कि जिससे अदृश्य होते हुएभी उसके भीतर से अग्नि की उष्णता का प्रवेश नहीं होसकता और उस हाथसे बिना किसी दुःखके धकधकाता हुआ लोहा या अंगारा कोईभी—जलता पदार्थ पकड़ा जासकता है ।

(२६) कीमियां—तांबे को सोना या पारे को चांदी करनेके प्रयोग को कीमियां कहते हैं। इस सुधरेहुए समय में वहमसे भरी हुई बहुतसी बातों में कीमियांही मुख्य है। आज कलके शिक्षित मनुष्य विना समझेही यह मान बैठते हैं कि ठग साधुओं के हाथ की चालाकी के अतिरिक्त कीमियां कुछ हैही नहीं, वह अपने वहमी बाप दादाओं की मूर्खतापर कि जो कीमियां के यथार्थपन को मानते थे हँसते हैं परन्तु जिन्हों ने गुप्तविद्या की ओर कुछ भी ध्यान दिया है उनकी दृष्टि में यह बात विपरीतही जान पड़ती है। स्थूलभुवन के पदार्थ जो सात अवस्थाओं में बँटे हैं, देखो प्रकरण दूसरा) उनमें का सब से सूक्ष्म विभाग अर्थात् पहिले वर्ग के 'ईथर' के समस्त परमाणु एकही समान हैं ऐसा पहिले कहआये हैं, उन्हीं परमाणुओं के पृथक २ बनाव से पृथक २ रूप रंग और गुणवाली वस्तु अस्तित्व में आती हैं। संक्षिप्त यह है कि स्थूलभुवन की असंख्य पृथक २ वस्तु केवल इन 'ईथरों' केही पृथक २ बनावों से बनी हैं, और ऐसा होनेके कारण दृढ़रूप में रहे हुए किसी भी पदार्थ को जो किसी रीति से पहले वर्ग के ईथर के रूप में पृथक कियाजाय और उसही ईथर को पीछे पृथक बनाव से दूसरे किसी दृढ पदार्थ के रूपमें

स्थिर किया जासके तो फिर पीछे से तांबे को सोने के रूप में या पारे को चांदी के रूप में लाया जासकता है ऐसेही जगत् में के किसी दूसरे पदार्थ को जानतेहुए पदार्थ के रूप में बदलना कुछ कठिन काम नहीं है ।

(२७) 'रीपर्कशन' नामक प्रयोग का स्पष्टीकरण करके हम भुवर्लोक अथवा 'अस्ट्रलप्लेन' का वर्णन पूराकरेंगे । स्थूल-उपाधि से पृथक होने के पीछे भी जब कामलोक में फिरते हुए कामतत्त्व की सूक्ष्म उपाधि के ऊपर किसी प्रकार का चिन्ह या आघात पहुँचाया जाताहै तब स्थूलउपाधि के उसही भागपर उस-ही प्रकार का चिन्ह अथवा आघात होता है, उसको 'रीपर्कशन' कहाजाता है । आगे कहेहुए वायुके रूप में प्रगट होनेवाले पि-शाचों के सम्बन्ध में भी यही बनाव बनता है । जब उस वायुके शरीर के ऊपर घाव कियाजाता है तब उस वायु के रूप में प्रगट होनेवाले मनुष्य की स्थूल उपाधि के ऊपर भी वही घाव स्वयं प्राप्त होता है । इस प्रयोग का स्पष्टीकरण लहरों के सम्बन्धी नियमों केही आधार पर है । कामरूप और स्थूल उपाधि के बीच लोह चुंबकका सम्बन्ध सदैव से है इस कारण कामरूप के ऊपर जब किसी भी प्रकार का प्रभाव डाला जाताहै तब उस भाग में

जिस प्रकार की लहरें उत्पन्न होती हैं उसही प्रकार की लहरें लोह चुम्बक के सम्बन्ध द्वारा स्थूल उपाधिके भी उसी भाग में होती हैं और उसके परिणाम के अनुसार उसके ऊपर भी उसही प्रकार का प्रभाव होता है ।

❀ सातवां प्रकरण ❀

॥ कर्म ॥

शो०—इस विचित्र सृष्टि में असंख्य जीवों को सुख, दुःख, जन्म मरण आदि किस नियम के अनुसार मिलते हैं उसका कृपा करके स्पष्टीकरण कीजिये ।

थि०—जब कोई मनुष्य दूसरे के साथ अपनी तुलना करके अपनी अवस्था के ऊपर गंभीरता से विचार करताहै तब उसके मनमें यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि भाग्य कुछ है या नहीं ? लाखों मनुष्यों को इस बातसे भ्रम उत्पन्न होता है और वह बहुधा नीचे मेंके दो अनुमानों मेंसे एक को मानते हैं ।

जिसने लखपती के घर अथवा सुखी मां बाप के पेट से जन्म पाया है और उनकी समस्त इच्छा पूरी होती हैं, वह जो चाहैं सो कर सकते हैं ऐसी अवस्था में स्वयं को देखकर भाग्य तो कुछ

हैही नहीं और हम जैसा करते हैं वैसा होता है. यह अनुमान ऊपरकी प्राकृतिक रीतिसेही होताहै। दूसरी ओर से जो दरिद्र कि दुःखी मां बापके यहां उत्पन्न हुआ है वह जब चढती अवस्थावाले मनुष्यों के साथ अपनी बरोबरी करताहै, तब वह अपने को प्रत्येक रीति से बंधन में पड़ा समझता है, और अपनी इच्छानुसार सुख न मिलसकने के कारण जब अपने पर विना कारण ही अन्याय होता देखता है तथा अपनी अपेक्षा अल्प बुद्धिवाले और पापै बुद्धिवालों को अपने से अधिक सुख भोगता हुआ देखता है तब उसके ध्यान में यह आताहै कि सृष्टिमें भला बुरा सब कुछ ईश्वर की इच्छानुसारही होताहै और ईश्वरहीकी कृपासे मनुष्य सुखी या दुःखी होताहै तथा भाग्य के अतिरिक्त कुछ हैही नहीं; यह अनुमान ऊपरकी प्राकृतिक रीतिसेही होताहै। अब इन दोनों बातोंके ऊपर धीरज से विचार करनेपर जान पड़ता है कि जो ऐसा समझते हैं कि भाग्य कुछ हैही नहीं और जैसा हम करते हैं वैसाही होता है, वह एक मुख्य बात केऊपर ध्यान लाना भूल जाते हैं और वह यह है कि समस्त जन्म सुख या दुःख में बीतने का मूलकारण उसका धनवान या दरिद्र के यहां जन्म पाना है और वह तो किसी के इच्छानुसार होताही नहीं,

तो फिर पीछे से दरिद्र के यहां जन्म पाया हुआ दरिद्री और धनवान मां बाप के पेटसे जन्म पानेवाला धनवानहीं होवे ऐसा उनके हाथ में कभी नहीं रहता । इसकारण सब कुछ अपनेही हाथ में है और भाग्य कुछ हैही नहीं ऐसा मानना इस अनुभवसे विपरीत तथा बुद्धिसे भी विरुद्ध प्रमाणित होता है । और दूसरी ओर जो ऐसा मानाजाताहै कि सब कुछ ईश्वरकेही कियेसे होताहै और सबके भाग्य को ईश्वरही बनाता है ऐसा कहनेवाले भी एक बातको ध्यानमें रखना भूल जातेहैं कि सृष्टि में एक सुखी और दूसरा दुःखी होताहै यदि ऐसा केवल ईश्वर की इच्छासेही होता हो तो फिर ईश्वर को न्यायी होनेके बदले अन्यायी होना चाहिये कि जो बात ईश्वर में होही नहीं सकती । इसकारण ईश्वर अपनी इच्छानुसार सुख दुःख सबके भाग्य में लिखडालता है ऐसा मानना भी भूल और बुद्धि से विपरीत है । संक्षेप बात यह है कि भाग्य को कुछ नहीं मानना जितना भूलसे भराहुआ है उतनाही ईश्वर के बनाए हुये भाग्य के अनुसार सबकुछ मानना भी भूलसे भराहुआ है । यथार्थ बात इन दोनों अनुमानों से पृथकहै । भाग्य है, इसमें तो कुछ संदेहही नहीं परन्तु उसका बनानेवाला प्रत्येक मनुष्य स्वयंही है । मनुष्य जानता नहीं परन्तु अनजा-

नपने से अपने भाग्य को वह स्वयं अपने हाथसेही बनाता है। जिस नियम के आधार से यह भाग्य बनता है उसको कर्म का नियम कहाजाता है। इस नियमकेही आधार से प्रत्येक मनुष्य को सुख, दुःख, जन्म, मरण आदि की प्राप्ति होती है, अर्थात् सुख, दुःख आदिक अवस्था प्रत्येक मनुष्य अपनेही हाथसे प्राप्त करता है। यह इस रीति से प्रमाणित हुआहै कि जो कर्ता होता है वही भोक्ता होता है।

प्रकृति में सब कुछ नियमानुसारही होता है। अकस्मात् या बिना कारण के कुछभी नहीं होता बरन उस नियम का दास होजाने का कारण अपनाही अज्ञानपन है। जहांतक प्रकृति का नियम जानने में आता है वहांतक अपनी स्वतन्त्रता बढ़ती जाती है और सृष्टि में अमुक नियम किसप्रकार से चलता है यह समझलेने से उसके चक्कर से छूटजाने की संभावना रहती है इतनाही नहीं बरन वह नियम अपने अधिकार में आजाता है। सृष्टि की रचना अद्भुत है। इसके सब नियम बनाये हुए साँचेकी समान समानरीति से काम कियेजाते हैं। देशकाल के कारण उनका कुछ फेरफार नहीं होता। अमुक परमाणु में 'हाइड्रोजन' 'आक्सीजन' को मिलाकर उष्णता देने से अंत में पानी उत्पन्न होता है

यह जानकर फिर चाहे जिस समय और चाहे जिस स्थानमें इसही नियम के अनुसार काम कियाजाय तो अंत में फल वही उत्पन्न होगा । यदि ऐसा नहो तो तत्कालही समझलेना चाहिए कि दोनों के मिलान करने में कुछ हमारीही भूल होगी । परन्तु ऐसा विचार नहीं करना चाहिए कि इस स्थान पर प्रकृति के नियमकी भूलहुई क्योंकि वह सदैवही बिना भूलचूक के अपना काम किये जाती है इसका भलीप्रकार से निश्चय होचुका है । ग्रह आदि सदैव नियमानुसारही चाल चलते हैं और किसी समय धीरे से या शीघ्रता से नहीं चलते, इसही कारण अमुक समयमें ग्रहण आदि पड़ेंगे ऐसा निश्चय पहिले सेही करलिया जाता है । इसही प्रकार सबही नियमों को समझना चाहिए ।

हमारे कार्य यदि प्रकृति के नियमों को ध्यान में रखकर किये जावें तो उनका परिणाम अपनी धारणा केही अनुसार होना चाहिये परन्तु यदि उसके विपरीत परिणाम आवे तो प्रकृतिकी भूल चूक अथवा कचाई नहीं बरन अपनीही भूल अथवा अज्ञानपन समझना चाहिये । प्रकृति अपने को नहीं फँसाती क्योंकि उसमें नियमानुसारही सब कुछ हुआ करताहै केवल हमी अज्ञानपनसे अपने को फँसातेहैं इसही कारण अपने निश्चयसे विपरीत फल फलताहै ।

ज्ञानके परिमाण सेही शक्ति और स्वतन्त्रता मिलतीहै और ऐसा करनेसे जब सर्वज्ञता हो तो स्वयंही सर्व शक्ति मानता भी होतीहै

फिर जैसे इस स्थूलभुवनके ऊपर सब नियम बिना फेरफारके समान रीति से अपना काम किये जाते हैं वैसेही ऊपरी भुवनों के ऊपरभी उनके सम्बन्धी नियम व्यवहारमें कियेजातेहैं सर्वभुवन एकही परब्रह्म के बीचमेंहै इसकारण सबके ऊपर एक समानही रीति से समस्त नियमोंका सम्बन्ध होताहै। वह सम्बन्ध किस रीतिसे होता है यह जाननेके पहिले मनुष्य जातिके विचारोंसे पृथक२ भुवनों के ऊपर कैसा प्रभाव होताहै इसको जानने की आवश्यकता है।

मन की क्रियाशक्ति है। मानसिक भुवनों के ऊपर मानसिक चित्र उत्पन्न करती है। इसप्रकार से उत्पन्नहुए मानसिक चित्रों को मनुष्य शब्दके रूप में अनुवाद करके दूसरे पर प्रगट करता है, जब दूसरे के कान में वह शब्द पड़ताहै तब तत्कालही उस को पुनर्वार वह मानसिक चित्रों में बदल डालता है। अर्थात् उस के समझने में वह बात आती है। उदाहरणकी रीति पर जब हम घड़ी के शब्दको उच्चारण करते हैं तब सुननेवाले के मनमें घड़ी का मानसिक चित्र उत्पन्न होताहै और तभी वह समझ सकताहै इसप्रकार स्थूलभुवन के ऊपर एकके मानसिक विचारों को दूसरे

के जानने निमित्त शब्दरूप मेंसे निकलना पड़ता है, कि जिससे मानसिक चित्रोंका शब्दों में बराबर अनुवाद न होनेसे या उस शब्द से पीछे सुननेवाले के मन में उन्हीं मानसिक चित्रों के न उत्पन्न होनेसे कुछके बदले कुछ समझने और भूल चूक होनेकी संभावना रहती है अब विचार करने से जब मन में मानसिक चित्र उत्पन्न होते हैं तब उन मानसिक चित्रों में लहरें उत्पन्न होती हैं और उन लहरों से निचले कामलोक के सूक्ष्म पदार्थ मेंभी उसही प्रकार की लहरें उत्पन्न होकर विशेष आकार प्रगट होता है कि जिसको मानसिक आकार कहाजाता है। इस मानसिक आकार में जिस प्रकार की लहरें चलायमान होती हैं उसही प्रकारके रंग उस में उत्पन्न होते हैं, और जो रंग उस मानसिक आकार में उत्पन्न होताहै उसही रंग का सम्बन्धी 'अलीमंटल' उसकी ओर को आकर्षित होकर उस आकार को अपनी उपाधि के समान काम में लगाताहै अर्थात् उसमें भरीहुई जिन धारणाओं से विचार किया जाता है उन्हीं धारणाओं के अनुसार वह बर्ताव करता है।

कामलोक में रहेहुए असंख्य 'अलीमंटल' मुख्य सातरंगों में के किसी एकके सम्बन्धी होते हैं और उनके साथ सम्बन्ध करने के निमित्त रंगों की भाषा काम में लानी पड़ती है। अमुक प्रकार

के रंग कागज के ऊपर पड़ने से या दूसरी रीति द्वारा उत्पन्न करने से अमुक प्रकार के 'अलीमेंटलों' के ऊपर अमुक प्रकार का प्रभाव कर सकते हैं । ऐसा करनेसे मंत्र तथा रंगोंका ज्ञान प्रगट नहीं होता; क्योंकि इससे 'अलीमेंटलों' को अधिकार में रक्खा जासकता है अब विचार भले या बुरे जैसे होते हैं उसके अनुसारही उसमें प्रवेशित हुए 'अलीमेंटल' भी भली या बुरी रीति का वर्त्ताव करते हैं । तथा जिस धारणासे विचार किये गयेहों तथा जिस प्रकार के विचार किये गयेहों उसके अनुसारही मानसिक आकार पृथक २ रंगों वाला होता है ।

जिन पवित्र धारणाओं से पवित्र विचार किये गयेहों उनसे उत्पन्नहुए मानसिक आकार जिन रंगोंके हों उन्हीं रंगों के सम्बन्धी 'अलीमेंटल' उस ओर को आकर्षित होजाते हैं और उनमें प्रवेश करके कामलोकमें एक स्वतंत्र जीवकी समान विचार करनेवाले की धारणा के अनुसारही पवित्र प्रभाव करते हैं । तैसेही जो बुरी धारणाओं से बुरे विचार किये गयेहों तो उनसे उत्पन्न हुए मानसिक आकार जिस रंगके होंगे उन्हीं रंगों से सम्बन्ध रखनेवाले 'अलीमेंटल' उनमें प्रवेशित होते हैं और कामलोक में एकस्वतंत्र जीवकी समान कियेहुए विचारों की धारणा के अनुसारही वे बुरा

प्रभाव करते हैं । क्रोध से लाल रंगका मानसिक आकार उत्पन्न होताहै और उसमें आकर्षित हुआ 'अलीमंटल' एक बुरी नाश-कारक शक्ति के समान स्वतंत्रता से बर्ताव करता है । विश्वदृष्टि वालों को मानसिक आकार और उसका रंगभी दिखाताहै । उत्पन्न किये हुए मानसिक आकार का उसके उत्पन्न करनेवाले के साथ लोह चुम्बक सम्बन्ध रहताहै जिससे एक समय अस्तित्वमें आया हुआ 'अलीमंटल' उसके उत्पन्न करनेवालेके समीप पुनर्वार उसही विचारके करानेका यत्न करताहै, और जैसे २ एक विचार बारंबार कियाजाता है तैसेही तैसे उत्पन्नहुए 'अलीमंटल' अधिकसे अधिक बलवान होताजाता है और फिर बहुत समय तक जीवित रहकर भला या बुरा प्रभाव करता है ।

शो०—अब विचार और मानशिक आकार आदि के साथ कर्म का क्या सम्बन्ध है सो कहिये ।

थि०—प्रत्येक मनुष्य अपने विचारों सेही अपने को कर्म के जालमें घेरलेता है ऐसा समझना चाहिये । विचारों में समाईहुई हानियों का विचार न होनेके कारण मनुष्य अपने मनमें भले बुरे सब विचार सुखसेहीं आने देता है । अब ऐसे विचारों से उत्पन्न हुए 'अलीमंटल' अपने बनानेवाले के ऊपर दबाव कर उससे

पुनर्वार उन्हीं बिचारों को कराते हैं कि जिसका अज्ञान मनुष्यों को ध्यान न होनेसे वह उसमें होतेहुए रुकावका यत्न करने के वदले वारम्वार उन्हीं बिचारों को उत्पन्न होनें देतेहैं और उसका फल यह होताहै कि एकही बिचारको दोवार करनेसे मनुष्य स्वयं उत्पन्नहुए 'अलीमेंटल' के अधिकार में आजाता है और वह बुरे बिचार पीछे उसकी इच्छा के विपरीत होजाते हैं इस प्रकार भले या बुरे बिचारों के बंधन में वह पड़जाता है, उसका ही नाम कर्म है। जिसका करनेवाला स्वयं और जिसमें बंधनेवाला भी स्वयंही है। जिस बुरे बिचारों को उसने एक समय छोड़ा था वही बिचार अज्ञानपन से वारम्वार कियेजाने के कारण उनमें स्वयंही बँधजाता है। फिर बुरे बिचारों से अंत में बुरा कार्य होजाता है कि जिसका कड़वाफल भोगने के समय वह दुःखी होता है दुःख भोगते समय उसको अपने पापसे छूटने की इच्छा होती है और फिर ऐसे बुरे कार्य न हों और बुरे बिचार न आवें इसके निमित्त अवसे सावधान रहने का यत्न करताहै परन्तु उत्पन्नहुए कर्मों के अत्यंत वलवान होने के कारण अर्थात् बहुत समय से वैसी टेव पड़ी रहने तथा 'अलीमेंटल' के दवाव से आरंभ में वह अपने यत्न में निष्फल होता है अर्थात् उसकी इच्छाके वि-

रुद्ध बुरेही विचार आजाते हैं अथवा बुरेही कार्य होजाते हैं, परंतु बहुत समयतक वहां श्रम कियेजाने से अंतमें मनके बुरे विचारों की रोक होसकती है और ऐसा करने से उन 'अलीमंटल' को आश्रय न मिलने के कारण उनका नाश होजाता है और वह मनुष्य फिर पहिले की समान उन बुरे विचार और बुरे कर्मों से छूटजाता है। इस वात से यह समझना चाहिये कि प्रत्येक मनुष्य अपने विचारों से अपने मन को पृथक् २ रीति से चलाता है कि जिससे उसकी स्वतंत्रता भंग होती है और फिर उन चालों के बंधन में आजाने से उन्हीं विचारों और उन्हीं कर्मों के करनेको उसे विवस होना पड़ता है।

कामलोक में भले तैसेही बुरे असंख्य 'अलीमंटल' अपना जीवन बढ़ाने के निमित्त, जिस मनुष्य में भले या बुरे विचार उत्पन्न होतेहीं उसके आस पास उसके सम्बन्धी 'अलीमंटलों' को आकर्षित कर घूमा करते हैं। ऐसा होने से प्रत्येक पवित्र मनुष्य के आस पास समूहके समूह पवित्र 'अलीमंटल' फिरा करते हैं और उनकी सहायता द्वारा उस मनुष्य के हाथ से इच्छा न होने परभी भलेही काम होते हैं। इसके बिपरीत पाप बुद्धिवाले मनुष्यों में से उत्पन्न होतेहुए पापी विचारों से तमोगुणी 'अलीमंटलों' को

पोषण मिलता है इस कारण वे समूहके समूह उसके आसपास घूमा करते हैं और उनकी चालके दबाव द्वारा अभाग मनुष्यों से अद्भुत २ पाप कर्म होजाते हैं । बहुत समय तो शांत होने के पीछे जब वह विचार करता है तब ऐसा बड़ा पाप उससे किस प्रकार हुआ इसके निमित्त वह आश्चर्य करता और अनुमान करता है कि किसी पापात्माने उसको इस काम के करने को ललचाया होगा परन्तु यथार्थ में देखाजाय तो पापात्मा कुछभी नहीं है वरन केवल उसकी 'ओरा' में रहेहुए पापी मानसिक चित्रों के खिंचाव से आयेहुए बुरे 'अलीमंटल' हैं कि जिनके द्वाराही उसने ऐसा काम कियाहै । इस प्रकार मनुष्य अपने विचारों द्वारा अज्ञानतासे अपने को कर्म के बंधनों में बांधता है ।

इसके अतिरिक्त जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपने अनेक के विचारों से अपने को नाना प्रकार के कर्मों में घेर लेताहै । उसही प्रकार पृथ्वी के पृथक् २ जात के जीव भी अमुकप्रकार की टेव से उत्पन्न कियेहुए कर्मों में अपने को घेर लेते हैं । अमुक देश के मनुष्यों में अमुकप्रकार की टेव होने से उस स्थान पर उत्पन्न हुए समूह उससे 'अलीमंटलों' के साथ मिलकर उस देश के सब मनुष्यों के ऊपर एक समानही प्रभाव करते हैं । जिससे उन सब

के मन विशेप प्रकार के प्रभाव से बँधगयेहुए देखाई देते हैं और उस देश की भली या बुरी टेवें उसे दिखाये विना नहीं रहते।

फिर जब किसी विशेप स्थानपर अत्यंत पापी मनुष्यों की संख्या बढ़जाती है तब उनके विचारों से उत्पन्नहुए समूह के समूह नाश कारक 'अलीमंटल' कामलोक में कुत्हल मचा देते हैं, और उसके परिणाममें रेल, भूचाल, वायु या वर्षाका तूफान, समुद्र का तूफान तैसेही भयंकर रोग आदि होते हैं कि जिनको हम अज्ञानपन और सूक्ष्म बुद्धि के कारण ईश्वर का कोप समझते हैं।

शो०—अब एक अवतार में उत्पन्न कियेहुए बिचारों से मन को जिस प्रकार की चाल दीगई है वही चाल दूसरे अवतार में किस प्रकार से फिर मिलती है, अथवा वह एक अवतार के कर्म दूसरे अवतार तक किस प्रकार से सम्बन्ध रख सकते हैं इसका स्पष्टीकरण कीजिये।

थि०—स्थूलउपाधि के मरण से एक अवतार के संचित कर्मों का अंत नहीं आता और ऐसा होने का कारण क्या है यह जानने के निमित्त विचारसे उत्पन्न हुए प्रभाव का सम्बन्ध कुछ थोड़ा बहुत जानने की आवश्यकता है। मन में जो विचार उत्पन्न होते हैं उन सब से तीन पृथक २ परिणाम होते हैं कि जिनके

द्वारा केवल थोड़ेही श्रम से कर्म का स्पष्टीकरण भली प्रकार से हो सकता है।

१—विचारके उत्पन्न होनेसे मानसिक शरीरमें लहरें उत्पन्न होती हैं फिर उसमें आकार उत्पन्न होता है कि जिसको मानसिक पिक्चर (चित्र) कहाजाता है। वह विचारे विचार करनेवाले मनुष्य की ओरा में मरणपर्यंत रहता है।

२—मानसिक चित्रसे जो लहरें उत्पन्न होती हैं उससे निचले कामलोक के सूक्ष्म पदार्थ में उसही प्रकार की लहरें होकर वहां एक स्वतन्त्र आकार प्रगट होता है कि जिसमें 'एलीमेंटल' के प्रवेश होनेसे ऊपर कहे अनुसार भला या बुरा एक स्वतंत्र जीव कामलोक में दिखाई देता है और वह 'एलीमेंटल' कियेहुए विचार की चाल के अनुसार भला या बुरा प्रभाव करता है।

३—जिसप्रकार मानसिक चित्र से निचले कामलोक में लहरें उत्पन्न होती हैं उसही प्रकार ऊपरके सूक्ष्म आकाशतत्त्व में भी उसही प्रकारकी लहरें उत्पन्न होती हैं जिससे यहां भी एक अत्यन्त सूक्ष्म आकार उत्पन्न होता है कि जो सदैव लिखी जाती हुई हिसाब की किताब के समान मनुष्यों के कर्मों का हिसाब लिखने की रीति आकाशमें रहता है तथा सृष्टिके समस्त जीवोंके

भले बुरे विचारों से या सम्बन्धों तथा कर्मों से उत्पन्नहुए समस्त आकार आकाशिकभुवन में प्रतिविम्ब की समान सदैवही रहते हैं कि जिससे सृष्टि के कर्मोंका समस्त हिसाब आकाशतत्व में देखने को मिलता है, और वह ऊपरसेही आकाशिकभुवन के कर्मों की गठन करनेवाले लीपिका नामक फरिश्तों की पुस्तक कहीजाती है

यद्यपि विचार से उत्पन्न होतेहुए यह तीनों परिणाम कठिनाइयों से भरेहुए हैं परंतु तौभी उनको समझकर ध्यान में रखने की आवश्यकता है इस कारण उनको नीचे के चित्र में एकत्रित किया है ।

मनुष्य के विचार में उत्पन्न होतेहुए मुख्यतीन परिणाम।

भुवन—	पदार्थ	परिणाम
आकाशिक भुवन	आकाश	(१) कर्मों के हिसाब की समान सदैव के रहनेवाले सूक्ष्म आकाशिक चित्र।
कामलोक	ऊपरीकाम-लोक	(२) विचार करनेवाले की ओरा में मरणतक रहने-वाले मानसिक पिक्चर।
	निचलाकाम लोक	(३) मानसिकचित्र की लहरों से निचले कामलोक में उत्पन्न होतेहुए 'अलीमं-टल' कि जो स्वतंत्रता के विचार के कारण बुरा परि-णाम लाते हैं।

अब ऊपरी तीनों परिणामों के ऊपर ध्यान करने से जानोगे कि अवतार में उत्पन्न कियेहुए समस्त विचार, मानसिक चित्र की समान ' ओरा ' में रहने के कारण मरने के पीछे भी समस्त अवतार के मानसिक चित्रों सहित जीव कामलोक में प्रवेशित होते हैं।

वहां कामिक स्वभाववाले मानसिक चित्रों को छोड़ कर वह देव-खन में जाते हैं और वहां समस्त मानसिक चित्र एकके पीछे एक अस्तित्व में आते हैं जिससे जीव अपनीही इच्छानुसार सब कुछ होता देखकर अत्यन्त सुखी होता है। देवखन में वह समस्त मानसिक चित्र बनकर मनके साथ एकत्रहो सबका एक भाग होजाता है जिससे मन में समस्त अवतार के समस्त अच्छे स्वभाव प्रवेश कहते हैं और उन सब स्वभावों सहित जीव पुनर्वार अवतार लेने के निमित्त कामलोक में प्रवेश करताहै। तदनन्तर वह पीछे छोड़ आयेहुए कामिक स्वभाव नए अवतार को कामरूप की समान मिलते हैं जिससे उन भले बुरे स्वभावों से बन्धन पायेहुए जीव को नये अवतार में अमुक रीतिकाही बर्ताव करने में विवश होना पड़ताहै। और वही कर्मका बंधन कहलाताहै

इस ऊपरसे नीचे की आठ बातों पर ध्यान रखने की आवश्यकता है कि जो प्रत्येक अभ्यासी को कंठाग्र रखना चाहिये।

(१)—प्रत्येक विचार से तीन पृथक २ परिणाम होते हैं। एक तो आकाश में सदैव के रहनेवाले आकाशिक चित्र, दूसरे विचार करनेवाले की " ओरा " में मरन पर्यंत रहनेवाले मानसिक चित्र और तीसरे कामलोक में उत्पन्न होतेहुए " अलीमेंटल "।

२—विचारसे जो 'अलीमन्टल' उत्पन्न होते हैं वह विचार करनेवाले मनुष्य के साथ उसकी 'ओरा' में रहेहुए मानसिक चित्र के द्वाराही सम्बन्ध रखसकते हैं।

३—पवित्र मनुष्य की 'ओरा' में बुरे मानसिक चित्र न हो न सही बुरे विचारों से उत्पन्न होतेहुए या वाममार्गी जादू से उत्पन्न करनेमें आते हुए बुरे 'अलीमंटल' उसके साथ सम्बन्ध में नहीं आसकते और किसी प्रकारका आघात भी नहीं करसकते।

४—पापी मनुष्य की 'ओरा' में पवित्र मानसिक चित्र न होने के कारण उसके सम्बन्ध में भले 'अलीमंटल' नहीं आसकते वरन वह सदैव बुरेही 'अलीमंटलों' से घिरा रहता है।

५—विचार से उत्पन्न होतेहुए 'अलीमंटल' थोड़े या बहुत समय में नाश होजाते हैं परन्तु उससे उनके उत्पन्न करनेवाले मानसिक चित्रों का नाश नहीं होता। वह उस मनुष्य के मरण पर्यंत उसके 'ओरा' में रहते हैं इस कारण उनको कुछ भी बाहरसे या मनमें से अनुमोदन मिलने के साथही उस में लहरें उत्पन्न होकर तत्कालही नया 'अलीमंटल' उत्पन्न होताहै।

६—प्रत्येक मनुष्य की ओरा में उसके समस्त मानसिक चित्र रहते हैं इसकारण 'ओरा' देखनेवाला भूत, भविष्य और वर्तमान

की समस्त बातोंको प्रत्यक्ष देख रहाहो इस प्रकारसे प्रगटकर देताहै ।

७—प्रत्येक मनुष्य की चाल चलन उसके भले या बुरे स्वभावों तथा उसकी ईर्षा और मूर्खता आदि का आधार केवल इकट्ठे मिले मानसिक चित्रों के ऊपरही है ।

८—समस्त अवतार में उत्पन्न किये हुए मानसिक चित्र 'ओरा' में रहने के कारण, जैसे छोटे २ डोरों की पिंडी होतीहै वैसेही देवखन में वह सब गुँधजाते हैं, तदनन्तर वे मानसिक चित्र अस्तित्व में रहने के बदले जीवकी समान मनस के साथ एकत्रहो जीवकेही एक भाग होजाते हैं; जिससे प्रत्येक जीव स्वयंही अपना बनाने वाला है, ऐसा प्रमाणित होताहै । जिसप्रकार मानसिक चित्र प्रत्येक अवतार में इकट्ठे कियेजाते हैं उसही प्रकार का वह मनुष्य स्वयं होताहै । फिर इसरीति के होनेसे प्रत्येक अवतार में जीव अधिक सेअधिक विकशित होताजाता है, अथवा वह मनस स्वयंही अपने हाथसे प्रत्येक अवतार में विकशित होताजाता है तैसेही पृथक भांतिके स्वभाव वाला होताहै ।

शो०—एक अवतार के निचले मनस का दूसरे अवतार के निचले मनस के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता परन्तु एक अवतार के निचले मनससे उत्पन्न किये हुए कर्मों के कारण दूसरे

अवतारका निचला मनस क्यों दण्डपाताहै उसका स्पष्टीकरण करो

थि०—ऊपरी और निचला मनस एक दूसरे से पृथक नहीं है वरन सूर्य और सूर्यकी किरणों की नांई उनका सम्बन्ध है। सूर्य आकाश मेंही रहता है परन्तु उसकी किरणें पृथ्वी पर पड़ती हैं, इसही प्रकार ऊपरी मनस सदैव देवखानिके भुवन मेंही रहता है और उसकाही हाथी की सूंड़की नांई बाहर निकला हुआ एक भाग जो निचला मनस है वह कामरूप की उपाधि के स्थूलभुवन के ऊपर कर्म उत्पन्न करता है। अब निचले मनसको प्रत्येक अवतार में नई उपाधि मिलने से उसको केवल उसही अवतार की बातका स्मरण रहता है इससे प्रत्येक अवतार का निचला मनस पृथक जान पड़ता है और पिछले अवतार के निचले मनस के साथ उसका कुछभी सम्बन्ध नहीं है ऐसा ज्ञात होताहै। परंतु यथार्थ में देखाजाय तो निचला मनस कुछ हैही नहीं वरन केवल ऊपरी मनसकाही एक भाग है अथवा ऊपरी मनस के स्वयंही पृथक रूपमें होने से निचला मनस जो २ कर्म करता है वह यथार्थ में देखाजाय तो ऊपरी मनस स्वयंही करता है और दूसरे अवतार का निचला मनस जो २ दंडपाताहै वह यथार्थ में देखा जाय तो केवल ऊपरी मनस स्वयंही पृथक २ रूप में उस दंड

को भोगता है । जो दो अवतारों के बीच कुछ भी सम्बन्ध न हो तो अगले अवतारों में मिलेहुए अनुभव वर्तमान अवतारों में कभी न मिलसकें, इसकारण यह सम्बन्ध इसही से प्रमाणित होता है । जो मनुष्य बीजबोताहै वही फल इकट्ठा करता है, और जो बीज बोते समय उसके शरीर के ऊपर रहा हुआ वस्त्र फटाहो और फल इकट्ठा करते समय शरीर से पृथक होजाय तो ऐसा होने परभी दोनों समय में वह मनुष्य तो एकही है । इसही प्रकार एक एकसे पृथक जान पड़ने परभी प्रत्येक अवतार का निचला मनस केवल ऊपरी मनस काही एकभाग होने के कारण कर्त्ता और भोक्ता केवल पृथक २ रूप में प्रगट होनेवाला एकही मनस है ।

शो०—समस्त अवतार के मानसिक चित्र मरने के पीछे जीव के साथ एकत्र होजाते हैं तदनन्तर जीव दूसरे अवतार में वैसी ही प्रकृतियों से बँधकर जन्म पाता है और उसही बंधनमें रहकर उसको वही वर्त्ताव करना पड़ता है यह उसका कर्म है ऐसा समझ में आया । अब किस २ प्रकार के मानसिक चित्रों से कौन कौन से स्वभाव उत्पन्न होते हैं इसका स्पष्टीकरण कीजिये ।

थि०—जन्म से लेकर मरणपर्यंत मनुष्य भले बुरे असंख्य

विचार करता रहता है इसकारण मरने के समय वे सब इकट्ठे होकर भले और बुरे असंख्य मानसिक चित्रों समेत स्थूल उपाधि को छोड़कर कामलोक में जाता है— । प्रकृति में भली प्रकार से न्याय होता है इस कारण जानते और अनजानते में उत्पन्न हुए अत्यन्त तुच्छ विचार भी व्यर्थ नहीं जाते, वरन उनके असंख्य मानसिक चित्रों समेत जीव कामलोक में जाताहै पहिले कहआये हैं कि कामलोक का भुवन सात विभागों में बँटगया है इसकारण सब से निचले विचारों के मानसिक चित्र सब से निचले विभाग में अत्यन्त प्रगट अवस्था में रहते हैं, जिससे जबतक उनका बल नहीं निकल जाता तबतक जीवको कामलोक के उस विभाग में रहना पड़ता है । इतनाही नहीं वरन जीव अपने मन में उन सब नीच प्रकृतियों के अनुसार वर्त्ताव करताहै, जिससे अब पीछे के अवतारों में स्थूल भुवनके ऊपर उन्हीं नीच कर्मों के करने की टेव जीवमें घुसजाती है । जब उन मानसिक चित्रों का बल निकल जाता है तब वह जीव के मध्य निर्बल अवस्था में रहते हैं कि जिससे उस विभाग सम्बन्धीय पदार्थ मरनेवाले के कामरूप की उपाधियों मेंसे व्यय होतेजाते हैं और वह ऊपरी विभाग में पहुँचता है । इस प्रकार अत्यन्त तुच्छ विचारों से उत्पन्न हुए

मानसिक चित्र कामलोक के बीच अपने योग्य विभागमें अत्यन्त प्रगट अवस्था में आते हैं और उन समस्त मानसिक चित्रों के दबाव से जीव अपने मनही मनमें उसहीप्रकार के बुरे कर्म किये जाता है। ऐसाहोनेसे वे बुरे स्वभाव जीवके बन्धनमें प्रवेशित होते हैं और उन स्वभावों के परिणाम के अनुसार आगेहुए अवतारों में स्थूलभुवनके ऊपर वही बुरेकर्म उससे होजाते हैं। अब जब समस्त कामलोकसे सम्बन्ध रखनेवाले तुच्छ स्वभावों से उत्पन्नहुए मानसिकचित्रों का बल निकलजाता है तब कामलोक की समस्त उपाधियों से छूटकर जीव देवखन में जाता है।

शो०—जीव जब देवखनमें जाताहै तब कामलोकसे संबंध रखने वाली समस्त तुच्छ प्रकृतियों के मानसिक चित्रोंका क्या होताहै?

थि०—वह समस्त जीवों में के बीच निर्बल अवस्था में पड़े रहते हैं, क्योंकि देवखन के सूक्ष्म पदार्थों में वह प्रगट नहीं हो-सकते, परन्तु जब देवखानिक भुवन के ऊपर से अपना कार्य पूर्णहोने पर जीव फिर से अवतार लेनेके निमित्त कामलोक में से निकलता है तब वह स्वयं बाहर होकर प्रगट होने के निमित्त योग्य पदार्थों को कामलोक मेंसे खैंचलेता है और उस नए अव-तार के निमित्त जीव को कामरूपनी उपाधि के समान व्यय में

आना होताहै । यहां भी प्रकृति की रचना कितनी सूक्ष्म है सो देखना चाहिये; जीव को प्रत्येक अवतार में जो कामरूप की उपाधि मिलती है उसके भले या बुरे तथा सूक्ष्म या स्थूल होनेका समस्त आधार केवल उसके अपनेही पिछले अवतारों के विचार पर निर्भर है । इस बात से यह जान पड़ेगा कि प्रत्येक मनुष्य अपने को स्वयंही जानकर या अनजानकर भली या बुरी अवस्था में लाताहै, और प्रत्येक अवतारमें उसको जो उपाधि मिलती है उसका बनानेवाला भी वह स्वयंही है ऐसा भली प्रकार से जान पड़ता है । अब पृथक २ भांति के मानसिक चित्रों से क्या २ परिणाम होते हैं इसका जानना शेषरहा ।

(१ .–किसी प्रकारकी आशा और इच्छाओं से उन कर्मों के करने की योग्यता आती है–पवित्र विचारों से उत्पन्न हुए समस्त मानसिक चित्रों समेत देवखन में जानेके पीछे जीव उन सब अनुभवों को अपने में खैंच लेनेका यत्न करताहै । ऐसा होने से प्रत्येक अवतार में जितने मानसिक चित्रों को वह देवखन में लानेको शक्तिमान होताहै उसके अनुसारही वह जीव अधिक से अधिक प्रगट होताजाता है । वह देवखन में प्रवेश करने के पीछे विशेष १ बातों से सम्बन्ध रखनेवाले सम्बन्धी समस्त मानसिक

चित्रों को इकट्ठाकर उनके ऊपर विचार करता हुआ उनमें से समस्त सारको खैंचलेता है, जिससे उन बातों से मिलती हुई मन शक्ति उसमें विकशित होतीहै । उदाहरण लीजिये जब कोई गुप्त विद्या के सीखने और प्रकृतिके भेदोंका ज्ञान मिलनेकी इच्छाओं से असंख्य मानसिक चित्रों को उत्पन्न करता है तब वह मनुष्य मरने के पीछे देवखन में उन समस्त मानसिक फिक्चरों (चित्रों) के ऊपर ध्यान करता हुआ उसही के अनुसार बर्त्ताव करता है, जिससे उन सब बातों की इच्छाओं के अनुसार करने को उसके मनस में शक्ति उत्पन्न होती है और आनेवाले अवतारमें उसकी इच्छाही के अनुसार उसको ज्ञान मिलताहै अर्थात् विकशित मन शक्ति के सहित वह जन्मपाता है । संक्षेप बात यह है कि समस्त भली आशाओं और इच्छाओं से उत्पन्नहुए मानसिक चित्र देव-खनमें फिर जाकर मनसमें उन आशाओं के अनुसार बर्त्तन की शक्ति के समान एकत्रित होजाते हैं, जिससे प्रत्येक अवतार में मनस अधिक से अधिक विकशित होताजाता है ।

मानसिक चित्रों के इसप्रकार बदलजानेसे अथवा उनके मनस में एकत्र होजानेसे वह मानसिक चित्रकी समान अस्तित्व भोगते हुए बंधमें पड़े रहते हैं परन्तु उससे उत्पन्नहुए आकाशिक चित्र

तो कर्म के हिसाब की समान सदैव आकाश में रहते हैं।

अब कर्म के नियमानुसार एक अवतारमें कोईभी पवित्र आशा और इच्छाओं से दूसरे अवतारों में उन आशा और इच्छाओं के पूर्ण करने की मनसमें योग्यता अथवा शक्ति आने के कारण जो कोई पवित्र पुरुष विश्वदृष्टि अथवा विचार करनेकी या किसी दूसरी भी शक्ति के धारण करने की इच्छा रखता हो तो उसमें विजय पाने के निमित्त उसके मनमें सदैव वैसा करने की आशा तथा वह शक्ति मिलने की दृढ़ इच्छा होनी चाहिये कि जिससे उत्पन्न हुए समस्त मानसिक चित्र देवखन में जाकर उस शक्ति रूप मनस में एकत्र होजाने के कारण दूसरे अवतार में अपनी इच्छा पूर्ण करने का बल तथा वैसी साधना करनेवालों के बीच वह जीव जन्मपाने को शक्तिमान होताहै।

(२) वारंवार कियेहुए विचारों से स्वभाव में उसही प्रकार की प्रकृतियों का बंधान होताहै। तुच्छ बातों का विचार बारंबार कियेजाने के कारण उसका परिणाम यह होताहै कि उस प्रकारसे उत्पन्न कियेहुए मानसिक चित्र उस प्रकारकी तुच्छ प्रकृतियों में गुथजाते हैं तदनन्तर मनस और कामरूप के बँधाव में आने के कारण भविष्यमें जीव को उन्हीं तुच्छ विचारों के करनेका स्वभाव

पड़जाता है जिससे जब वह किसी भी भारी कामके ऊपर विचार करना चाहता है अथवा वह एकाग्र चित्त रखकर किसी भी वात का मनमें स्पष्टीकरण करने बैठता है तब उसकी विना इच्छा के भी तुच्छ विचार आजाते हैं और एकाग्र चित्त रखना उसके पक्ष में अशक्यसा होपड़ताहै इसकारण प्रत्येक समझदार पुरुष और मुख्यकर प्रत्येक गुप्तविद्या के अभ्यासियों को मनके ऊपर पूर्ण अधिकार रखकर प्रत्येक बुरे विचारों से मनको रोकने के निमित्त सावधान रहने की आवश्यकता है ।

(३)—किसी भी कर्म के करने की इच्छा रखने पर उसके परिणाम के समान कर्मों के करने की आवश्यकता पड़ती है किसी भी कर्म के करनेकी दृढ़ इच्छा रखने पर जब पार्थिव दबावों के कारण उस कर्म से पार नहीं उतरा जासकता तब उन इच्छाओं से जो मानसिक चित्र उत्पन्न होते हैं, वह काम के पवित्र होनेपर देवखन में प्रगट होते हैं अर्थात् जीव वहां अपने मनमेंही उस काम को पूर्ण करता है ऐसा होजाने के कारणही अवसर मिलने पर वह कार्य उसके हाथसे स्थूलभुवनपर होताहै । जो २ मानसिक चित्र देवखन में कर्मरुप से प्रगट होते हैं अर्थात् जिन २ मानसिक चित्रों के अनुसार जीव देवखनमें अपने कर्म होता देखताहै वह २

कर्म समय आनेपर स्थूलभुवन के ऊपर भी विनाहुए नहीं रहते । इसही प्रकार तुच्छ और नीच विचारों को भी समझना चाहिये । दूसरे का माल कैसे माराजाय अथवा मेरे हाथमें कैसे आवे यह विचार वारम्वार करने से इकट्ठे मिलेहुए मानसिक चित्र ठोसरूप धारण कर चोरी के कर्मों के अनुसार प्रगट होते हैं अर्थात् ऐसे बुरे विचारों के फल से उस जीव को चोरी करने को विवश होना पड़ता है । संक्षेप वात यह है कि जिन २ कार्यों के करने की एक अवतार में इच्छा रक्खी जाती हैं उन इच्छाओं को पूरी करने के निमित्त प्रकृति उस अवस्था में जीव के छूटने पर उसकी उन्हीं इच्छाओं के अनुसार कार्य करवाने को विवश करती है । अथवा उस एक अवतार में अमुक काम करने की इच्छा रखने से कर्म के नियमानुसार दूसरे तीसरे अथवा किसी भी अवतारमें उन कामों के करने की आवश्यकता पड़ती है ऐसा समझना चाहिए ।

[४] सृष्टि में अनुभवों के मिलने से जीव में अनुभवशक्ति-अधिक होती है । यह हमको देखने में आता है कि प्रत्येक मनुष्य को संसार में उसके कर्मानुसार अनुभव मिलजाता है वह अनुभव अनेक प्रकार का होताहै । अवतार लेने के पीछें जीव को संसार मेंसे बहुतकुछ सीखने और प्राप्तकरने का अवसर मिलता है ।

सुखकी आशा रखकर अमुक वस्तु के प्राप्त करने का यत्न करते हुए उसको उलटा दुःख में किस प्रकार पड़ना होता है, उसही प्रकार भली रीतों के वर्त्ताव से पहिले दुःख लगने परभी पीछे से किसप्रकार सुख मिलता है यह सब वह सीखता है। तैसेही सृष्टि में होती हुई हार, जीत, जय, पराजय, विना कारणही भय का रखना, रक्खीहुई आशाओं का निष्फल होना, स्वयं बलवानहूं माननेपर काम करनेपर अपनी निर्बलता जनाना, मैं बुद्धिमानहूं ऐसा समझकर भी समय आनेपर अपनी अज्ञानता प्रमाणित करना, हारजाने पर भी धीरज रखना, जीतने पर निरहंकार रहना आदि संसार में समस्त वातों के मिलेहुए अनुभवों का मानसिक चित्रों के ऊपर देखन में जीव मनन करता है और उन समस्त अनुभवों के संयोग मेंसे साररूप अनुभवपन को खींच निकालता है जिससे वह पहिले की अपेक्षा अधिक बुद्धिवान और अनुभव वाला होकर फिरसे जन्म पाता है। संक्षेप यह कि एक अवतारमें मिलेहुए अनुभव दूसरे अवतारमें बुद्धिमानी से बदलजाते हैं।

(५) दुःख उत्पन्न करनेवाले अनुभवों से अन्तःकरण का शब्द बढ़ताजाता है। जैसे साधारण अनुभवों से बुद्धिमानी मिलती है तैसेही दुःख उपजानेवाले अनुभवों से अन्तःकरण का

शब्द विकाशित होता जाता है । प्रकृति के नियम न जानकर जीव अज्ञानपन से प्रत्येक इच्छित वस्तु के मिलने का यत्न करता है और उसमें बहुधा प्रकृति के नियमों से उलटी ही रीति का वर्त्ताव होने के कारण वह निष्फल होता है इसही से सुखकी आशा रखनेपर उसे दुःख प्राप्त होता है । इस प्रकार बारंबार उसमें विवेक अथात भले बुरे के पृथक करने की शक्ति आती जाती है और प्रकृति के नियमों के विरुद्ध होकर सुख मिलने का यत्न करने से अन्त में दुःखही होता है ऐसा उसकी समझमें आताहै। इसप्रकार का अनुभव मिलने से दूसरे अवतार में जब किसी बुरी वस्तु के ऊपर लोभ आजाने के कारण उससे सुख मिलनेकी आशा रखकर उस ओर जीव खिंचता है तब समस्त अवतारों के अनुभवों का स्मरण रखनेवाला उसका ऊपरी मनस कि जिसके साथ उसके अन्तःकरण रूपी पुलका सम्बन्ध है वह थोड़े समय के निमित्त काम मानसिक भुवनके ऊपर प्रगट होकर जीव को उस कामके करने से निषेध करता है, यदि जीव उस पवित्र शब्द के ऊपर ध्यान लाता है तो अवश्यही उस मार्ग में जाने से बच जाता है । इसही का नाम अन्तःकरण का शब्द है । साधारण मनुष्यों के निश्चयानुसार वह कुछ ईश्वर अथवा किसी देव दूत

का शब्द नहीं है वरन केवल अपनेही ऊपरी मनसका शब्द है। ऐसा होनेपर भी ईश्वरकाही शब्द है ऐसा समझकर उसके वशमें हो उसके अनुसारही बर्तना चाहिये यह उस समय के निमित्त सब से उत्तम उपाय है ऐसा निश्चय जानना चाहिये।

अबतक साधारण रीति से भला बुरा क्या है अर्थात् प्रकृति के नियमों का अनुसरण क्याहै और उससे विरुद्ध क्या है इसका बहुधा प्रत्येक मनुष्य को अनुभव होने के कारण साधारण रीति से समझमें आनेवाले पाप कर्मों में पड़ने के समय मनुष्यको अंतःकरण के शब्द की द्वारा चैतन्यता मिल सकती है; परन्तु बहुत सूक्ष्म और कठिनाइयों में डालनेवाली बातों के सम्बन्ध में भले बुरे के पृथक करनेका अनुभव मनस में अत्यन्तही थोड़ा होनेके कारण उन बातोंके सम्बन्ध में भला और बुरा क्या है यह अंतःकरण का शब्द नहीं कहसकता, इससे उस समय विचार करके वर्त्ताव करनेपर भी जीव धोखा खाता है और भला समझकर बुरा कर डालता है। परन्तु ऐसा होनेके पीछे अन्त में जब उसको दुःख होता है तब उससे उसका अनुभव बढ़ता व उसके आगे बढ़नेकी सम्भावना रहती है और मिलेहुए अनुभव के मनसमें एकत्र होनेके कारण फिर से जब जीव उस प्रकार की भूल करनेपर तत्पर होता

है तब अन्तःकरण के द्वारा मनम प्रगट होकर उसको सावधानकर उस मार्ग से जाने में रोकसकता है । इसप्रकार दुःख उपजानेवाले अनुभवों से अन्तःकरणका शब्द अस्तित्व में आता है ।

ऊपर कहे अनुसार पृथक २ भांति के मानसिक चित्रोंसे कर्म के नियमानुसार जो पृथक २ परिणाम होतेहैं उनको ध्यानमें रखने के निमित्त नीचे लिखा जाता है ।

(१)—किसी भी प्रकार की आशा और इच्छाएं रखने से परिणाम के अनुसार उन कर्मों के करने की योग्यता अथवा शक्तियें आती हैं ।

(२)—बारंबार के कियेहुए विचारों से परिणाम के अनुसार मनस में अथवा उसके स्वभाव में उस २ प्रकार की चाल अथवा स्वभाव उत्पन्न होते हैं ।

(३)—किसी भी कर्म के करनेकी दृढ़ इच्छा रखनेसे परिणाम के अनुसार उसकार्य के करने को विवश होना पड़ताहै ।

(४)—संसार के प्रत्येक अनुभवों से परिणाम के अनुसार जीव में अनुभव शक्ति बढ़ती जाती है ।

(५)—दुःख उत्पन्न करनेवाले अनुभवों से परिणाम के अनुसार अन्तःकरण का शब्द बढ़ता जाता है ।

इस बात से कर्म के नियमों का आधार देखने पर जान पड़ता है कि प्रत्येक मनुष्य अपने विचारों से अपने में (१) न्यून या अधिक योग्यता-(२) पृथक २ भांति की प्रकृतियें (३) भले बुरे कर्मों के करने को विवश होना-(४) न्यून या अधिक अनुभव शक्ति (बुद्धि)—(५) पाप पुण्य से सँभलकर चलने वाली न्यून या अधिक शक्ति आदि अपनेही हाथसे लासकता है। प्रत्येक अवतार में मनुष्य जैसी अवस्था में स्वयं जीता है उस अवस्था में उसको कोई नहीं लाता वरन वह स्वयंही जानकर या अनजानकर अपने को उसमें लाता है।

कर्म के नियम समझने से अपने को निश्चय हुआ है कि जो सुख दुःख अपने को होते हैं वह किसी दूसरे के पाप से या दूसरे की भूल से नहीं होते वरन केवल अपनेही पाप या पुण्य के फलों के अनुसार होते हैं, तथा फिर पीछे लौटने का मार्ग भी अपनेही हाथ में है ऐसा समझने से जीवको अत्यंत धीरज अत्यंत प्रसन्नता तैसेही दुःख रोकने की शक्ति आती है और फिर जो जाल उसने अपनी अज्ञानतासे फैलाया है उसमें से अब पीछे लौटने के यत्न को अपनी बुद्धिके बलसे खोजता है।

शो०—अब यह तो समझ में आगया कि जीव अपने अगले

जन्म के कर्मों के कारणही अधिक या न्यून बंधन पाताहै परंतु अब दरिद्र या धनवान मा बाप के पेट से अथवा भले या बुरे मा बापसे जन्म लेने तैसेही विशेष देश, विशेष जातिके मनुष्यों में और विशेष कुटुम्ब में जन्म लेने में कर्म के नियमों का किसप्रकार से लगाव होताहै सो स्पष्टीकरण कीजिये।

थि०—देवखन के मानसिक चित्रों मेंसे अनुभव को लेकर अधिक बलवान हुआ जीव जब अवतार लेनेके निमित्त पीछे कामलोक में उतरता है तब उस भुवनके सम्बन्धी तुच्छ मानसिक चित्र जो अबतक जीव में निर्बल से पड़ेथे वे सब प्रगट होकर कामलोक मेंसे अपने २ सम्बन्धी पृथक २ विभाग के स्थूल या सूक्ष्म पदार्थों को खैंचलेतेहैं कि जिससे जीवको अपने कियेहुए विचारोंके परिणाम के अनुसार अपने योग्यही भली या बुरी कामरूप की उपाधि नए अवतार के निमित्त मिलती है।

अब कामरूप की उपाधि मिलने के पीछे उसके कर्मानुसार नए अवतार का जो छायाशरीर मिलता है उससे सम्बन्ध में कितनी एक आवश्यक बातों का जानमाहै। समस्त जीवों को उन के कर्मानुसार फल देनेका काम, अपने विचार में न आने योग्य बड़े २ देव कि जिनको सात लीपिका तथा चार महाराजा कहते

हैं उनसे होता है इन लीपिकाओं तथा महाराजाओं का भान इतनी चढ़ती श्रेणी का है कि जैसे एक मनुष्य के मस्तिष्क में कितनी २ शक्तियें हैं तथा उसका भान किसप्रकार का है इसका कुछ एक अंशभी जानने में नहीं आता, तैसेही लीपिकाओं तथा महाराजाओं का भाव कितनी उच्च श्रेणी का है सो विचार अपने को नहीं आसकता लीपिकाओं, तथा आकाशिक चित्रों के ऊपर से प्रत्येक मनुष्य के कर्मानुसार उसके निमित्त उचित छायाशरीर का आकार उत्पन्न करते हैं और उसमें अवतार लेनेवाले जीव अपनी प्रत्येक प्रकृति के अनुसार प्रगट होनेको चार महाराजा ईथर के सूक्ष्म पदार्थ उसमें बांधते हैं। इसप्रकार से तइयार हुए छायाशरीर को उसमें अवतार लेनेवाले मनुष्य के कर्मानुसार फल भोगने के निमित्त विशेष देशमें, विशेष जाति के मनुष्यों में तैसेही विशेष प्रकृतिवाले मा बाप की ओर जानापड़ता है। तदनंतर उसमें स्थूल शरीर का बंधाव होनेसे उसमें जीव अपने कर्मानुसार प्रगट होसकताहै। सृष्टिमें करोड़ों मनुष्योंका अवतार इतनी अधिक सूक्ष्मतासे करनेके निमित्त कितनी अधिक बुद्धिमानी और कितनी अधिक शक्ति इन लीपिकाओं तथा महाराजाओं में होनी चाहिये सो अपने से नहीं कहा जा सकता।

शो०—करोड़ों मनुष्यों का कर्म सात लीपिका तथा चार महाराजा एकही समय में किसप्रकार ध्यान में रखसकते होंगे सो ध्यान में नहीं आता ।

थि०—जिस प्रकार साधारण मनुष्य एक समय में एक की अपेक्षा अधिक वातों पर ध्यान नहीं रखसकते परन्तु बुद्धिवान मनुष्य एकही समय में पांच सात बातों पर ध्यान रखसकते हैं । उसही प्रकार यह अत्यन्त बड़े महात्मा एकही समय में सात के बदले सात करोड़ या उससे भी अधिक बातोंपर ध्यान रखसकते हैं इसमें कुछभी आश्चर्य नहीं है ।

अब प्रत्येक अवतार में जीवको जो छायाशरीर मिलताहै उस के सम्बन्ध में इस बातका जानना आवश्यकीयहै कि प्रत्येक अवतार में जीवको असंख्य प्रकार के मानसिक चित्रों से उत्पन्न होने के कारण तैसेही प्रत्येक अवतार में दूसरे अनेक प्रकार के जीवों के सम्बन्ध में आकर कर्म करने के कारण एक अवतार के समस्त कर्मों का फल दूसरेही अवतार में भोगलिया जाय ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि जिन २ मनुष्यों के सम्बन्ध में आकर उसने कर्म किये हों उन सबके सम्बन्धी कर्मों का फल भोगना एकही अवतार में होना असम्भव है, और इस कारण प्रत्येक अवतार के कर्मों

मेंसे जितना एक अवतार में भोगसके उतनाही भोगले उसके यो-
ग्यही छायाशरीर जीवको मिलता है, और उसकर्म काही फल
जिस देशमें, जिसप्रकार के मनुष्यों में जिस कुटुंब में और जिस मा
बापसे भलीप्रकार मिल सकताहो उसके अनुसारही जीव को जन्म
लेना पड़ताहै । इसप्रकार का बनाव बनने के कारण प्रत्येक अव-
तार में उसके हिसाब से थोड़ा २ कर्म इकट्ठा हुआ करता है,
और प्रत्येक मनुष्यका हिसाब भोगने के उपरांत पीछे रहाहुआ
जो कर्म होताहै उसको संचितकर्म (इकट्ठाहुआ कर्म) कहते
हैं । प्रत्येक अवतार में मनुष्य अपने संचितकर्मों में अधिकता
करता जाता है और उसमें जितना भाग एक अवतार में पूरा करने
के निमित्त अथवा भोगने के कारण उसको मिलताहै उसका नाम
प्रारब्ध है । प्रत्येक अवतारमें जन्म से लेकर मरण तक जितना
कर्म भोगनेका निश्चय किया जाताहै वही प्रारब्ध है । जन्मपत्री
अथवा ललाट या हाथकी रेखाओं के ऊपर से जो कुछ देखने में
आता है वह केवल पिछले जन्म के सम्बन्धका अथवा प्रारब्धके
सम्बन्धकाही है । अमुक मनुष्य का संचितकर्म (इकट्ठाहुआकर्म)
कितना है इसका पता पानेका कोई भी साधारण उपाय नहीं है ।
केवल आकाशमें इकट्ठेहुए आकाशिक चित्रोंके देखनेकी जिनमें

देव अस विकशित हो उनसेही संचित कर्म जाने जासकते हैं।

जिसप्रकार रेशम का कीड़ा अपने आसपास स्वयंही उत्पन्न कियेहुए तंतुओं में लिपटकर गुँथजाता है उसही प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपने विचारोंसे अपने संचित और प्रारब्धकर्मको उत्पन्न कर उसके बन्धन में स्वयंही आजाताहै। बड़े घर में जन्म लेकर और धन दौलत से सुखी होना या दरिद्र के यहां जन्म लेकर समस्त जन्म मजूरी करके बिताने का कारण भी अगले कर्मों से उत्पन्नहुआ प्रारब्धहै। जैसे कर्म कियेजाते हैं वैसेही जीवकी दशा होती है। उदारता से या किसी दूसरे धर्म के काम से दूसरे को सुखी कियाजाय तो उसके फल के अनुसार स्वयं सुख की अवस्था मेंही जन्म पाता है।

शं०—परंतु जो एकही प्रकार का कर्म पृथक २ धारणाओं से कियाजाय तो उसका फल कैसा होना चाहिए ?

थि०—कर्म के नियम के सम्बन्ध में एक यह आवश्यकीय बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इन नियमों का लगाव ऊपर के तैसेही नीचे के समस्त भुवनों के ऊपर एक समानही रीति का होताहै। इसबात के ध्यानमें रखने से अत्यन्त कठिनता का समाधान होताहै। कोई भी कर्म करने के समय केवल स्थूलभुवनके

ऊपरही कर्म होताहै ऐसा न समझना चाहिए बरन उस समय कामरूप में जो आवेश होताहै उससे कामिक भुवनके ऊपर कर्म उत्पन्न होताहै और उससमय मनमें जैसे भले या बुरे विचार हों उनसे मानसिक भुवनके ऊपरभी कर्म उत्पन्न होताहै ऐसे एक काम के करते समय बहुधा तीन भुवनों के ऊपर मनुष्य कर्म उत्पन्न करता है और इससे उसका फलभी स्थूलउपाधि, कामरूप और मनस के सम्बन्ध में पृथक २ आता है। यह बात नीचे के उदाहरण से भलीप्रकार समझ में आजावेगी। मानलो कि तीन मनुष्यों ने एक २ लाख रुपये की उदारता की, कि जिससें उन प्रत्येक की उदारतासे मनुष्यों को एकही समान लाभहुआ। अब मानों कि पहले मनुष्य ने जो लाख रुपया दिया वह केवल उस ने पवित्र हृदय से दूसरोंका भलाहो इसधारणा सेही दिया; दूसरे ने जो लाख रुपया दिया वह केवल इस धारणा से कि उसका नाम जगत्में विख्यात होवे और मनुष्योंकी दृष्टि में मानपावे अथवा उसके बदले में उसको कोई उपाधि मिले; तीसरे ने जो रुपया दिया उसने इस धारणासे कि कुछतो दूसरों का भला होवे और कुछ अपने को सन्मान मिले। अब इन तीनों का हेतु पृथक २ होने पर भी तीनों की उदारता से मनुष्यों का एकसमानही लाभ

मिलने के क़ारण कर्म के नियमानुसार इन तीनों को स्थूलभुवन के ऊपर एक समानही फल मिलना चाहिये, और इससे दूसरे अवतार में तीनों को एक समानही सुख मिले ऐसी अवस्था में जन्म लेना चाहिए। जिस उदारताके कर्मद्वारा इन तीनोंसे सहस्रों मनुष्यों को एक समानही सुख मिला उसके बदले में स्थूलभुवन के ऊपर उसके फलके अनुसार समानही सुख मिलना चाहिये, अथवा स्थूलभुवन के ऊपर इन तीनों का कर्म एक समानही होनेसे तीनों को फल भी एक समानही मिलना चाहिये; परन्तु मानसिक भुवन के ऊपर उन तीनों के कर्म पृथक होने से मनस के सम्बंधमें तीनों का पृथकही पृथक परिणाम आता है। पहिले मनुष्य ने केवल दयालु हृदय से दूसरे का भला होने के अभिप्राय सेही धर्म किया था इसकारण उस समय के कियेहुए विचारों से उत्पन्नहुए पवित्र मानसिक चित्रमरने के पीछे मनसमें एकत्र होजाने से दूसरे अवतारमें वह अधिक दयालु और अधिक परोपकारी स्वभाव का होता है और फिर उसको ऐसेही भले कामों के करनेका अवसर मिलता है। दूसरा मनुष्य कि जिसका क़ारण अपने अभिप्राय (स्वार्थ) का था उसके स्वार्थपने के स्वभाव दूसरे अवतार के कामरूप में बंधान पानेसे वह अधिक स्वार्थी स्वभावों के साथही

जन्मपाता है और फिर उसके हाथ से ऐसे भले कामों के होनेकी संभावना नहीं रहती, तैसेही स्थूलभुवन के ऊपर धन दौलत आदि के मिलने का अच्छा फल, उसके लोभी और स्वार्थी स्वभावों के कारण वह पाहिले मनुष्य की समान सुख संतोष को नहीं भोग सकता। इसही प्रकार तीसरे मनुष्य को भी होताहै। अपने कारण के अनुसार वह भी भले बुरे स्वभावों को लेतेआता है इसप्रकार तीनों मनुष्यों के भविष्य में अन्तर पड़जाता है। इस बात से यह समझ में आवेगा कि कर्म से पृथक २ भुवनों के ऊपर पृथक २ परिणाम होते हैं, इसकारण कोई धन से सुखी होनेपर भी मन का दुःखी देखने में आता है, तैसेही कोई पैसा रुपया या देह आदि से दुःखी होने परभी मन से सुखी और सदैव प्रसन्नता से देखा जाता है। यह सब पृथक २ प्रकार के कर्मोंकाही फलहै ऐसा समझना चाहिये। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकारके कर्मों से नानाप्रकार के परिणाम होते हैं कि जो थोड़े नीचे के अनुसार हैं।

(१)-एक अवतार में जो अपनी योग्यताके अनुसार दूसरों का भलाकरते हैं वह ऐसे कर्म के फलानुसार दूसरे अवतारमें जगत का अधिक भला करसकने की अवस्था में जन्म पाते हैं।

(२)-एक अवतार में अपना तैसेही दूसरे के भला करनेका

अवसर मिलने परभी जो मनुष्य ऐसा नहीं करता उसको उस अवसर के खोदेनेके दंड के समान दूसरे अवतारों में अत्यंत दुर्भाग्यावस्था के बीच जन्म लेना पड़ताहै । इसकारण जिन २ वस्तुओं को वह करना चाहता है वह पार्श्विक दवावों के कारण अथवा अपनी उस उपाधि में कुछेक न्यूनता होनेके कारण नहीं करसकता और गँवाए हुए अवसर के दंड के बदले में उसकी सब इच्छा निष्फल होती हैं तैसेही वह यदि किसी भलेकार्य को भी करना चाहताहो तोभी उससे पार नहीं उतर सकता। बहुधा ऐसे कर्मों के चक्करमें आयेहुए मनुष्य दूसरों को बुद्धि देसकते हैं और उस बुद्धिके अनुसार चलनेवाले मनुष्य विजयभी पाते हैं परन्तु जब उसही बुद्धिके अनुसार स्वयं चलते हैं तब प्रत्येक रीति में विघ्न आपड़ताहै और वह सदैव निष्फल होताहै ऐसा होता हुआ देखकर वह बड़े आश्चर्य में आताहै परन्तु उसका यथार्थ कारण स्वयं उसके पाप कर्मही हैं सो वह विचार नहीं करता ।

(३)—जब कोई मनुष्य अपने आधार में पड़ेहुए किसी निराधार सम्बंधी को रोताछोड़ स्वयं सुखसे दिन बिताता और उस को भूखों मारता या दरिद्रावस्थामें ही रहने देता है तब दूसरे किसी अवतार में वही रोता छोड़ा हुआ जीव उसी अपने सम्बन्धी के

यहां एक लड़के की समान जन्म पाताहै ! वह जीव जब पूर्वजन्म के कर्मों के फलानुसार थोडेही समय में मृत्यु पाकर मां बापका घर उजाड़ उन्हें रोता छोड़ता है तब प्रकृति ने उसको ऐसे दुःख में क्यों डाला सो नहीं समझसकता, और अपने पड़ोसियों के बहुत से लड़कों में से एकके भी छीन लेने के बदले अपने एक लड़के को छिनवाकर वह सदैव दुःख में पड़ारहता है इसहीकारण वह सदैव प्रकृति को धिक्कारा करता है ।

(४)–फिर जिस कुटुम्ब में उपदंश प्रमेह या रक्तपित्त आदि का रोग चलाआता है उस कुटुम्ब में जन्मपायेहुए निर्दोष बच्चों को वह रोग हुआ देख मनुष्य अचंभित होताहै परन्तु जन्मपाने वाले जीव को अपने अगले अवतारों के पापकर्म के कारणही उस कुटुम्ब में और उन मा बापके पेटसे अवतार लेनेको विवश होना पड़ता है और वह बच्चा मा बाप का नहीं वरन अपनेही पाप कर्मों का दण्ड भोगता है ।

(५)–जब ज्ञान प्राप्त होनेवाली पुस्तकें लिखी जांय या ज्ञान के फैलानेवाली बक्तृता देकर सृष्टि की सेवा कीजाय, तब उस परोपकारी मनुष्य को उन कर्मोंके फलानुसार अधिक ज्ञान मिलने वाली बुद्धि आती है, तैसेही उसकी इच्छानुसार ज्ञान मिलने के

साधनों में वह जन्मदाता है । इसकारण दूसरे का भला कियेजाने पर उसका स्वयंही भला होता है ।

इसप्रकार इस देखपड़ती हुई सृष्टि में सबको सुख, दुःख, जन्म मरण आदि कर्मानुसारही मिलते जाते हैं ।

शो०—अब प्रारब्धकर्म से उत्पन्न होतेहुए सुख दुःखआदिकों को भोग उसमें से छूटने के बदले जीव नये कर्म किस प्रकार से उत्पन्न कर उसमें फिर बन्धन पाताहै इसकी स्पष्टीकरण कीजिये ।

थि०—प्रारब्धकर्म से जो सुख दुःख सबको मिलते हैं उसके सम्बन्ध में एक बात यह स्मरण रखनी चाहिए कि कर्म के देवता कर्म के नियमों से पार उतारने के निमित्त प्रत्येक मनुष्यको अपने अस्त्र की समान काम में लाते हैं, अथवा वह एक दूसरे के भले बुरे कर्म के फलको एक दूसरे के द्वारा देते हैं ऐसा होनेसे साधारण अवस्था में हम बहुधा एक दूसरे के कर्मों का हिसाब पूर्ण करने के निमित्त कर्म को पुतले की समान बर्ताव करतेहुए भी, प्रत्येक काम अपनी इच्छाहीं से करते हैं ऐसा कुविचार अपने मन में होनेके कारण जब कोई दूसरा मनुष्य अपने को दुःख देता है तब उस मनुष्यने कर्मके दवाव के कारणही अपने को प्रारब्ध के फलके अनुसार अपने को दुःख दिया ऐसा अपनी समझ में नहीं

आता वरन उसके ऊपर विना समझेही क्रोध करते रहतेहैं। सृष्टि में कोई भी मनुष्य दूसरे की भूल या दूसरे के पापके निमित्त कभी भी स्वयं दुःख नहीं पहुँचाता और जब पहुँचाताहै तब उसको बिना उसका वदला मिले नहीं रहता। सूक्ष्म बुद्धिसे देखनेपर ऐसा जान पड़ता है कि अमुक मनुष्य ने मुझे दुःख दिया परन्तु जो यथार्थमें देखाजाय तो उसको अपनेही कर्मानुसार जो दुःख उसको मिलना चाहिये वह उसी मनुष्य के द्वारा उसको मिला है।

इसप्रकार जगत में प्रारब्ध की गठन होती है यह समझकर ज्ञानी को उचित है किसी मनुष्य के ऊपर क्रोध नहीं करे, दूसरे ने अपना अपमान किया या दुःख दिया वह अपनेही बुरे प्रारब्ध का कडुवा फल होगा ऐसा समझकर वह दुःख बिना प्रसन्नतापूर्वक बिताने पर उन बुरे कर्मों का परिणाम आजाने के कारण उसका अंत आजाताहै और उससे अपना छुटकारा होताहै; परन्तु ऐसा समझने के वदले अमुक मनुष्य ने बिना कारणही दुःख दिया ऐसा मान उसके ऊपर क्रोध करने से उलटा अपने कोही मूर्ख बनना पड़ताहै, क्योंकि पूर्व जन्म के बुरे कर्मों का कडुवा फल चुपचाप भोगकर उससे छूटने के बदले क्रोधसे या बड़े २ करने से नया क्रीयमाण अथवा कर्म उत्पन्न होताहै कि जो संचितमें इकट्ठा

होकर दूसरे अवतार में बुरे प्रारब्ध की समान आमिलता है। इसप्रकार अज्ञानपन के कारण एक कर्म से छुटकारा होनेके पहिलेही हम दूसरे को प्रगट करलेते हैं, जिससे जन्म मरणके बंधन से छूटने की सम्भावनाही नहीं रहती।

॥ प्रारब्ध और पुरुषार्थ. ॥
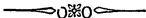
शो०—किसी का अपने को कुछ देनाभी अपने कर्म के फलानुसारही होताहै सो हम किसप्रकार कहसकते हैं और प्रत्येक मनुष्य प्रारब्ध से बँधाहुआ होनेपर भी क्या २ कर्म उस प्रारब्ध के दबाव से करता है और क्या अपनी इच्छानुसार करताहै यह किसप्रकार जानाजावे?

थि०— कर्म के तीन भाग हैं, एक संचित अथवा बहुत २ अवतारों का संचय या कि इकट्ठा हुआ कर्म—दूसरा प्रारब्ध अथवा उस संचित कर्म में से अमुक अवतार में भोगने के निमित्त तइयार हुआ एक भाग—और तीसरा क्रीयमाण अर्थात प्रारब्ध का फल भोगते समय उत्पन्न करने में आतेहुए नये कर्म कि जो सब संचित में मिलकर दूसरे अवतारों में पके हुए प्रारब्ध की

समान अमिलते हैं। अब इन में से प्रारब्ध और क्रीयमाण का गठन कैसा है सो कहिये।

जो २ कर्म अपनी इच्छा विना स्वयंही होते हैं वह सब प्रारब्ध के दबाव के कारणही होते हैं और जो हम अपनी इच्छा से करते हैं वह सब अपनी ही इच्छा से या केवल बिना कारण ही अकस्मात् से हुए कर्म हैं ऐसा मानना भूलसे भराहुआ और मिथ्या है। सृष्टि के सब नियमों का प्रत्येक स्थिति या काल में एक समानही रीति से लगाव होता है। संसार में बड़े २ कर्म प्रारब्ध के फल के अनुसारहीं होते हैं और रात दिन होतेहुए तुच्छ कर्म अपने सम्बन्धमें अकस्मात् से या केवल अपने मस्तिष्ककी बुद्धि के अनुसार होते हैं, ऐसा मानना प्रकृति के नियम से विपरीत है। गुरुत्वाकर्षण हाथी से लेकर कीड़े तक में तैसेही बड़े पहाड़ से लेकर एक सूक्ष्म परमाणु तक में एक समानही रीति का लगाव होता है तो फिर प्रारब्ध के नियम में भी छोटे बड़े प्रत्येक कर्मका लगाव होना चाहिये, ऐसा मानने को विवश होना पड़ता है। तैसेही फिर जन्मपत्री या हाथकी रेखाओं से होनहार बातों के सूक्ष्म विषय भी जाने जाते हैं। इस बात से ऐसा जान पड़ता है कि कर्म के नियमों का सदा एक समानही रीति से ल-

गाव होने के कारण मनुष्य का हाथ जितनाही छोटा, बड़ा, भला, बुरा, तुच्छ, भारी कामों पर चलता है उन सब कर्मों में थोड़ा बहुत प्रारब्ध का दबाव भी सदैवही रहता है ।

शो०—तो फिर यह प्रमाणित हुआ कि हम सबप्रकार से प्रारब्ध फेदी दासहुए और अपने हाथमें कुछभी न रहा । अब जो सब कर्म प्रारब्धके दबाव के कारणही होते हों तो फिर अपने को पुरुषार्थ करनेका स्थान नहीं रहता है ।

वि०—यथार्थ में प्रारब्ध का दबाव सदैव कर्म के ऊपर रहताहै पुरुषार्थपर नहीं, इस कारण कर्मसे बँधनेपर भी पुरुषार्थके विषय में हम छुटेहुएहैं और उसहीके ऊपर अपने क्रीयमाणका आधारहै

प्रारब्ध के दबाव में आकर अमुककर्म करने के समय मनकी चाल कैसी थी वह पुरुषार्थ के ऊपर आधार रखती है और वही अपना क्रीयमाण है । उदाहरण की समान हम पहिले कहे के अनुसार तीन मनुष्यलें, जिन्होंने प्रारब्ध के फलके अनुसार अपने हाथसे एक २ लाख रुपया धर्म कार्य में लगाने का निश्चय किया है । अब जब उस कर्म के करने का समय आया तब उन तीनोंने प्रारब्ध के पुतले की समान लाख २ रुपया निकाला । अब उनमें उनकी ऐसी धारणा है कि यह काम हमको

करना चाहिये; ऐसा समझकर उन्होंने किया, परन्तु यथार्थ में देखाजाय तो वह काम पूर्वजन्म के भले कर्मों के परिणाम के अनुसार प्रारब्ध के दबावसेही हुआ है । अब मानो कि एकने यह कर्म इस विचारसे किया कि दूसरों का भला हो. दूसरेने इस आशा से किया कि मुझे बदला मिले और तीसरेने यह विचारकर कि बिना इस काम के किये छुटकारा नहीं है अप्रसन्नता से किया तो इन तीनों का क्रीयमाण एक दूसरे से पृथकही होताहै कि जिसका वह पूर्ण उत्तरदाताहै । फिर यह क्रीयमाण संचित में इकट्ठा होकर दूसरे अवतार में प्रारब्ध की समान आमिलता है इसकारण उन तीनों के भविष्य में अंतर पड़जाताहै । इसप्रकार उत्पन्न हुआ क्रीयमाण अपने पुरुषार्थ के ऊपर रहता है, इस कारण अब पिछले अवतारों का प्रारब्ध अथवा भविष्य स्वयंही अपने हाथमें है ऐसा सहलता से समझ में आसकता है । इसके सम्बंधमें अधिक स्पष्टीकरण होने के निमित्त हम एक उदाहरण देते हैं । मानलो कि दो मनुष्य प्रारब्ध के दबाव के कारण झूठ बोले। उनमें से एक तो स्वयं अल्पबुद्धि होनेके कारण प्रसन्नहुआ और फिर से अवसर पाकर-झूठबोल किसी के ठगने का विचार किया । इस के विपरीत दूसरेमें अधिक बुद्धि होने के कारण वह

पछताया और अब से इसप्रकार नहीं होना चाहिये ऐसा ठहराव उसने मनमें किया ऐसा होनेपर यद्यपि दोनों ने प्रारब्ध के दबाव से एक समानही कर्म किया, परन्तु उनमें से पहिले मूर्ख ने उससे छूटने के बदले बुरा क्रीयमाण उत्पन्नकर फिर से अपनेको उसही प्रकार के कर्मों में बँधाया और दूसरे बुद्धिवानने पश्चात्ताप कर अच्छे क्रीयमाण को उत्पन्न किया इसकारण वह कर्म के बंधनों मेंसे छूटा और उन कर्मों का वहीं पर अंतहुआ । इसप्रकार के क्रीयमाण करनेवाले प्रत्येक जीवको स्वतंत्रा होने के कारण प्रारब्ध के बंधन में होतेहुए भी ज्ञानानुसार पुरुषार्थ कर अपने भविष्य को भला या बुरा करसकता है ।

शो०—परंतु जो क्रीयमाण कर्म के निमित्तही प्रत्येक मनुष्य उत्तरदाताहो और कर्म नहीं किये जावें अथवा जो समस्त भले बुरे कर्म प्रारब्ध के दबावसेही किये जाते हों तो फिर खूनीको खूनके कारण या चोरको चोरी के कारण दण्ड नहीं होना चाहिये तैसेही होतेहुए बुरे कर्मों के रोकने का यत्न करनेकीभी आवश्यकता नहीं।

थि०—जो क्रीयमाण कर्म के निमित्त प्रत्येक मनुष्य को उत्तर दाता मानले तो फिर प्रारब्ध के पुतले की समाम खूनी खूनकरे अथवा चोर चोरी करे तोभी उसको दंड तो होनाही चाहिये ऐसा

हमको मानना पड़ेगा क्योंकि उसको ऐसे बुरे प्रारब्धों का मिलना केवल उसकेही अगले अवतारों के क्रीयमाण का परिणाम है कि जिसके निमित्त वह स्वयंही उत्तरदाताहै ।

ऊपर कहआये हैं कि समस्त कर्मों के ऊपर प्रारब्धकाही दवाव रहताहै, इसकारण ऐसा सिद्ध नहीं होता कि होतेहुए बुरे कर्मों के रोकने की कुछ आवश्यकताही नहीं । यद्यपि छोटे बड़े सब कर्मों के ऊपर प्रारब्धकाही दबाव रहताहै परन्तु इससे ऐसा न समझना चाहिये कि प्रारब्ध से होतेहुए किसीभी कर्म का रोकनाही अशक्य हैं । प्रारब्ध के भी तीन भाग होते हैं दृढ़, दृढ़ादृढ़ और अदृढ़, इसमें दृढ़ प्रारब्ध से उपजते कर्मोंको फेरा नहीं जासकता परंतु शेषके कर्म पुरुषार्थ के बलसे फेरकर न्यून किये जासकते हैं । इसके सम्बन्ध में हम आगे चलकर स्पष्टीकरण करेंगे । अभी हम केवल दृढ़ प्रारब्धकाही विचार करेंगे । यह सत्यहै कि दृढ़ पदार्थ से उत्पन्न होते हुए भले बुरे कर्म बिना हुए नहीं रहते परन्तु तौभी बुरे कर्मों के होने के समय उनसे बचने का यत्न न करना यह भूलसे भराहुआ है । यहां पर कोई यह प्रश्न करे कि जो विशेष कर्महुए बिना रहतेही नहीं ऐसा पहिले सेही निश्चय हुआहो तो फिर उन होतेहुए कर्मों के रोकने का यत्न करना और

न करना दोनोंही बराबर हैं, तैसेहीं प्रयत्न करे या न करे तो भी उनकर्मों में से छूटनाही अशक्य हो तो फिर उसमें से बचने का व्यर्थ श्रम करना यह भी भूल है। इस बातका स्पष्टीकरण नीचे के अनुसार है और उसके ऊपर प्रत्येक अभ्यासी को ध्यान रखनेकी आवश्यकता है।

दृढ़ प्रारब्धसे उत्पन्न होतेहुए कर्म किसी भी अवस्थामें या किसी भी समय विना हुए नहीं रहते, तौभी किसी कर्मके होने के समय मनकी जैसी अवस्थाहो उसके ऊपरही क्रीयमाण कर्मका आधार रहने के कारण बुरे कर्म होनेके समय जो उसके रोकने या उससे छूटजाने का प्रयत्न किया जावेतो उससे अच्छा क्रीयमाण उत्पन्न होताहै, और 'जो प्रारब्ध में है वही होगा' ऐसा मानकर बुरे कर्म होने के समय आलस्य से बैठा रहाजाय तो उससे बुरे क्रीयमाण उत्पन्न होते हैं। जो दोनों अवस्थाओं में प्रारब्ध का फल एक समानही उत्पन्न हो तौभी क्रीयमाणमें अंतर पड़ने के कारण होतेहुए बुरे कर्मों के रोकने का यत्न न करना भी भूल है। सम‌झदार मनुष्य बुरे क्रीयमाण न होवें इसके निमित्त सावधान रहते हैं और यथार्थ में देखाजाय तो यही उचित भी है। भले बुरे सब कर्म प्रारब्ध सेही होते हैं इसमें मैं क्या करूं ऐसा कहकर असा-

वधान रहनेसे असावधानताके कारण जो तुच्छ प्रकारका क्रीयमाण उत्पन्न होताहै वह समय आनेपर अधिक बुरे प्रारब्ध की समान जीवको बंधन मे डालताहै ।

दृढ़ प्रारब्ध का फल नियमानुसार मिलेही जाताहै तौ भी उन सब कर्मों को मैं अपनी प्रसन्नता सेही करताहूं अथवा वह अनजानकर भी मुझसेही होते हैं ऐसा जो विचार अपने मनमें रहता है वह मिथ्या होनेपर भी अपनी वर्तमान अवस्था के अनुसार अत्यन्त आवश्यकीय है और यह विचार रखकरही सदैव वर्ताव करना यह साधारण मनुष्योंके निमित्त तो सबसे उत्तममार्ग है । यद्यपि इस प्रकार करनेपर कर्म के नियमों में कुछ विघ्न नहीं होता तौभी स्वयंही मैं अपने हाथसे भले बुरे का कर्ताहूं यह विचार मन में होने के कारण वह मनुष्य सदैव भले कर्मों के करने का यत्न करता है तैसेही बुरे कर्मों से दूर रहने का भी प्रयत्न करता है । फिर प्रारब्धके बंधन से जब भले या बुरे कर्म होतेहैं तब वह कर्म मेरे हाथसे होगये ऐसा समझ उससे प्रसन्न होने या पश्चात्ताप करने से मनुष्य अपने क्रीयमाण को अत्यन्त उत्तम उत्पन्न करता है, जिससे भविष्य में वह अच्छे कर्मों के करने योग्य होताहै और बुरे कर्मों से छुटकारा पाताहै ।

शो०—यह तो समझ में आगया कि दृढ़ प्रारब्ध के बंधन में होतेहुए भी निकृष्ट कर्मों मेंसे छूटनेके यत्न करनेकी आवश्यकता है । परंतु दृढ़ादृढ़ और अदृढ़ प्रारब्ध से किस प्रकार का फल उत्पन्न होताहै सो स्पष्टीकरण कीजिये ।

वि०—प्रारब्ध के जो तीन भाग किये गएहैं उनमें दृढ़ प्रारब्धसे उत्पन्न होतेहुए कर्म नहीं फिर सकते । दृढ़ादृढ़ प्रारब्ध से उत्पन्न हुए कर्म अत्यन्त श्रमसे न्यून किये जासकते हैं और अदृढ़ प्रारब्ध के कर्म लौटसकते हैं । अब जो मनुष्य केवल प्रारब्ध के दबावमेंही रहकर बर्ताव करताहो तो फिर छोटे बड़े सब कर्म दृढ़ पदार्थके ही वर्ग में आकर उसको उन्हें करने को विवश होना पड़े और वह केवल प्रारब्धकाही पुतलाहोजाय परन्तु ऐसा नहीं होता इसका कारण यह है कि प्रत्येक मनुष्य के ऊपर सदैव दो खिंचावों का लगाव पड़ता है, एक प्रारब्ध और दूसरा पुरुषार्थ इसमें प्रारब्ध का खिंचाव उसके हाथ में नहीं है वरन जो दूसरा पुरुषार्थ है वह उसकेही हाथ में है । अब जब प्रारब्ध उसको विशेष अवस्था में लाकर विशेष कर्म करनेका दबाव करता है तब वह दूसरी ओर से उन अपने पुरुषार्थ को काम में लाय उसमेंसे बचजानेका यत्न करता है अर्थात् वह प्रारब्धके खिंचावसे

मिलकर प्रसन्नता पूर्वक उस कर्म को करता है । इसप्रकार सदैव उसकी प्रकृति के ऊपर दो खिंचावों की लाग पड़ती है-एक तो प्रारब्ध और दूसरा पुरुषार्थ कि जिनके परिणाम के अनुसार फल उत्पन्न होता है । जिन २ बातों में प्रारब्ध के दबाव की अपेक्षा उसकी इच्छाशक्ति का दबाव बलवान होता है वह कर्म अदृढ़ प्रारब्ध की समान वह फेर लेता है, अथवा उन दोनों खिंचाव में इच्छाशक्ति का खिंचाव अधिक होने से परिणाम उसकी ओर आता है और वह अपनी इच्छानुसार उस कर्म मेंसे छूट सकता है । जिन २ बातों में प्रारब्ध का दबाव उसको दाब सके इतनी बलवान इच्छाशक्ति उसमें नहीं होती, उन बातों के परिणाम में केवल थोड़ाही बहुत फेर फार होताहै, और वे सब परिणाम उस को दृढ़ादृढ़ प्रारब्ध की समान भोगने पड़ते हैं । तैसेही फिर जिन २ बातों में प्रारब्ध का दबाव उसकी इच्छाशक्ति के आगे कुछभी नहीं चलता उस दृढ़ प्रारब्ध में उसको इच्छा बिना भी बँधना पड़ता है ऐसा होनेसे इच्छाशक्ति के बलानुसार प्रत्येक मनुष्य प्रारब्धके बंधन से छूट सकता है ।

साधारण मनुष्यों की पवित्र मार्ग में चलनेवाली बुद्धि अत्यन्तही थोड़ी होनेसे, तैसेही विशेष रीति सेही अपना जन्म हुआ

इसका कुछ ठहराव न किये जानेसे, बहुधा वह प्रारब्ध के दबाव के अनुसारही पुतले की समान वर्तता है, जिससे उस मनुष्यको प्रारब्ध के फलके अनुसार भविष्य मेंकी वार्ता आकाशिकाचित्रोसे जन्मपत्री आदि के द्वारा अत्यन्तही सूक्ष्मता के साथ पहिलेही निश्चय किया जासकता है । इससे विपरीत जो मनुष्य केवल प्रारब्ध के दबाव के अनुसार बर्ताव नहीं करता वरन अपने निश्चय कियेहुए ठहराव के अनुसारही वर्ताव करने का यत्न करता है, वह अपने प्रारब्ध में अपनी इच्छाशक्तिके बलानुसार फेरफार करसकता है इसकारण उसके भविष्य का पहिले से निश्चय नहीं किया जासकता। इसबातसे यह सरलता पूर्वक समझमें आजावेगा कि मनुष्य केवल अज्ञानवश सेही कर्मका दास होजाताहै और ज्ञानद्वारा कर्म मेंसे छूटकर अपनी अवस्थामें जितना चाहे उतना अदल बदलकर सकता है।

जैसे एक गेंदको विशेष रीति से मारने पर अमुक दिशा सेही जाकर अमुक स्थानपर जापडता है, तो प्रारब्ध के फलकी समानही उसको चालका फल मिला; परन्तु जिस प्रकार उस गेंदको विशेष स्थान में पडने से रोकने के निमित्त उसको दूसरीबार मार देनेसे उसकी चाल फिर जाती है और अमुकस्थान पर पड़ने का

जो परिणाम निश्चय किया था वह बदल जाताहै, इसही प्रकार प्रारब्धके कर्मों से रीत्यानुसार उत्पन्न होनेवाले परिणामोंके आपड़ने से पहिले इच्छाशक्ति के बलद्वारा मनुष्य उसको फेर सकता है इसमें कुछभी संदेह नहीं है।

शो०—प्रारब्ध के नियमानुसार गठेहुए कर्मों में भी अपने पुरुषार्थ के बलानुसार फेर फार किया जासकता है, ऐसा समझ में आया, परन्तु इसप्रकार पुरुषार्थ के बलसे प्रारब्ध में फेर फार किया जासकता हो तो फिर उससे कर्म के नियम में बहुत विघ्न होजाय कि जिसका स्पष्टीकरण नहीं होसकता; क्योंकि जो एकके बुरे कर्मों से दूसरेको उसके प्रारब्धानुसार हानि होनेका निश्चय होचुका हो और वह मनुष्य जो अपने पुरुषार्थ को काममें लाय उन बुरे कर्मों को अपने हाथसे रोकसके तो फिर दूसरे मनुष्य उसके प्रारब्ध का फल किस प्रकार से पावें ? और इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपने प्रारब्ध की चाल में फेर फार करे तो फिर उसके सम्बन्ध में आनेवालों के कर्म में भी फेर फार होकर उस को जो फल मिलना चाहिये वह न मिल कर कर्म के नियम में विघ्नहुए बिना न रहे।

थि०—एक मनुष्य के भले या बुरे कर्मों से दूसरे को सुख

या दुःख उत्पन्न होकर उसको प्रारब्धका फल मिलता है, और इसही प्रकार प्रत्येक मनुष्य एक दूसरेके सम्बन्धमें आकर अपने भले बुरे कर्मों से दूसरे के उसके प्रारब्ध के फलके अनुसार निश्चय कियेहुए सुख दुःख को पाता है, इस प्रकार से कर्म का गठन होना जान पड़ताहै । परन्तु जो एक मनुष्य अपने पुरुषार्थ को काम में लाय अपने हाथसे होतेहुए किसी बुरे काम को होने से रोके तो मनुष्य को उसके कर्म के फलानुसार हानि होनेका निश्चय हुआ है उसके दंड से वह मनुष्य नहीं छूटजाता. बरन उसके निमित्त पृथकही गठन होताहै । उदाहरण की समान मान लो कि 'ए' 'बी' 'सी' यह तीन मनुष्य हैं इनके प्रारब्ध कर्मानुसार ऐसा निश्चय हुआ कि 'ए' के हाथसे विशेष बुरा कर्म हो और उससे 'बी' तथा 'सी' को अत्यंत भारी हानिहो और जन्म सुखी दुःखी होजावे । परन्तु मानलो कि जब 'ए' का वह कर्म करनेका समय आया तब उसने अपने पुरुषार्थ को काम में लाय उस कर्मको अपने हाथसे न होने दिया तो उसके पुरुषार्थ के कारणही 'बी' और 'सी' को उनके प्रारब्धानुसार जो दंड होना चाहिये उससे वह छूट नहीं जाते, बरन कर्मका गठन करनेवाले देवता कि जिनको लीपिका और महाराज कहते हैं और जो

अथाह बुद्धिबल के कारण अपने पिछले कहेहुए 'बी' और 'सी' को उनके कर्मका फलदेने के निमित्त कर्मके गठनमें फेरफार करते हैं और किसी दूसरीही रीति से उनको वह फलदेते हैं। इसप्रकार कर्म की रीति में किसी प्रकार का भी अन्याय या कठिनता होने की संभावना नही रहती।

शो०—तब जो प्रत्येक मनुष्य जो दुःख पाता है वह प्रारब्ध के कारणही होता है और भी यदि एक प्रकार से नहीं तो फिर दूसरे प्रकार से बिना हुए नहीं रहता। अतएव अंधे, लूले, लंगड़े आदि कि जो अपनेही पापकर्म का दंड भोगते हैं उनकी सहायता कर कर्म के न्याय के बीच पड़ने की क्या आवश्यकता है।

थि०—कर्मका गठन करनेवाले महाराजा मनुष्य को अपने हथियार की समान काम में लाय एक दूसरे के द्वारा एक दूसरे को कर्मका फल देनेयोग्य गठन किये जाते हैं तैसेही फिर मनुष्य के बीचमें पड़ने से कर्म में विघ्न न हो इस कारण ऐसे फेर फार करने का कामभी उनकी अथाह और कल्पना रहित बुद्धि से सदैव हुआ करता है।

अब अंध, लूले, लंगड़े आदि दुःखी मनुष्य पापकर्म के बंधन में पड़कर दुःख पाते रहते हैं। परंतु इससे उनकी सहायताकरने

के कारण हम उनके कर्म में विघ्न डालकर उनको जो अनुभव मिलना चाहिये सो रोकते हैं.ऐसा समझकर उनकी सहायता न करना यह अपनीही भूलहै । यह सब कर्मों के कारणही दुःख भोगते हैं ऐसा हम कह सकते हैं परन्तु उनके कर्मके फलानुसार-ही किस समय उनको सहायता मिलने की आवश्यकताहै सो हम नहीं जानसकते, इस कारण जो कर्म के नियमानुसार अपने द्वारा किसी दुःखी को सहायता मिलनाहो तो फिर ऐसा होता हुआ शुभ कर्म अपने हाथसे क्यों रोकाजाय ? अब हम जो ऐसा मानें कि दुःखित मनुष्यों के बीच में पड़ने से कर्मके नियम में विघ्न पड़ेगा या उनके पार उतारनेवाले महाराजाओं अथवा लीपिकाओं को कठिनता पड़ेगी, तो यह बातभी मूर्खता से भरी है । जब किसी दुःखित मनुष्य के सहायता मिलने का समय न आया होगा और हम सहायता करेंगे तो अपनी की हुई सहायता उसको कुछभी लाभ नहीं पहुँचा सकती, बरन अपनी परोपकार बुद्धि और श्रमके कारण अपने भले कर्मोंका हिसाब बढ़ेगा । अतएव कर्म के बीचमें पड़नेका या उसमें विघ्न होने का विचार छोड़ यदि कोई भी दुःखी देखपड़े तो उसकी सहायता करना अपना कर्तव्य कर्महै ऐसा समझ कर जहांतक होसके उनकी सहायता करनी चाहिये ।

शो०—यदि किसी दुःखी की सहायता करने से उस के कर्मों में विघ्न न पड़े तैसेही सहायताकरनेवाला मनुष्य कर्म के नियमों के विरुद्ध न चलताहो तो फिर महात्मा कि जो ज्ञान और मनस शक्ति से भरपूर हैं वह किस कारण दुःखियों की सहायताकर उन को दुःख मेंसे नहीं छुटाते ?

थि०—हम सबके ऊपर कर्म के नियमों का लगाव हान के कारण उससे पार उतरने के काम में अपने को प्रकृति के हथियार की समान काम में लगाते हैं और उससे एक दूसरे के दुःख के बीच में पड़ने से हम कर्म के नियमों के विरुद्ध नहीं जाते । परन्तु एक यह आवश्यकीय बात जानना है कि जो बड़ी आत्मा अपने ज्ञान बल से कर्म के नियमों के चक्कर मेंसे छूटेहुए हैं वह दूसरेका कर्म किस प्रकार से उसपर प्रभाव करसकता है यह स्वयं जानने के कारण अपनी समान उनको कर्मके पुतले के अनुसार प्रकृति के काम नहीं लेसकते इसकारण यह जीव जो दूसरे के दुःख सुखके बीच आवे तो उससे कर्म के नियममें यथार्थ विघ्न होने की संभावना रहती है और इसही कारण महात्मा कि जो अपने ज्ञान बल से कर्म के नियमों के बंधन से छूटेहुए होते हैं उनका काम प्रकृति के नियमानुसार चलते हुए काम में विघ्न करनेका नहीं है, बरन-

प्रकृति की सहायता करने के कारण वह दया से भरपूर होते हुए भी पाप कर्म से बंधेहुए मनुष्यों के दुःख के बीच पड़कर कर्म के नियमों को नहीं तोड़सकते ।

शो०—जो दुःखियों को दुःख में से बचाने का काम वह नहीं करसकते तो फिर वह ज्ञान और मनस शक्ति से संसार की किस प्रकार सहायता करते हैं ?

थि०—महात्माओं को सर्वज्ञान की धारणा होने से वह पृथ्वी पर सर्व शक्तिमान हैं, इससे वह चाहें तो किसी भी मनुष्य को दुःख में से छुटासकते हैं, परन्तु वह दुःख भोगना उसके कर्म के नियमानुसार आवश्यकीय होता है इसकारण इसप्रकार बीच में पड़ने से उलटा उस मनुष्य केही प्रगटीकरण में विघ्न होनेसे उस को हानि पहुँचती है इसकारण महात्मा किसी के भी कर्म के बीच में नहीं आसकते, परन्तु कर्म के नियम ज्ञात होजावें इसप्रकार से वह दुःखीकी सहायता करने में चूकते भी नहीं । फिर महात्माओं का काम कुछ मनुष्यों की लगाई हुई अग्नि के बुझाने का नहीं है, वरन मनुष्य आग लगाने से रुकें उनको ऐसी बुद्धि देनेकाहै अतएव मनुष्य अज्ञानता द्वारा पापकर्मों से बँधकर दुःख में पड़ने से बचे इस प्रकारके ज्ञान फैलानेका कार्य वह सृष्टिमें कियेजातेहैं ।

शो०—ऐसा आपने कहा कि महात्मा कर्म के चक्कर मेंसे छूटे हुए हैं परन्तु ऐसा किस रीति से हो सकता है ? उठना, बैठना, खाना, पीना आदि कर्म तो विना हुए रहतेही नहीं, और जब तक मनुष्य जीता है तब तक उससे एक पल भी विना विचार किये नहीं रहाजाता, इस कारण जो एक कर्म मेंसे दूसरा और दूसरे मेंसे तीसरा ऐसे भले बुरे कर्म सदैव हुआही करें और भले बुरे फल मिलाही करें तो इस प्रकार करोड़ों अवतार होजायँ तौभी कर्म के चक्कर में से न छुटकारा हो । इससे कर्म करतेहुए भी किस प्रकार कर्म में से छुटकारा होता है इसका कृपा करके स्पष्टीकरण कीजिये ।

वि०—यह तो हम बताही चुके हैं कि भले बुरे कर्मों से भले बुरे फल मिलते हैं और इन सब भले बुरे फलों अथवा सुख दुःख के भोगने को वारंवार जन्म मरण के फेर में मनुष्य पड़ता है । भला और बुरा प्रारब्ध यह दोनों जीव को बेड़ी की समान बंधन में पकड़ रखते हैं, अन्तर केवल इतनाही है कि भले कर्मों से सोने की बेड़ी और बुरे कर्मों से लोहे की बेड़ी में बँधना पड़ता है । अनसमझ मनुष्य कि जो इन्द्रियों का भोग भोगने में पड़े होते हैं उनके अच्छे प्रारब्ध बंधन की समान नहीं दिखाते परंतु

वह बंधनही है ऐसा ज्ञानी की समझ में आने से वह भले बुरे कर्मों के बंधन मेंसे छूटने को एक समानही रीति पर पसंद करता है। अब मनुष्य सें एक पलमां विना कर्म किये नहीं रहाजासकता और कर्म से उसका फल उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता तो फिर यह कर्म की जंजीर किस प्रकार तोड़ी जासकती है और कर्म बन्धन से छुटकारा हो यह प्रश्न प्रत्येक मुमुक्षु (मुक्ति चाहनेवाले) के मनमें उठता है। इसका स्पष्टीकरण श्रीकृष्ण भगवानने गीता जी में अर्जुन से किया है। निष्काम कर्म करने से अथवा बिना फल की आशा रक्खेहुए कर्म करने से कर्म के चक्कर मेंसे मुक्ति होती है। कर्म करने से मनुष्य बन्धन में नहीं पड़ता, परन्तु उस के फल भोगने की इच्छासे वह अपने को स्वयंही बंधन में डालता है। फलकी आशा रखकर जो कर्म किया जाता है उसका फल उसको थोड़ा या बहुत मिलनाही चाहिये ऐसा प्रकृति का नियम होने के कारण उसके निमित्त वारम्बार अवतार लेकर जीने को विवश होना पड़ता है।

प्रत्येक कारण के साथ उससे उपजते हुए कार्य का सम्बन्ध रहता है और वह सम्बन्ध कुछभी नहीं केवल फल भोगने की इच्छा अथवा फल मिलने की आशा है। यदि जीव प्रत्येक कर्म

को फल की आशा रक्खे विना करसके तो कर्म करतेहुए भी उस से उपजते परिणामों से वह नहीं बँध सकता और जो वह सदैव कर्म किये जाता है तो भी फल भोगने की आशा के न होनेसे कर्म के बंधन से सदा मुक्तही है। इसका नामही कर्म योगहै। प्रत्येक कर्म केवल कर्तव्यानुसारही करने की आवश्यकता है। अमुक कार्य मैं करताहूं अतएव इससे मुझको या दूसरों को कुछ लाभ होगा या नहीं, इस में मुझको हानि न हो इन विचारों से जो कर्म किये जाते हैं, अथवा प्रारब्ध के नियमानुसार होतेहुए जिन२ कर्मों के साथ ऐसे विचारों का सम्बन्ध होता है वे सब कर्म जीव को विना बन्धन में डाले नहीं रहते। हे ईश्वर ! तूही है 'मैं' नहीं हूं ऐसे अहंतापन को नाशकर अपने को परमेश्वर में अर्पण कर अपने हाथ द्वारा कर्मोंसे क्या लाभ होगा या उसका परिणाम अपने निश्चय के अनुसार होगा या नहीं, इन सब विचारों के विचार को छोड़कर जो मनुष्य केवल सृष्टि के नियम की सहायता करने के निमित्तही, और सृष्टि के कामों से पार उतरने के कारणही अपने कर्त्तव्यानुसार कर्म को करता है वह मनुष्य कर्म करने पर भी मुक्तही है।

समस्त सृष्टि के कर्मों की रीति चक्रायमान है, परन्तु वह

केवल प्रकृति के अधिक से अधिक सजीवन करने के निमित्त है। कर्म की रीति पुरुष के निमित्त नहीं है क्योंकि वह तो सब से चढ़ता हुआ है। ऐसा होने पर भी अनादि काल से चले आते हुए अध्यास के कारण अपने मार्गमें जातीहुई प्रकृति में अपना प्रतिबिम्ब पड़ने से पुरुष अपने को प्रकृति के साथ जुड़ा हुआ समझ प्रकृति के कर्मों में अपना सम्बन्ध करताहै, और इसकारण यह कर्म मैं करता हूं अथवा वह मुझसे होता है ऐसा अहंकार उत्पन्न हो अपने को कर्त्ता समझने से अपनेही को भोक्ता बननें को विवश होना पड़ता है। यह तो स्पष्टही है कि जो कर्त्ता नहीं है वह भोक्ता भी नहीं होसकता; इस कारण अध्यास से उत्पन्न होतेहुए अहंतापनका अंतलाने से कर्त्तापन का अभिमान जाता रहता है और उसकी प्रकृति (उपाधि) नियमानुसार कार्य में लिप्त रहने परभी उस जीवको उस फलके भोगने का बंधन नहीं रहता। यहां इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि पाप कर्म करने के पीछे इसको प्रकृतिनेही किया है 'मैं' ने कुछ नहीं किया है, इसप्रकार मनको समझाने से वह उस कर्म के बन्धन से नहीं छूटजाता, बरन जब ज्ञान के बल द्वारा अज्ञान से उत्पन्न हुए अहंपनका नाश होताहै तबहीं वह मुक्त होसकता है और उसका

नामही जीवनमुक्ति है, कि जो शरीर में होते हुए भी मिल सकती है । जीवनमुक्त की स्थिति में आने पर भी प्रारब्ध के अनुसार पकेहुए कर्म उसकी प्रकृति के ऊपर आपड़ते हैं, परन्तु उन सब पदार्थों को प्रकृतिही भोगती है और जीवका कुछभी सम्बन्ध नहीं रहता ऐसा ज्ञान होने से प्रकृति के कर्मों से पृथक रहाहुआ जीव नए क्रीयमाण को नहीं उत्पन्न करता कि जिससे मरनेके पीछे उस मुक्तहुए जीवको फिरसे दूसरी देह में जन्म लेनेका कारणहो ।

जो मनुष्य विवेक की सहायता से अहंकार रहित होगया है, और जिसकी बुद्धि पवित्र है, वह समस्त मनुष्यों को मारकर भी नहीं मरता और उसका कर्मों से बंधन नहीं होता, यह श्रीकृष्ण जीने गीता में कहा है—देखो अध्याय १८ वां, श्लोक १७ सब पापोंकी जड़ अहंता है । जहां 'अहंता' नहीं वहां मेरा लाभ, मेरासुख, मेरीकीर्त्ति, मेरी स्त्री, मेरापुत्र, मेरामाल, मेरा खजाना आदि बातें कुछभी नहीं हैं, जहां यह बातें नहीं हैं वहां पाप पुण्य का बंधन किस प्रकार होसकताहै ? जिस जीवको ऐसा जानपड़ता है कि 'मैं' दूसरे जीव से पृथक हूं और वह सदैव इन विचारों में कि अपना लाभ, अपना माल, अपना पुत्र, अपना सुख आदि

किसप्रकार से हो पड़ारहता है उसकोही पाप पुराय, सुख दुःख आदि सब कर्मोंका बंधन होता है।

शो०—अहंकार अथवा 'अहंता' पनका नाश करनेके पीछे जीवनमुक्त किस दशा में जीसकता है, व जो कर्म उसकी प्रकृति से होते हैं उस से वह किस प्रकार पृथक रहसकता है उसका भली भांति से स्पष्टीकरण कीजिये।

थि०—जीवनमुक्त की अवस्था साधारण रीति से देखने पर एक नाटककार की समानहै। जिस प्रकार नाटककार को नाटक पूरे होने तक अपने नियमों के अनुसार कार्य करने को विवश होना पड़ता है वैसेही जीवनमुक्त की उपाधि को भी मरण पर्यंत प्रारब्ध के अनुसार व्यवहार करने को विवश होना पड़ता है। अथवा जिस प्रकार नाटक पूरे होने तक नाटककार की उपाधि अमुक रीति के वर्त्ताव से बँधी होती है वैसेही मरण होने तक जीवनमुक्ति की उपाधि भी प्रारब्ध के बंधन में होती है। फिर जिस प्रकार नाटककार अपनी यथार्थ अवस्था जनाने के कारण हँसता है परन्तु तौभी नहीं हँसता, रोता है परन्तु तौभी नहीं रोता प्रसन्न होताहै परन्तु तौभी प्रसन्न नहीं होता, धन को लुटाता है परन्तु तौभी नहीं लुटाता, हिंसा करता है, परन्तु तौभी नहीं करता, (भगवद्गीता अ० १८ श्लोक १७) राजा होता है परन्तु तौ

भी प्रसन्न नहीं होता, तैसेही फकीर होता है परन्तु तौभी दुःखित नहीं होता; इसही प्रकार जीवनमुक्त भी, स्वयं सत्–चित–आनंद आत्मा है यह जानने के कारण प्रकृति के कर्मों में नहीं लिपट जाता और यद्यपि वह बाहर से दिखाव में हँसता है परन्तु तौभी यथार्थ में नहीं हँसता–रोता है तौभी नहीं रोता; संकट में आकर भी दुःखी नहीं होता, तैसेही तूंबी लेकर भीख मांगता है परन्तु तौभी भिखारी नहीं बन जाता और राज्यके ऊपर बैठने परभी प्रसन्न नहीं होता। फिर जिस प्रकार नाटककार को रोता देखकर देखनेवाले रोने लगते हैं, तैसेही उसको हँसता देखकर देखनेवाले भी हँसते हैं परन्तु जो यथार्थ में देखाजाय तो वह स्वयं न रोताही है न हँसताही है, इसही प्रकार जीवनमुक्तको व्यौहार कर्ता देखकर मनुष्य उसको व्यौहारू मनुष्य समझते हैं तैसेही भीख मांगते देखकर भिखारी समझते हैं, परन्तु वह सच्चिदानंद आत्मा रहने के कारण समस्त अवस्थाओं में नाटककार की समानही उपाधि के दुःख सुखका प्रभाव नहीं रहता और देखाव में सब कर्मों के करतेहुए भी वह समान अवस्था में आयाहुआ जीव सदैवमुक्तही है और उस समान अवस्था कोही जीवनमुक्ति कहाजाता है। इस के सम्बन्ध में श्रीकृष्णजी ने गीता में अर्जुन से भली प्रकार स्पष्टी-

करण किया है कि जिसको सबकोई जानता है इसकारण उसके अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।

यह अवस्था महात्माओंही की है कि कर्म करते हुए भी वह कर्म में लिप्त नहीं होते क्योंकि वह जीवनमुक्त हैं। अब देखो कि जो पृथ्वी में सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान हैं, पृथ्वी में से उन्हें अब कुछभी सीखनेको नहीं रहा, कुछभी मिलने को नहीं है, तैसेही किसी भी पदार्थ के निमित्त वह भूखे नहीं हैं, वह महात्मा पृथ्वी पर किस कारण रहते हैं ? किस कारण इस को नहीं छोड़जाते ? निर्वाणिक भुवनका अखंड सुख छोड़कर किस कारण वह निचले भुवनके ऊपर रहते हैं ? यह सब केवल उनकी दयाही है। अज्ञान से बंधन पाकर दुःखी होतेहुए अपने भाई बंध मनुष्यों को ज्ञान के बल से मुक्तकर अपनी समान अवस्था में लाने का यत्न करते हैं, वह इस कंगाल पृथ्वी में बिना किसी प्रकार की आशा के अपना बड़ा कार्य गुप्त रहकर किये जाते हैं। जगत में आरंभ सेही यह महात्मा निष्काम होकर यह कर्म करते आते हैं और आज भी वह सब कर्म होरहे हैं कि जिन का ध्यान साधारण मनुष्यों को नहीं है। उनके चेलेभी उनका अनुकरण कर उनकी ही अवस्था को पहुँचते हैं। और इस प्रकार होने का मार्ग

'थियासोफीकल सुसाइटी' भली प्रकार से बताती है। महात्माओं का चेला होना बड़ीभारी बात है, क्योंकि ऐसा होने के निमित्त अत्यंत योग्यता और अत्यंत गुणों के होने की आवश्यकता है। चेले अपना क्या लाभ होगा इसका मन में विचार भी नहीं लाते और 'मैं' कब ज्ञान प्राप्त करूंगा, अथवा मैं कब महात्मा हो जाऊंगा इन सब विचारों से रहित होकर अपने परम गुरू के सृष्टि कल्याणकारी बड़े कार्यों के ऊपरही वह सदैव ध्यान रखते हैं, तैसेही हे गुरुदेव ! तुम्हींहो ऐसा कहकर अपना सब तन, मन, धन, गुरूकोही अर्पणकर अपना अभ्यास, अपनी बुद्धिमानी, अपनी पवित्रता, अपनी मूर्खाई, अपने सुख दुःख सम्बन्धी सब विचारों और आशाओं को छोड़ केवल अपने गुरूकेही कार्य में सहायता करने के निमित्त उस फलकी आशा को छोड़ अपना कर्म कियेजाते हैं, और अपने सद्गुरू की कृपा से अंत में कर्तव्यरूपी जन्म मरण से मुक्त होजाते हैं।

गुरू मिलने का मार्ग.

शो०—जो मनुष्य संसार के बंधन में बँधाहुआ है, और जिस का बहुत भारी समय अपने अथवा कुटुम्ब के पालन पोषण में बीत रहा है, वह पराधीन मनुष्य जिस किसी महात्मा गुरूका चेला होने की इच्छा करे तो वह किस प्रकार से होसकता है सो कृपा करके कहिये।

थि०—शरीर को प्रारब्ध कर्म से पराधीन रहना पड़ता है परन्तु उससे कुछ मनकी स्वतन्त्रता नहीं भंग होती। मनमें आते हुए अपवित्र विचारों को रोकना, पवित्र विचार करना तथा सत्य, दया, धीरज, शांति, संतोष, साहस, क्षमा, प्रमाणिकपना, नम्रता आदि सद्गुणों का जीव में बंधन करने से राजयोगी होना, यह रोतेहुए हठ योगियों का नहीं बरन महात्मा गुरूके चेले होनेका

मार्ग है । संसार के कार्यों से अथवा कुटुम्ब के पालन पोषण से मन को इस प्रकार से शिक्षित करनेपर किसी भी प्रकार का विघ्न नहीं होता इतनाही नहीं बरन यह सब बातें जीवके प्रगटीकरण में आगे बढ़ने के निमित्त सहायक होजाती हैं । मैं संसारमें पड़ा हुआ हूं इस कारण मुझ से राजयोगी अथवा महात्मा गुरू का शिष्य नहीं बना जायगा ऐसे खोटे विचार को मन में से दूरकर संसार मेंसे उपजते हुए सुख दुःख हार जीत इत्यादि से मन को शिक्षित करने में जो समय मिलता है उससे प्रत्येक मनुष्य को अवश्य लाभ प्राप्त करने की आवश्यकता है । जैसे बिना पाठ-शाला में पढ़े कालिज में नाम नहीं लिखाजाता, वैसेही संसाररूपी गुरूके पास जो कुछ सीखना है वह बिना सीखे महात्मा गुरूका चेला नहीं हुआ जासकता ।

शो०—जो संसार के कामों से राजयोग करने में विघ्न होनेके बदले उलटी सहायता मिलती हो तो वह किसप्रकार और किसकी सहायता से मनको शिक्षित करसकते हैं ?

थि०—जिस प्रकार ध्यान चौहान मनुष्य तथा ऋषि पिछले मन्वन्तरों में अनुभव मिलने के कारण अपने वर्त्तमान मन्वन्तर में समस्त जीवों की रक्षा करना और उनके प्रगटीकरण में आगे

पढ़ने का काम करसकते हैं, उसही प्रकार अब पीछेके मन्वन्तरों में हमभी ऋषि मुनियों की समान काममें आसकते हैं, इसकारण जितना ज्ञान, जितना अनुभव और जितनी पवित्रता मिलने की अपने को आवश्यकता है, उन सबको वश करने के निमित्त महात्माओं ने साधारण अवस्था के मनुष्यों के लिये आरम्भ में कर्मयोग के मार्ग की सूचना दी है।

शो०—कर्मयोग क्या है?

थि०—'लागारस' अथवा आत्माके साथ जीवकी एकता होने का नाम योगहै। और जो कर्म इसप्रकारसे किये जावें कि जिनसे जन्म मरणके बन्धन में पड़ने के बदले 'लागारस' के साथ एकत्र होने का मार्ग मिले, उसकाही नाम कर्म योग है।

शो०—कर्मही के कारण तो जन्म मरण का बन्धन होताहै तो फिर कर्मही से मोक्ष किस प्रकार होसकती है?

थि०—कर्म करने से जन्म, मरणरूपी बंधन नहीं होता परंतु कर्म के फल की आशा रखने सेही बन्धन होता है, अथवा फल की आशाही बन्धन का कारण है (देखो प्रकरण ७) समस्त कर्मों के करनेवाली तो प्रकृति है, अथवा सृष्टि में जो कुछ होता है वह सब प्रकृति सेही होता है इसकारण जीव का जो अहंकार

अथवा अहंतापन का अभिमान निकालकर प्रकृति से होतेहुए कर्म मैंही करताहूं अथवा वह मुझ सेही होते हैं इस बिचार से छुटकाराहो तो कर्त्तापने के अभिमान से छूटजाने के कारण उसको भोगनेका कारण भी नहीं रहता।

अब प्रकृति में सत्व—रजस और तमस यह तीन गुण हैं इन तीनों गुणों को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जासकत, परन्तु न्यूनाधिक कर सकते हैं। सृष्टि में जो कुछ कर्म होते हैं वह केवल इन्हीं तीन गुणों के खेल हैं। जब तीनों गुणों में सत्व गुण बढ़जाता है तब रजस और तमस उसही अनुसार न्यून होजाते हैं और उस समय सतोगुणी अथवा पवित्र कर्म होते हैं; तैसेही रजस के अधिक होने से सत्व और तमस उसही के अनुसार न्यून होजाते हैं और उस समय रजोगुणी कर्म होते हैं; फिर इसही प्रकार तमोगुण के अधिक होने से सत्व और रजस का घटाव होता है और उस समय तमोगुणी कर्म होते हैं। इसप्रकार तीनों गुणों के घटने बढ़ने से जिस समय जो गुण अधिक होताहै उसही समय वह अपना बल दिखाता है और शेष दो गुण दब जाते हैं। अब इन तीनोंगुणों की बनीहुई उपाधि अथवा शरीरमें बन्धन पाया हुआ जीव जब तक गुणों से उत्पन्न हुई माया में

भूलकर वहीं प्रविष्ट नहीं होजाता तब तक वह चेला होने योग्य नहीं होता। इस कारण प्रकृति के तीनों गुणों से स्वयं पृथक है ऐसा समझाने के लिये अथवा तीनोंगुणों को समान अवस्था में लाकर उस में लिपटा जाने के बदले उससे पृथक रहकर उसके ऊपर सत्ता चलाने के निमित्त चेला होने की इच्छा रखनेवाले सत्पुरुष आरम्भ में अपनी संसारी अवस्था में रहकर कर्म योग करने का यत्न करते हैं।

शो०—उपाधि के बंधन में होतेहुए भी उनतीनों गुणोंसे किस प्रकार पृथक रहकर उनको समान अवस्था में लाना चाहिये।

थि०—पहले हम तमस अथवा तमोगुण लेते हैं, और प्रगटीकरण में जीवके आगे बढ़ने में यह तमोगुण किसप्रकार उपयोगी हो पड़ता है तैसेही कर्म योगी उसका किसप्रकार उपयोग करते हैं, इसका स्पष्टीकरण करेंगे।

तमोगुण से अंधकार, अज्ञानपन, आलस्य, निद्रा, अचैतन्यता, उपेक्षा आदि विकार उत्पन्न होते हैं, अतएव कर्मयोगी को इन बुरे स्वभावों से छूटनेकी आवश्यकता है, और ऐसा करने अथवा तमोगुण को सत्वगुण में बदल डालने से जो श्रम और यत्न करने की आवश्यकता पड़तीहै उससे कर्म योगीमें संकल्पका बल

बढता जाताहै और उससे धीरे २ वह तमोगुणको बशमें रखना सीखता है। जिस प्रकार एक कसरती अपने अंग में बल लानेके निमित्त 'दम बल' के सामने बल करता है इसही प्रकार तमोगुण कि जो आलस्य, मूर्खता, उपेक्षा आदि उत्पन्न करताहै उसके सामने लड़ने से जीव में पुरुषार्थ, साहस, धीरज, सहन, शीलता आदि शक्तियें उत्पन्न होती जाती हैं। इस प्रकार प्रगटीकरण में जीवको आगे बढ़ानेके निमित्त तमोगुण उपयोगी होताहै। पैगंबर तैसेही ऋषि मुनि आदि धर्म गुरु मनुष्यों को धर्म करने की क्रियायें करना सिखाते हैं उनका भी मुख्य अभिप्राय तमोगुण को बशमें रखने को सिखाने का है। अमुक समयमेंही अमुक क्रिया करनी होगी ऐसा विचार करने पर उस समय पर अपनी प्रकृति में चाहे जैसा आलस्य व उपेक्षा आदि दिखाई दे परन्तु तो भी उसही समय उस काम के करने पर अपनी इच्छा शक्तिका बल बढ़ता जाता है, और धीरे २ प्रकृति को अपने बशमें रखना आता है। इसके अतिरिक्त संसार में रहकर तमोगुण से नानाप्रकार की बातें प्राप्त होती हैं। प्रातःकाल अमुक समयमेंही सोतेसे उठूंगा ऐसा विचार कर रातको सोतेहुए उस समय न उठाजावे तो समझना कि उस समय प्रकृति में तमोगुण रम रहाहै, इस कारण

उसका सेवक हो पड़ेरहने के बदले तत्कालही उसके ऊपर अधिकार जमा अपनी इच्छानुसार उसही समय उठने की टेव डालनी चाहिये । फिर इसही प्रकार अमुक समयमेंही नौकरी के कामपर उपस्थित रहने तथा संसार के समस्त कर्त्तव्यों के पूरा करने की टेव डालने से तमोगुण को वशमें रखना सीखाजाता है और इससे प्रबल इच्छाशक्ति, धीरज, स्थिरता, दुःखभोगनेकी शक्ति आदि उत्तम गुण जो कि मनुष्यमें होने चाहिये वह धीरे२प्रगट होतेहैं ।

इसही प्रकार रजोगुण मेंसे भी कर्म योगी बहुत कुछ सीखता है । रजोगुण अर्थात् चंचलता है । लोभ लालच से, अत्यन्त अभिमान से, और धन दौलत तथा सुख चैनके मिलने की इच्छा से जगत में चारों ओर धूमधाम और दौड़ धूपहुई दिखाई देती है; और इसके अतिरिक्त मनुष्य जातिमें यह स्वभाव है कि यह काम करूं या न करूं पूरा होगा या नहीं, यह सब स्वभाव रजोगुण सेही समझना चाहिये ।

जितने उत्साह और जितनी चंचलता से मनुष्य अपने लाभ के निमित्त कर्म करताहै उतनेही उत्साह और उत्साहो चंचलता से कर्म योगी को प्रत्येक कर्म कर्त्तव्यानुसार करने की आवश्यकता है । अपने लाभ के विचार को छोड़ केवल जगत के लाभ के

निमित्तही कर्म करनेसे चंचलता रहतेहुए भी रजोगुण के बन्धन मेंसे कर्मयोगी का छुटकारा होताहै। मनुष्य रजोगुण के कारणही सब कर्म करता है इससे हम कर्म न करें तो रजोगुण के बन्धन मेंसे छूट जायँगे ऐसा माननाही भूल से भरा हुआ है।

लोभका नाश करके भी उस लोभ से बँधीहुई जितनी चंचलता और उत्साह से सब कर्म किये जातेहैं उतनीही चंचलता और उत्साह से बिना लोभ के केवल कर्तव्यानुसारही कर्मयोगी उन सब कर्मों को करते हैं।

इसप्रकार कर्तव्यानुसार सब कर्मोंको सीखनेके निमित्त महात्माओं ने शास्त्रमें पंच यज्ञ कहेहैं। यथा (१) देवयज्ञ, (२) पित्रयज्ञ, (३) ज्ञानयज्ञ, (४) मनुष्य यज्ञ, (५) पशुयज्ञ,

इन पांचों यज्ञोंका अभिप्राय मनुष्य जातको उसका कर्तव्य क्याहै यह सीखने और रज व तम गुणके बन्धन से छूटनेका है।

(१) देवयज्ञ देवता अथवा देव दूतों के निमित्त यज्ञ करने से मनुष्य देवताओं की ओर से अपना कर्तव्य क्या है सो समझता है। जिस उपाधि के द्वारा अनुभव मिलकर हम प्रगटीकरण में आगे बढ़ते हैं उन उपाधियों को नियम में रखने के लिये जो भोजन पानी आदि की आवश्यकता पड़ती है उन सब को प्रकृति के नियमानुसार देवताही पूरा करते हैं इस कारण उन

कही श्रम।। फल हमको मिलता है, अतएव उसके बदले में उस ऋण से अनृण होने के निमित्त देवयज्ञ करना अपना कर्तव्य है। आग में घी आदि पदार्थ डालकर देवयज्ञ किया जाता है, क्योंकि अग्नि यह देव दूतों का मुखहै ऐसा शास्त्र में कहा हुआ है और उसका अर्थ केवल इतनाही है कि अग्नि में घी आदि पदार्थों के डालने से वह सूक्ष्म रूप में बदल जाकर ऊपरी भुवनों में रहेहुए देवताओं के पोषण में लगते हैं। ऐसा होनेसे पृथ्वी, पानी, अग्नि, पवन आदि के ऊपर रहनेवाले देवदूतों का हाथ नीचे रहकर अनेक देवता नियमानुसार पानी बरसाय सर्दी गर्मी उत्पन्न कर प्राणियों के काम में आय अनाज आदि पदार्थोंके अधिक उत्पन्न होने में सहायता करते हैं। अतएव इस देवयज्ञको कर्तव्यानुसार करनेसे रजो तमोगुणके बंधन मेंसे छूटनेका मार्ग प्राप्त होताहै इतनाही नहीं वरन जगतमें सुख शांतिकी अधिकता भी होती जातीहै।

(२) पितृयज्ञ—अपने बाप दादों के श्रम और उनकी चेष्टा के कारण पृथ्वी में खाने, पीने, ओढ़ने, पहिरने आदि का वैसेही सीखने पढ़ने आदि की बातों में जो २ सुधार हुआ है उन सबको हम प्राप्त करते हैं इसकारण रात दिन उनका उपकार मानना अपना कर्तव्यहै, और उसही को पितृयज्ञ कहाजाताहै, कि जिसके

कर्तव्यानुसार करनेसे जीवमें नम्रता सभ्यता, और पोषण करनेवाले के काम में सदैव तत्पर रहना आदि गुण प्रविष्ट होते हैं ।

(३) ज्ञानयज्ञ—ऋषियों ने अपने को ज्ञान यज्ञ करने की आज्ञादी है, अथवा उन्होंने प्रत्येक मनुष्य के ऊपर शास्त्रके अभ्यास करने का कर्तव्य कर्म बांध दिया है । और वह इस अभिप्रायसे कि मनुष्य ज्ञानके बलसे अपनी अपेक्षा उतरती अवस्थाके अथवा अधिक मूर्ख मनुष्योंकी सहायता करने और उनको पवित्र मार्ग में चलाने को शक्तिमान हों; और उसकाही नाम ज्ञानयज्ञहै, कि जिसके कर्तव्यानुसार करने से अथवा आलस्य या निद्रा आती हो उसही समय कर्तव्यानुसार गीता या किसी दूसरे शास्त्र आदिको लेकर बांचनेसे मनुष्य रजो तमो गुण के विरुद्ध हो उनको समान अवस्थामें रखना सीखताहै इतनाही नहीं बरन अपने तैसेही अपने भाई बंध मनुष्योंके प्रकटीकरणमें आगे बढ़नेको शक्तिमान होता है

(४) मनुष्य यज्ञ—में अपने भाई बंध मनुष्यों की यथा शक्ति सहायता करना अपने घर के आगे से जातेहुए भूखे मनुष्य को भोजन कराना, कंगाल को पैसा देना, नंगे को वस्त्र इत्यादिक देना तैसेही मूर्खको बुद्धि देना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य कर्महै; और इसकाही नाम मनुष्य यज्ञहै कि जिसके कर्तव्यानुसार

श्रम पूर्वक करनेसे जीव में दया, धर्म, शान्ति, क्षमा, उदारता, भ्रातृभाव तथा परोपकार की बुद्धि आदिकी अधिकता होतीहै ।

(५) पशुयज्ञ—इसही प्रकार पशुयज्ञ करने की आज्ञा है कि जैसें निर्दोष वाचारहित पशुओं का दुःख दूर करना, या भूख प्यास शीत उष्ण के ऊपर ध्यान रखना तथा जो २ प्राणी अपने सम्बन्ध में आवें उनकी अत्यंत दया से रक्षा करना उनके खान पान आदि को पूर्ण करना तैसेही दया से उनको शिक्षित प्रकटीकरण में आगे बढ़ाना अपना कर्तव्य कर्म है । जिसप्रकार कि ईश्वर अपने में वर्तमान है उसही प्रकार समस्त प्राणियों में है यह बात मूर्ख मनुष्य नहीं जानते इस से प्राणियों को अपनी ओर से शिक्षा और सहायता देनेके बदले उनके ऊपर प्रत्येक रीति का अन्याय और घातकीपन करते हैं ।

इस प्रकार पांचों यज्ञों का करना मनुष्यों का कर्तव्य कर्म है जबतक कर्म योग सिद्ध न हो अथवा वह मनुष्य अपने लाभ का विचार करना छोड़ संसार का भला करने के निमित्त अपने समस्त जीवन को काम में लगाना न सीखे तबतक उसको प्रकृति का यथार्थ ज्ञान होनेके निमित्त पांचों यज्ञोंका करना आवश्यकीय कर्म है कि जिनके करनेसे मनुष्य तमोगुण के बंधनमेंसे छूटताहै ।

❀ शरीर और मनकी पवित्रता ❀

अब शरीर और मनकी पवित्रता जो महात्मा गुरु के प्रत्येक चेले में अवश्य होनी ही चाहिये वह भी संसार में रहकर किस प्रकार मिल सकती है उसका स्पष्टीकरण करेंगे। शरीर की पवित्रता तथा आरोग्यता होने के निमित्त उसके ऊपर किसी प्रकार का अन्याय करना या उसका लाड़ लड़ाना यह दोनों ही एक समान मूर्खता के कार्य हैं। जो मनुष्य जितना चाहिये उसकी अपेक्षा कम खाता है या जो बिना भूख अधिक खाजाता है उन दोनों को एक समानही मूर्ख समझना चाहिये फिर जितना चाहिये उतने से अधिक समय तक सोना तैसेही जीव पर अन्याय करके केवल दो चार घंटेही सोना यह दोनों समान मूर्खता के कार्य हैं। ऐसे अभिमानी और तमोगुणी मनुष्य योग के अधिकारी नहीं हो सकते ऐसा श्रीकृष्णजी ने गीताजी के सत्रहवें अध्याय में अर्जुन से कहा है। योगी सदैव समान अवस्था में रहता है, इसकारण जो मनुष्य चलने फिरने में, बातचीत में, खेलकूद में, खाने पीने में और प्रत्येक बात में अपनी समता रखसके वही योगी होने के योग्य है, शरीर को पवित्र रखने के निमित्त गुप्तरीति से पवित्र

भोजनके ऊपर समय बिताने से वैसेही शरीर के खोटे स्वभावों को धीरे २ न्यून करते जाने से थोड़ेही समय में शरीर पवित्र होकर सब प्रकार से वश में होजाता है। इसप्रकार से बुरे स्वभावों को नाश करने और उत्तम स्वभावों को ग्रहण करने के लिये ऋषि मुनियों ने ग्रहस्थाश्रम का मार्ग बताया है। ब्रह्मचर्य व्रत पालने का और कामिक आवेशों को एक साथ जड़ मूल से उखाड़ डालने का काम सब से नहीं होसकता, अथवा लाखों में किसी एकहीं से होसकता है ऐसा होने के कारण मनुष्य ग्रहस्थाश्रम में ही रहकर कार्य आदि विकारों को धीरे २ घटाय थोड़ेही समयमें बिना कठिनाई के अपनी स्थूल उपाधि और कामरूप को अपने अधिकार में रखना सीखता है। तथा जो अज्ञानता से अपने अधिकार के बिना कामिक आवेशों को वशकर अपनी स्पर्द्धा करता है तो उसकी प्रति क्रिया बलवान होती है तब उसका सहन न करसकने के कारण वह मनुष्य अधिक बुरा हो जाता है। अतएव साधारण अवस्था वाले मनुष्यों के निमित्त तो ग्रहस्थाश्रम मेंही रहकर अपने को वशवर्त्ती करना और कर्म योग्य के मार्ग में आगे बढ़ना अधिक बुद्धिमानी से भरा हुआ है।

शरीर के पवित्र रखने की जितनी आवश्यकताहै उतनाही तमो

गुण के आवेशों को सत्वगुणी संबंधों में बदल डालने की आवश्यकता है; यह बातें संसार में किसप्रकार कीजासकती हैं सो हम निचली तीन बातों से प्रमाण सहित समझावेंगे ।

(१) क्रोध—जब कोई मनुष्य अपनी इच्छा के विपरीत कुछ होता देखता है तब उससे उत्तेजित हो अपने वश में नहीं रहता और किसी प्रकार उस कामके करनेवाले मनुष्य या वस्तु को मार हटाने में अपने तामसिक आवेशों को काममें लाता है। यह आवेश तामसिक होते हैं इसकारण कर्म योगी को उनके वश करने तथा उनको सत्वगुण के सम्बन्धमें बदल डालने आदि की क्रिया सीखने की आवश्यकता है। ऐसा करने के निमित्त आरंभ में उसको अपना अहंकार अपनी महत्तता और अपना अभिमान धीरे २ निकालना चाहिए। कुटुम्ब परिवार में या धंधे व्यौपार में अथवा किसी भी स्थित या काल में जब उसको कोई भी मनुष्य कुछ दुःख देवे अथवा कटुवाक्यकहे इसकारण इसके सम्बन्ध में उसको दुःख देने के बदले वह ठगाई करे तो उसके साथ ठगाई करने के बदले वह कुछ हानि पहुँचावे तो फिर उसको हानि पहुँचाकर दुःख देनेके बदले तैसेही जो वह अपनी पीठ पीछे बुराई करे तो उसकी पीठ पीछे बुराई करने के बदले, अथवा जो

उसको मूर्ख मानताहो उसको मूर्ख मानने के बदले अपकार के बदले उपकार करना और दुःख देनेवाले को क्षमा करना, उसको सीखना चाहिए। जब तक वह संसारमें है तबतक उसका अपना ध्यान ठिकाने रखना जब क्रोध करने का समय आवे तभी सावधान होजाना तथा अहंताका अभिमान निकालना, इन तमोगुणी आवेशों को दया और क्षमा आदि के सत्वगुणी लगावों में बदलना सीखना चाहिए। तथा उसे क्रोध को वश में रखने की क्रिया सीखना और उसका सत्वगुणी लगावों में बदलना सीखना चाहिए। यह बातें जिस प्रकार संसार के कुटुम्ब परिवार और धन्धे व्यौपार में रहकर हो सकती हैं उस प्रकार जंगल में जाने या मन्दिर में रहने से नहीं हो सकतीं। जंगल में रहनेवालों को दूसरे का सम्बन्ध न होने के कारण क्रोध उत्पन्न होने का कारण नहीं मिलता इससे वह क्रोध को वश करने की क्रिया नहीं सीख सकता। संसार मेंही क्रोध के उत्पन्न होने के बहुत से कारण मिलते हैं इससे संसारमेंही क्रोध का मारना और क्षमा आदि सत्व गुणों की क्रिया सीखी जासकती है अतएव जंगल में जाने से या मन्दिर में पड़रहने से ईश्वरी मार्ग में आगे किसी प्रकार से भी नहीं बढ़ा जासकता।

इसप्रकार धीरे २ अपने क्रोध को नाश करने के पीछे चेला होने की आशा रखनेवालों को क्रोध का लेशमात्र निकालने की क्रिया सीखनी चाहिये । जब किसी निर्बल मनुष्य को बलवान मनुष्य दुःखी करता है अथवा वह किसी निर्दोष प्राणी पर कुछ घातकीपन करता है तब उसके ऊपर हम क्रोध करते हैं । कि जो परोपकारी क्रोध अपने स्वार्थी क्रोध की अपेक्षा सहस्र दर्जे ऊंचे सात्विक होनेपर भी, तैसेही किसी को दुःख होता देख उसपर ध्यान न देनेके बदले उस दुःख देनेवाले पर क्रोध करना यह अधिक उत्तम होनेपर भी उसमें भी तमोगुण रहने के कारण चेले होने की आशा रखने वाले को ऐसे परोपकारी क्रोधका भी नाश करने की आवश्यकता है दूसरों को दुःख देनेवाले और निराधार प्राणियों पर घातकीपन करनेवाले मनुष्य स्वयंही प्रकृति के नियमों से अज्ञान और हीन बुद्धिवाले होते हैं इसकारण उनके ऊपर भी क्रोध करने के बदले दया की दृष्टि से देखने की आवश्यकता है, तथा दुःख देनेवाले और जिसको दुःख होताहो उन दोनों को दया से छुटादेने पर और उनको न्याय की दृष्टि से देखनेपर दुःख देनेवाले के हृदय में दया उत्पन्न होजाती है और वह अपनी भूल को जानता है और अधिक उत्तेजित हो अपनी भूलके निमित्त

पश्चात्ताप करताहै। इसप्रकार क्रोध के तमोगुणी आवेशोंको समय समयपर अवसर पातेहुए दया क्षमा आदि सत्वगुणी आवेशों से वदलने की क्रिया सीखनी चाहिए।

(२) काम—अथवा प्यार के आवेशों को भी दूर करना चाहिये प्यार के आवेश साधारण मनुष्य में जानवर की समान अवस्था में अथवा तमोगुणी अवस्था में देखने पर आते हैं। उन का प्यार केवल अपनेही संतोष करने का है। अमुक मनुष्य में कुछ श्रेष्ठ गुण या प्यार करने की योग्यता है या नहीं, अथवा वह बुद्धिवान है या मूर्ख इसका कुछ भी विचार किये बिना जैसे दीपक के प्रकाश से लुभाकर पतंगा उसमें जल जाता है वैसेही केवल स्वरूप के ऊपरही जो प्यार दौड़ता है वह केवल कामिक अथवा तमोगुणी प्यार है और उसमें यथार्थ प्यार का कुछ भी अंश नहीं है।

तमोगुणी प्यार—तमोगुण मोह को उत्पन्न करनेवालाहै, इस से वह सत्य सुन्दर, और उत्तम क्या है सो नहीं समझा जासकता। तमोगुण से खोटा अनुमान और मूर्खता से उत्पन्न होता हुआ जो प्यार तामसिक अथवा तमोगुणी है वह सदैव धिक्कारने योग्य और दूर करने योग्य पदार्थ को भूल से सुन्दर और प्यार

करने योग्य का समझता है । उदाहरण—जो कोई स्त्री एक पापी या मूर्ख मनुष्य के साथ उसकी मिली हुई उपाधि के ऊपर अथवा वह जो सोने के बटन पहिरे हुए है उसके ऊपर लुभाकर ब्याह करे तो उस ब्याह को तामसिक प्यार से हुआ जानना चाहिये, क्योंकि उस मूर्ख स्त्री का प्यार अपने स्वामी के निमित्त नहीं बरन उसकी उपाधि अथवा उन बटनों केही निमित्त है ।

रजोगुणी प्यार—जो प्यार, आशा और लोभ लालच से उत्पन्न होता है उसको रजोगुणी समझना चाहिये । अपने सुख के निमित्त जो मनुष्य दूसरे पर प्यार करता है उसका प्यार रजोगुणी है । उदाहरण—जो मनुष्य अपने सुख के निमित्तही अथवा उससे उसको इच्छित सुख मिलेगा, या दुःख के समय सेवा करेगी इस विचार सेही स्त्री को व्याहता है उसका प्यार स्त्री के निमित्त नहीं बरन अपनेही सुख के निमित्त है और वह प्यार रजोगुणी होने से बहुत समय तक नहीं रहसकता, बरन जैसे २ उस स्त्री के द्वारा मिलनेवाला सुख न्यून होता जाता है वैसेही उस मनुष्य का स्त्री की ओर से प्यार भी न्यून होता जाता है । यह राजसिक अथवा स्वार्थी प्यारही बहुधा समस्त मनुष्यों में दिखाई देता है ।

सतोगुणी प्यार–जो प्यार सत्वगुण से उत्पन्न होता है वह किसी भी स्त्री पुरुप के आधार के ऊपर नहीं रहा होता, वरन वह स्वतंत्रता से अपनेही आधार में रहता है जैसे रजोगुणी व तमोगुणी प्यार सामने की वस्तुओं के देखने से या उनके प्राप्त होने से उत्पन्न होता है तैसेही शुद्ध सत्वगुणी प्यार किसी भी वस्तु के देखने से या उसके मिलने से नहीं उत्पन्न होता, वरन वह अपनेही आधार के ऊपर रहा हुआ जन्म मरण रहित है। जिसप्रकार आस पास वस्तुहों या न हों परन्तु तौ भी सूर्य चारों ओर सदैव अपना प्रकाश करता है कि जिससे जो वस्तु उसके प्रकाश में आती है· उसको उसकी गर्मी जानपड़ती है, इसही प्रकार शुद्ध सत्वगुणी प्यार जो स्वतंत्रता पूर्वक अस्तित्व को भोगता है वह सदैव सूर्य के प्रकाश की समान चारों ओर अपना प्रभाव फैलाता है, जिससे उसके घेरे में आने वाली समस्त वस्तुओं को उसका पवित्र प्रभाव जान पड़ता है । ऐसा शुद्ध सात्विक प्यार महात्माओं में है, अतएव उनके चेले होने की आशा रखनेवाले को अपने रजो तमोगुणी प्यार को इस प्रकार के शुद्ध सात्विक प्यार में बदलना चाहिये ।

शुद्धसात्विक प्यार भी धीरे २ विकाशित होता है । जैसे लोहे

में पड़े २ मोर्चा लगजाता है और वह चमकता नहीं ऐसेही प्यार सम्बन्धी बातों में भी होता है । जैसे २ पवित्र प्यार के प्रकट करने का यत्न कियाजाताहै तैसेही वह प्यार विकाशित होताजाता है और अंत में महात्मा गौतम बुध, अशोक, जरथोस्त, तैसेही जीसस क्राइस्ट आदि पवित्र आत्मा जैसे सात्विक प्यार से परिपूर्ण थीं तैसेही कर्म योगी भी धीरे २ होता है जो प्यार शुद्ध सत्वगुणी है वह किसी दिन भी अपना लाभ नहीं देखता परन्तु जो अपनेही सम्बन्धका हो तो उसकीही नौकरी, उसकीही सेवा और उसकीही भक्ति की जासकती है । अमुक मनुष्य मुझको चाहेगा या नहीं अथवा मुझपर कुछ कृपा रक्खेगा या नहीं इसका विचार पवित्र प्यारवाला नहीं करता, ऐसे शुद्ध सात्विक प्यार कीही महात्मा गुरूके चेले में प्रगट होनेकी आवश्यकता है । यह बात ध्यान में रखने योग्य है । कि महात्मा की कृपा से अपने को मुक्ति मिलेगी अथवा उसकी कृपा से अपने को ज्ञान मिलेगा और स्थूल उपाधि छोड़ कामलोक में तैसेही देवखन में घूमना मिलेगा इस आशा से जो मनुष्य महात्मा गुरू की भक्ति करता है अथवा उसके ऊपर अपना प्यार जताता है तो समझना चाहिये कि उसका प्यार यथार्थ चेलोंका प्यार नहींहै, और वह मनुष्य महात्मा

गुरू की भक्ति नहीं करता वरन अज्ञानता से अपनीही भक्ति करता है । जो यथार्थ भक्त है वह केवल गुरुकी सेवा किसप्रकार करूं तथा गुरू कार्य कैसे पूर्णहो इसही विचार में सदा रहता है और गुरू की कृपा उसके ऊपर होगी या नहीं इसका खटका वह नहीं करता । ऐसा सात्विक प्यार साधारण मनुष्यों में नही होता, अतएव जो चेले होने की आशा करते हों वह धीरे २ संसार मेंसे मिलतेहुए अवसरों को प्राप्त कर ऐसे सात्विक प्यार को धीरे २ बढ़ते जावें ।

(३) लोभ इसही के अनुसार लोभ को भी समझना चाहिये । साधारण अवस्था के मनुष्य अपने सुखके निमित्त श्रम करते हैं, अपने हाथ में अधिक सामर्थ आनेके निमित्त वह लोभ रखते हैं । अपने को सुख मिले इस कारण वे श्रम करते हैं । ऐसे स्वार्थीपन का धीरे २ कम करने का उपाय संसारही है । वहां उसके लोभ में थोड़ा २ परोपकार प्रवेश करता जाता है । अपनेही निमित्त नहीं वरन अपने स्त्री पुत्र और कुटुम्ब के सुख के निमित्त तथा उनको किसी प्रकार का दुःख न पड़े इस कारण वह धन दौलत और सत्ता मिलने का लोभ रखते हैं । यह लोभ तो अपने स्वार्थी लोभ की अपेक्षा बहुतही श्रेष्ठ है क्योंकि कर्म

योगी इससे आगे बढ़जाता है अपने अथवा अपने कुटुम्ब केही लाभ या सुखकी इच्छा रखने के बदले फिर वह जगत का भला करने के निमित्त और प्राणियों को सुखमें करनेके निमित्त अपनी सत्ता, ज्ञान और गुप्त शक्तियें आदि मिलने की इच्छा रखताहै। इसप्रकार संसाररूपी गुरुके हाथ में रहने से अपने सुखकेही निमित्त श्रम करनेवाला मनुष्य अपने स्त्री पुत्र और फिर अपने समस्त कुटुम्ब के सुखके निमित्त और फिर अंत में सब प्राणियों के सुखके निमित्त श्रम करता है, तथा स्वयं मिलेहुए ज्ञान और गुप्त शक्तियों से वह ईश्वरीय मार्ग में चलना सीखता है।

इसप्रकार रात दिन बराबर श्रम करने से तमोगुणी आवेशों को सत्वगुणी आवेशों में बदला जासकता है। यह सब आरम्भ केही पगसे हैं ऐसा समझना चाहिए कि बिना इसमें प्रवेश करे चेला नहीं हुआ जासकता। सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों से जो सदैव पृथक रहते हैं, अथवा भला बुरा जो सब कुछ होता है वह केवल उनकेही खेल हैं ऐसा समझ कर जो उनकी माया में भूलते नहीं वही कर्मयोगी हैं ऐसा समझना चाहिए। अपने को सत्, चित, आनन्द, आत्मा समझ कर मनुष्य पाप या पुण्य मान या अपमान, हानि या लाभ प्रतिष्ठा या अप्रतिष्ठा, जो जब

उसकी प्रकृति पर आपड़े और वह अपने को समान अवस्था में रखसके वही यथार्थ साधूहै । ऐसा गीताजी में श्रीकृष्ण भगवान ने अर्जुन से कहा है । इस अवस्थामें पहुँचने के निमित्तही ऊपर कहीहुई समस्त शिक्षाओं के लेने की आवश्यकता है । यह सब आरम्भ की शिक्षा हैं कि जिनमें प्रवेश करनेवाला मनुष्य चेला होने की आशा रखसकता है परन्तु अब चेला होने के निमित्त जिन २ लक्षणों की आवश्यकता है तथा मुख्य करके जो मन को अधिकार में रखने तथा ध्यान करने के साधन हैं उनका स्पष्टीकरण करेंगे ।

शो०—संसारी मनुष्य किसप्रकार ईश्वरीयमार्ग के अधिकार करने योग्य होता है यह तो समझ में आया, परन्तु जो आशा तृष्णा के कारणही जन्म मरण का बंधन होता हो तो केवल उस काही नाशकर इस दुःखी संसार में से छूटने का यत्न करने के बदले महात्मा गुरू का चेला हो जन्म मरण के बन्धन में रहने का क्या अभिप्राय है ।

थि०—आशा तृष्णा से जन्म मरण का बन्धन होता है इस कारण जो संसार और स्वर्ग सुख भोगने की आशा जो हृदय में से निकाल डाली जायँ तो जीव जन्म मरणके बन्धनसे छूटजाताहै

इसमें संदेह नहीं। मुक्त होनेके निमित्त महात्माओं के समान ज्ञान और गुप्त शक्तियों के मिलने की आवश्यकता नहीं है। केवल आशा तृष्णा का नाश करने सेही मुक्ति हो सकती है परन्तु वह मुक्ति केवल एकही मन्वन्तर तककी है। जन्म मरण के दुःख से छूटकर जो जीव अपने भाई बन्धु मनुष्यों को रोता छोड़ इस स्थूल भुवन से चलाजाता है वह मुक्त होनेपर भी स्वार्थी है, क्योंकि उस की मुक्ति से सृष्टि को कुछ लाभ नहीं हुआ। उसको मुक्त होना या न होना सृष्टि को एक समानही है। अज्ञान से बंधन पाकर दुःखी होतेहुए अपने भाई बन्धुओं की सहायता करने के बदले मन्वन्तर के चलायमान होने के समय जो मनुष्य अपनेही सुख के ऊपर ध्यान लाय ऊपरी भुवनों में जा बैठता है उसको महात्मा स्वार्थीजीव गिनते हैं। ऐसी स्वार्थी मुक्ति पहिले कहेहुए की समान सरलता से मिल सकती है, परन्तु इस प्रकार के मुक्तहुए जीवों को मन्वन्तर पूरा होने के पीछेही दूसरे मन्वन्तर में फिर जन्म लेने की आवश्यकता पड़ती है।

शो०—एक समय में मुक्त होकर भी दूसरे मन्वन्तर में जन्म लेने का क्या कारण है ?

थि०—मन्वन्तर चलानेवाले मनुकी गठनके अनुसार मन्वन्तर

पूरा होने से पहिले मनुष्य जाति को निर्वाण तक के पांचों भुवनों का सम्पूर्ण मान मिलता है । जिसप्रकार स्थूल उपाधि के द्वारा मनुष्य स्थूलभुवन के भानका निश्चय करताहै उसही प्रकार ऊपरी तत्वों की उपाधि में उसको निर्वाण तक के पांचों भुवनों का भान होताहै । तैसेही इन समस्त भुवनों में पृथक २ उपाधि में वह भान सहित प्रकृति का काम करना सीखता है । मनुकी इस गठन में विशेष अभिप्राय भराहुआ है, और वह यह है कि जिस प्रकार पिछले मन्वन्तरों में सब भुवनों का सम्पूर्ण मान किये जानेके कारण ऋषि, मुनि आदि महात्मा इस मन्वन्तर का काम चला सकते हैं उसही प्रकार निर्वाण तक के समस्त भुवनोंका सम्पूर्ण मान अथवा उसका सर्वज्ञान और सर्व शक्तियें मिलनेसे पिछले मन्वन्तरों में सृष्टि चलाने का वृहत् कार्य हमको करना होता है ।

मनुकी इस गठन से पार होने के निमित्त प्रगटीकरण में प्रत्येक मनुष्य को अपने समस्त तत्वों के विकाशित करने की आवश्यकता है । जब तक अपने समस्त तत्वों को भलीप्रकार से विकाशित न किया जाय तब तक अपने को निर्वाण तकके समस्त भुवनों का भान नहीं होता और ऊपर कही हुई मनुकी गठन से पार नहीं

उतरा जासकता इसकारण मनके विकशित करने या शास्त्रके ज्ञान मिलने की कुछ आवश्यकता नहीं ऐसा मानते हैं वह बड़ी भूल करते हैं इसमें कुछभी संदेह नहीं है । यद्यपि समस्त तत्वों के विकाशित हुए विना अथवा उनके सम्बन्धी ज्ञान और गुप्त शक्तियोंके मिलने विना मुक्ति होसकती है परन्तु इस रीति के द्वारा मनुकी गठन से पार हो इस मन्वन्र में मनके विकाशित हुए बिना जो जीव केवल आशा तृष्णा के बंधन को काटकर मुक्त होता है, उसको अपने प्रगटीकरण में अधूरी रही हुई गठरी को पूरा करने के निमित्त दूसरे मन्वंतर में फिरसे जन्म मरणके फेरे में पड़ने की आवश्यकता पड़ती है इससे जो केवल अपने निमित्तही मुक्ति मिलने की आशा रखता है उसको अगले मन्वंतर में फिर से चेले होने की आवश्यकता पड़ती है ।

जो जीव इन्द्रियों के तुच्छ सुखों की आशा को छोड़ अपनी मुक्ति मिलने के मार्ग को खोजता है वह सहस्र हजार श्रेणी चढ़ती हुई अवस्था का जीव है इसमें संदेह नहीं परन्तु जो मुक्ति शोधन और चेला होने के इन दोनों मार्गों की तुलना कीजावे तो महात्मा गुरूका चेला होना उसके पक्षमें अति उत्तम मार्ग और बुद्धिमानी तथा श्रेष्ठ है । अपने दुःख के न्यून करनेका अभिप्राय

न रखकर गुरूकी कृपा द्वारा प्राप्तहुए ज्ञान से जगतमें धर्म फैलाने तथा गुरु और साधु की समान जगत के कल्याण करने की जिनकी इच्छा है तथा आशा तृष्णा से रहित होकर भी जो मनुष्य जन्म मरणके पानेवाले देहके बंधनमें प्रसन्नता पूर्वक रहकर अपने भाई बंधुओं की ओर से अपने कर्तव्य को पूरा करने में आतुर हैं वही बड़े महात्माओं के मार्ग में चलनेवाले हैं ऐसा समझना चाहिये।

महात्मा योग्य मनुष्य को अपना चेला करने को सदा आतुर रहते हैं। अपने परोपकारी कार्य में सहायता देखके ऐसे योग्य चेलेको वह प्रसन्नता पूर्वक ज्ञानदेते हैं। संसारका भला करने के निमित्त गुप्तज्ञान और गुप्त शक्तियों के मिलने की आवश्यकता है, परन्तु उनका प्राप्त होना महात्मा गुरू के द्वाराही सम्भवहै। बिना गुरू के गुप्तज्ञान नहीं मिलता क्योंकि जो यथार्थ गुप्तज्ञान है वह किसी दिन भी पुस्तक के आकार में प्रगट नहीं होता। गुप्तज्ञान और गुप्तशक्ति यह दोनों धारवाली तलवारके समान हैं, इसकारण जैसे २ ज्ञान बढ़ता जाता और अधिक शक्तियें मिलती जाती हैं वैसेही तैसे चेला का उत्तर दायित्व बढ़ता जाता है। क्योंकि ज्ञान और गुप्तशक्तियों का भला बुरा उपयोग हो-सकने के कारण जगत का भला करना या पीछे जगत को हानि

पहुँचाना केवल चेले की इच्छा परही निर्भर है, और जो चेले के स्वभाव में कुछ नीच प्रभाव रहगया हो तो उसके स्वार्थी होकर उलटे मार्ग में जाने की सम्भावना रहती है । संसारी व्यवहारों में भी हम ऐसे उदाहरणों को पाते हैं । नीच प्रभाववाले मनुष्यों के हाथमें जब कुछेक सत्ता आती है तब वह उससे अपनी समता नहीं रखसकते और फिर उससे उस सत्ताके विरुद्ध अयोग्य कार्य हुए विना नहीं रहते ऐसा होने के कारणही महात्मा चेले करने को आतुर होकर भी जैसे बच्चे के हाथ में छुरी या दियासलाई नहीं देते तैसेही जबतक वह चेले में ज्ञान गुप्तशक्तियों के प्राप्त करने की उचित योग्यता और पवित्र गुण नहीं देखते तथा भरोसा रखने योग्य मनुष्य उनकी पवित्र दृष्टि में नहीं आता तबतक वह किसी को भी अपनें चेले की समान नहीं स्वीकार करते ।

❀ मनको वशमें रखने की आवश्यकता ❀

चेला होने की पहिली और सब से कठिन तैसेही सब से आवश्यकीय योग्यता मन को वशमें रखने की है । साधारण रीति सें जिस मनुष्य के कामरूप की अपेक्षा मनस का बल अधिक होता है तथा जो मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, आदि के खिंचाव से नहीं

खिंचजाता और यदि खिंच भी जावे तो सावधान हो अपनी बुद्धि के बल से उसे दबासके ऐसा मनुष्य अपने मनको वशमें रखने योग्य गिनाजाता है। जैसे घोड़ा, गाड़ी को चाहे जहां न घसीट लेजाय इसकारण हांकनेवाले को उसे वशमें रखना पड़ताहै इसही प्रकार इन्द्रियरूपी घोड़े इस शरीररूपी गाड़ी को चाहे जहां न खींच लेजायँ इस कारण भीतर बैठे मनरूपी मनुष्य को उन्हें वश में रखना चाहिये। ऐसी शक्ति जिनमें होती है उनको साधारण रीति से बलवान इच्छा शक्तिवाला मनुष्य कहा जाताहै। उनका यह उत्तम गुण चेष्टा होनेवाले के मनको वश में रखनेवाली योग्यतासे बहुत बढ़कर है।

बलवान इच्छाशक्ति वाले मनुष्य को प्रगटीकरण में आगे बढ़ाहुआ और निर्बल इच्छाशक्तिवाले मनुष्यको प्रगटीकरण में पीछे पड़ाहुआ समझना चाहिये। परन्तु बलवान इच्छाशक्तिवाले मनुष्य के पक्ष मेंभी मनको वशमें रखने का काम कुछ सहज नहीं है। यह अत्यन्त कठिन कार्य है इसमें कुछभी संदेह नहीं मनको वशमें करने का ज्यों २ अधिक यत्न कियाजाता है त्यों २ न चाहतेहुए विचार उसमें घुसे चलेआते हैं। भले बुरे, ऊंचे नीचे और विना अर्थ के सहस्रों विचार विनाही विचारे मनमें उत्पन्न

होते हैं । ऐसा होता देख अभ्यासी घबड़ा उठताहै इस पवन की समान दौड़तेहुए मनको किस प्रकार वशमें करूं यह उसकी समझ में नहीं आता, तैसेही जबतक मनको पूर्ण रीति से वशमें न किया जासके तबतक वह चेला होने योग्य नहीं होता, इसप्रकार दोनों ओर से वह कठिनाई में पड़ता है उसकी इच्छा के विपरीत उस के मनमें तुच्छ और नीच बिचार कहां से आते हैं और क्योंकर आते हैं तथा उनको किस प्रकार से रोंका जासकता है यह उसकी समझ में नहीं आता इसकारण उसका स्पष्टीकरण करेंगे ।

पहिले तो प्रत्येक अभ्यासी को यह ध्यान में रखना चाहिये कि जो २ बिचार उसके मन मेंसे निकलते हैं वह उससे स्वयं उत्पन्न किये नहीं बरन मुख्यकर दूसरेके मस्तिष्क से उत्पन्नहुए हैं । उसके बिचार करने की चाल जिस प्रकार की हो अथवा उस की 'ओरा' में जिस२ प्रकार के भले बुरे 'मानसिक चित्र' हों वैसेही विचार उसकी ओर खिच आकर उसके मन मेंसे निकलते हैं (देखो प्रकरण चौथा) तैसेही फिर उसके स्वयं उत्पन्न कियेहुए भले बुरे बिचार दूसरे के मन मेंसे निकलते हैं इसही प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपने भले बुरे बिचारों से एक नहीं बरन असंख्य मनुष्यों के ऊपर भले या बुरे प्रभाव करताहै । इस वातका ध्यान रखने

से अपनी समझ में आता है, कि प्रत्येक मनुष्य अपने भले या बुरे विचारों से अपनी वाणी और कर्म के द्वारा अधिक भले बुरे प्रभाव दूसरे के मनपर करता है इसही कारण धारणाद्वारा अपने विचारों के निमित्त वह अधिकतर उत्तरदायी है यह बात प्रत्येक अभ्यासी को भली प्रकार से स्मरण रखना चाहिये ।

अब साधारण अवस्था के मनुष्य जो विचार करना समझते हैं वह यथार्थ में विचार करने का प्रयोग नहीं है वरन केवल दूसरों के विचार उनके मन मेंसे निकलते हैं । मन यह साधारण अवस्था के मनुष्यो में धर्मशालाकी समानहै । जिस प्रकार धर्मशाला में आसपास से आनेजाने वाले जाते हैं, उसही प्रकार दूसरे के विचार अपने मन में थोड़े समय रहकर अधिक बलवान या अधिक निर्बलहो वहांसे बाहर निकल उसही प्रकार दूसरे के मन में प्रवेश करते हैं । इस प्रकार समस्त मनुष्य अनजानपने से अपने भले या बुरे विचारों द्वारा एक दूसरे पर भले या बुरे प्रभाव सदा कियेजाते हैं ।

शो०—तब फिर अपने मनमें आतेहुए बुरे विचारोंके निमित्त हम उत्तरदाता क्यों कहलावें ?

थि०—जबतक अपनी स्वयं विचार करने की चाल विशेष

प्रकार की न हो, अथवा अपनी 'ओरा' में विशेष भले या बुरे प्र-
भावों के सम्बंधी 'मानसिक चित्र' न हों तबतक दूसरों के वैसे
विचार अपने साथ सम्बंध में नहीं आसकते अतएव दूसरों के बुरे
विचार अपने मन में घुस आनेका कारण स्वयं अपनेही बुरे प्रभाव
हैं कि जिनके निमित्त हमको स्वयंही उत्तरदाता होना चाहिये।

इसप्रकार से बारम्बार आतेहुए अनेकप्रकार के विचारों को
भली प्रकार दमनकर अपनी इच्छानुसार धारणाके सम्बन्धी विचार
विना विघ्न होवें इस क्रिया को सीखने की आवश्यकता है, और
ऐसा होने सेही मनको बश में रखकर हुआ कहा जा सकता है,
और वही चेला होने की सब से पहिली और आवश्यकीय यो-
ग्यता है। जैसे २ मनशक्ति का बल बढ़ता जाता है और जैसे २
गुप्तज्ञान मिलता जाता है तैसे २ ही विचार अधिक से अधिक
दृढ़ होते जाते हैं; और वह यहांतक कि फिर चेले अपने विचारों
सेही दूसरे को दुःख से छुटा सकते हैं तैसेही केवल विचारों से वह
किसी को मारभी सकते हैं। इसप्रकार के बहुत से उदाहरण पाये
जाते हैं। ऐसा होने के कारण जब तक चेले का मन भलीप्रकार
से अपने बशमें न हुआहो और जबतक कोई भी भले या बुरे विचार
उसकी इच्छा के विपरीत मनमें से बाहर निकल सकें इतनीशक्ति

न हुई हो तबतक उसको गुप्तज्ञान देना हानि कारक होता है, इसही कारण महात्माओं के चेले होनेकी आशा रखनेवालों को, मन को वशमें रखने की आवश्यकता है ।

अब इसपवन की समान दौड़ते मनको किसप्रकार वशमें रक्खा जासके यह आवश्यकीय प्रश्न है । यद्यपि यह कार्य अत्यंत कठिन है परंतु तौभी इसका होना असाध्य नहीं है । अर्जुन ने जब श्रीकृष्णजी से कहा कि हे कृष्ण ! यह मनतो इतना चलताहुआ और इतना सूक्ष्म है कि पवनको पकड़ रखना और मनका पकड़ रखना यह दोनों मुझे समानही कठिन लगते हैं तब श्रीकृष्णजीने उत्तर दिया कि मनको वशमें रखना तो अत्यन्त कठिन हैही परंतु यत्न करने और वैराग्य से इसको वशमें रक्खा जासकता है ।

इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं है—न बारम्बार यत्न किये विना छुटकारा है । यह कार्य अभ्यासी स्वयंही करते हैं उसको कुछ गुरू आकर नहीं करवाते, और जबतक ऐसा करने को वह स्वीकार न करे तबतक गुरू मिलने की आशा रखना व्यर्थ है । श्रीकृष्ण भगवान् जिनको अपनी अवस्था भली प्रकार ज्ञात है उन्होंनेही जब यह स्वीकार किया कि यह काम बारम्बार यत्न करनेसेही होसकता है तो फिर हम कैसे कहसकें कि यह

अशक्य है ? अतएव प्रत्येक अभ्यासी को उनके कहे अनुसार अपनी संसारी अवस्था मेंही रहकर बारम्बार यत्नकर मनको वश में करना सीखना चाहिए। पहिले तो किसी भी बात के ऊपर क्रमशः विचार करने की टेव डालनी चाहिये। किसी अमुक पदार्थ को लेकर वह किस प्रकार बना है, उसका बनाव क्या है, उसमें न्यूनता क्या है आदि २ बातों का क्रमशः विचार करना चाहिये। आरम्भ में तो सहस्रों बार निष्फल होंगे; एकही क्षण में वह विचार दूसरी बातके ऊपर या किसी इच्छितपदार्थ के ऊपर चलाजायगा। उस विचार के स्थिर रखनेका ध्यान आनेके पहिले वह बाहर निकल जायगा परंतु फिर उसी विचार को पकड़ उसे उसी बातपर स्थिर करना चाहिए। ऐसा करनेसे वह आयाहुआ दूसरा विचार निकल जायगा और फिर से वही पहिला विचार स्थिर होगा इसप्रकार श्रीकृष्ण भगवान की शिक्षाके अनुसार बारंबार यत्न करने का आरम्भ करना चाहिए।

फिर जिन२ बातों से मनके भ्रमित होजाने में सहायता मिलती हो उन बातों से दूर रहना चाहिए। उदाहरण की समान एक तुच्छबात लेते हैं कि जैसे प्रतिदिन पांच छह समाचारपत्रों के पढ़ने की टेवहै। इससे मनको स्थिर और एकाग्र करने की टेव पड़ने के बदले उसके भ्रमित होजाने की टेव पड़जाती है। उन

में अनेकप्रकार के लेख भरे रहते हैं इसकारण दो मिनट में वि-लायत का समाचार पढ़ा, उससे छलांग मार फ्रांस, उससे जर्मनी, उससे रूस; इसही प्रकार एक बात से दूसरी बात के ऊपर मन के दौड़जानेके कारण तैसेही फिर पुलिसके झगड़ों को पढ़ तत्काल ही फिर हँसी दिल्लगी की बातें और फिर उसके पीछे विज्ञापनों के ऊपर ध्यान देनेसे मनुष्य अनजानपने से ऐसी तुच्छ बातोंमें अपने समय को खोताहै, इतनाही नहीं वरन मनके एकाग्र करने का मूल्य न जानने के कारण उसके वश मेंसे छूटना और अलग होना सीखता है। फिर इससे कुछ यह न समझना चाहिए कि सृष्टि में क्या होता है सो ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है वरन ऐसा करने के निमित्त किसी एक आवश्यकीय अथवा जाने हुए समाचारपत्र को ले उसको ध्यानपूर्वक पढ़ थोड़ीही देर में रखदिया जाय तो वही बहुत होगा।

फिर इसही प्रकार जिन २ बातों से मनको एकाग्र रखने में सहायता मिलती हो उन बातों को स्वीकार करना चाहिये। प्रत्येक दिन धर्म अथवा विज्ञान की कोई पुस्तक ले उसको अमुक समय तक एकाग्र चित्त से पढ़ने की टेव डालना चाहिये उस समय समस्त ध्यान केवल बांचने के ऊपरही रखने का प्रयत्न

करे, मनको इधर उधर न भ्रमित होने दे। जो बाहर जाय तो तत्कालही पीछे लाकर पुस्तक के ऊपर लगावे। ऐसे धीरज से श्रीकृष्णजी की शिक्षाके अनुसार बारंबार यत्न कर मनको एकाग्र करने की टेव डालने से उसका बल बढ़ता जाता है, फिर वह सरलता पूर्वक एकाग्र होसकता है और जिन बातों का विचार करना हो उन बातों कीही बारंबार विचार करने की शक्ति आती है। फिर अभ्यासी को व्यौपार आदि में भी इसही शिक्षा को सदैव लेना चाहिये। कार्यालय में कुछ लिखने बैठे तो समस्त ध्यान उस समय लिखने के ऊपरही रखने का यत्न करें, प्रश्न निकालने या कुछ गणित करने बैठे तो एकाग्रचित्त रखकरही वह करे, ऐसे प्रत्येक अवसरों को प्राप्त हो अति तुच्छ काम करने के समय भी तथा कार्य के समय कार्य में और हँसी दि-ल्लगी के समय हँसी दिल्लगी में भी ध्यान रक्खे ऐसा करने से थोड़ेही समयमें चित्तके एकाग्र करने की शक्ति आजाती है, और वह चेला होने के योग्य योग्यताको प्राप्त होसकता है अब इसके उपरांत दूसरी बातपर ध्यान करना है।

❀ ध्यान ❀

शो०—ध्यान क्याहै और उसको किस रीति से करना चाहिये

इस आवश्यकीय बात का भली प्रकार से स्पष्टीकरण कीजिये ?

थि०—मनके एकाग्र रखने के प्रयोग तथा निश्चय कीहुई वस्तु के ऊपरही क्रमशः विचार करने के प्रयोग को ध्यान कहते हैं। मनकी समस्त चञ्चलताओं के रुकजानेसे मन अमुक वस्तु के भीतरही—लीन होजाने को शक्तिमान होता है, और, जब ऐसा हो तबहीं मन एकाग्रहुआ कहाजाता है। इसही प्रकार फिर जब मनको किसी बाहरी पदार्थ के ऊपर रोककर अमुक समय तक केवल उसही वस्तु के ऊपर ध्यान रखके उसकेही गुण अवगुण उत्पत्ति स्थिति और नाश आदि बातों के ऊपर क्रमशः विचार किया जावे तब उस वस्तु का ध्यान करना कहाजाता है।

जितना मनको बश में रखना कठिन है उतनाही ध्यान करना भी कठिन है, क्योंकि जबतक बाहिरी विचारों को मन के भीतर घुस आनेसे न रोका जावे तबतक मन एकाग्र नहीं हो पाता, अतएव यहां भी श्रीकृष्ण भगवान के वचनानुसार यत्न करने की आवश्यकता है। कल तो ध्यान करने बैठाथा परन्तु आज वह रुकाव के कारण न हुआ और अब कल समय मिलेगा तो करूंगा ऐसी उपेक्षा रखनेवाले किसी दिन भी ध्यान करने में विजय पानेकी आशा न रक्खें। जिस प्रकार सहस्रों रुकाव और

संसार की सैकड़ों चालों के होतेहुए भी प्रत्येक मनुष्य पेट भरने के निमित्त भोजन का समय निकालही लेता है, इसही प्रकार प्रत्येक अभ्यासी को प्रतिदिन आधा या पौन घंटा समय निकाल ध्यान करने की टेव डालनी चाहिये । अमुक कार्य प्रत्येक दिन किये जाने से उसके कठिन होने पर भी वह समय पर सहज होजाता है क्योंकि शरीर के ' कोषों ' के और मनके वारंवार अमुक अवस्था में पड़ने की टेव पड़ने से वह थोड़ेही समय में अपने सम्बन्ध सेही उस अवस्थामें आजाती है (देखो प्रकरण ३) इस बातको ध्यानमें रख अभ्यासी प्रतिदिन ध्यान करना आरंभकरे।

अब ध्यान के भी दो भाग होते हैं कि जिनमें एक भक्ति भाव से करने में आता हुआ ध्यानहै, और दूसरा केवल विचार शक्ति सेही करने में आताहुआ ध्यान है । प्रत्येक समझदार अभ्यासी इन दोनों रीतोंका ध्यान करना सीखता है।

भक्तिभाव से ध्यान करना अत्यन्तही उत्तमहै क्योंकि उससे अत्यन्त लाभ होते हैं । पहिले वह अभ्यासी जो गुरूका चेला होनेकी आशा रखता है और जो गुरूके मार्ग पर चलना चाहता है गुरूके ऊ:र अपने चित्त को लगाय भक्तिभाव से अथवा शुद्ध सात्विक प्यारसे एकाग्रचित्तहो अपने गुरूके मिलने तथा उसकी

समान पवित्र अवस्था में पहुँचने की आशा में लीन होजाने का यत्नकरे। ऐसा करने से मुख्यकर दो लाभ होते हैं। एक तो यह है कि जिस वस्तु का विचार कियाजावे उस वस्तुका प्रभाव मनमें प्रविष्ट होजाता है, और ऐसा प्राकृतिक नियम है, कि जब कोई छोटा जीव बहुत समय तक भौंरेके घरमें रहे तो उसी भौंरे का ध्यान रहने के कारण वहभी बदलकर भौंरा बनजाताहै इसही नियम के कारण जब वह भक्त भी अपने गुरूका ध्यान अत्यन्त सात्विक प्यार से करता है, तो उसके जीवमें भी धीरे २ उस सद्गुरू के पवित्र गुण प्रवेश करजाते हैं और वह स्वयंही क्षण २ पर अधिक से अधिक पवित्र होताजाता है। तथा दूसरा लाभ यह है कि जो वस्तु अपने को भाती हो उस वस्तु के ऊपर चित्त लगाने में अधिक सबलता पड़ती है, अतएव चेलेका सबसे अधिक प्यार अपने गुरूके निमित्तही होने के कारण उसे गुरूके ऊपर एकाग्रचित्त से ध्यान करने में सबलता पड़ती है. और इसप्रकार प्रत्येक दिन एकाग्रचित्त रखने की टेव डालने से एक समय ऐसा आता है कि जब निचला मन बाहर के समस्त खिंचावों से छूटकर स्थिरता पाता है और इससे समुद्र के पानी की समान विषयों के खिंचाव से उछलना बन्दहो वह तालाब के

पानी की समान स्थिर होजाता है। ऐसी अवस्था में पहुँचने के साथही जैसे दर्पण में या तालाव के स्थिरपानी में सूर्य चन्द्र का प्रतिबिम्ब पड़ता है परन्तु समुद्रके उछलते पानी में नहीं पड़ता तैसेही उस दर्पण की समान स्थिरहुए निचले मन में आत्मा, बुद्धि और मनसका प्रतिबिंब पड़ता है. इससे अबतक जिन २ बातों को वह दूसरों के कहने से मानता था उनका अब वह स्वयंही अनुभव करता है, तैसेही निचले मनसके पीछे रहेहुए समस्त दुःखों से रहित जो बुद्धि, मन है वह स्वयंही है ऐसा उस को अपरोक्ष अनुभव होता है। "तत्त्वमसि" अथवा वह (ब्रह्म) तू है, तैसेही " अहं ब्रह्मा ऽस्मि " अथवा मैंही ब्रह्म हूं ऐसे जो वेदके महावाक्य हैं उनका सहस्रों पुस्तकों में बांचने से या मन में समझने से अनुभव नहीं होसकता वरन ऐसा होने के निमित्त ध्यान के द्वारा निचले मनसको विषयोंकी धूलसे छुटाकर आत्मा, बुद्धि और मनसके साथ एकत्र होजाय यहांतक स्थिर और पवित्र करने की आवश्यकता है।

तथा आरम्भ में अमुक समय परही ध्यान करनेकी टेव डालने से जब बहुत समय बीत जाताहै तब समस्त दिन काम काज में लगे रहने परभी ध्यानी अपने ध्यानमेंही रहनेको शक्तिमान होताहै

और जैसे देवतापर फूल चढ़ाने के समय भक्त का ध्यान देवतापर ही लगा रहता है और उसके अंगआदि फूल चढाने का कार्य किये जाते हैं, वैसेही शरीर मनरूपी संसार के कर्तव्य रूपधारी फूलों के चढाने में रुकेहुए होनेपर भी ध्यानी स्वयं साधारण मनुष्य की समान उसमें नहीं लिपटजाता, वरन आत्मा बुद्धि और मनस यह वह स्वयंही है ऐसा उसको अनुभव होनेके, कारण निचले मनस और शरीरसे वह सब कर्तव्योंको पूर्ण करताहुआ भी उनसे पृथक रह सदैव ध्यान और भक्ति में लीन रहता है।

अब दूसरा जिसको मानसिक ध्यान कहाजाता है वह भी इतनाही आवश्यकीय है। उसकी सहायता से समस्त सद्गुण मन में लाये जा सकते हैं तैसेही कठिनता से भरी हुई बातों का भी अपनेही हाथ से स्पष्टीकरण किया जासकता है। समस्त सद्गुणों के मन में आने के पहिले और बुरे प्रभावों को सदैव के निमित्त मन में से निकालने के पहिले चेला होना साध्यही है इस कारण यह कठिन कार्य किस प्रकार किया जाय यह जो जानना चाहता हो वह भगवद्गीता के १६ वें अध्याय के आरम्भ में श्रीकृष्णजी के कहेहुए पवित्र गुणों के प्राप्त करने का यत्न करे जैसे अर्जुन ने सब सद्गुणों के साथ जन्म प्राप्त किया था

इससे वह श्रीकृष्ण भगवान के उपदेश लेने तथा उनके विराट् स्वरूप देखने को शक्तिमान हुआ था, इसही प्रकार आनेवाले अवतारों में इन समस्त सद्गुणों समेत जो जन्म पाकर सद्गुरु की कृपा से ब्रह्मज्ञान मिलने के योग्य होनाचाहै वह अभ्यासी इस के निमित्त इस अपने वर्त्तमान अवतार में ध्यान और कर्म द्वारा इन सब पवित्र गुणों को जीव में लगाके उदाहरणकी समान हम पवित्रता को ग्रहण करते हैं ।

(१) पवित्रताई—इस सद्गुण के प्राप्त करने को अभ्यासी को क्या करना चाहिए ? प्रातःकाल सूर्य उगते समय जब वह ध्यान करने बैठे तब उसको पवित्रताई क्या है इसका विचार करना चाहिए । उसके मिलनें योग्य अपने में सद्गुण हैं या नहीं और हैं तो वह किस प्रकार प्राप्तहो इसका विचार करे । अभ्यासी को मन वाणी और कर्मद्वारा पवित्र रहना चाहिए, तैसेही यथार्थ पवित्रताई के निमित्त अभ्यासी को उचित है कि वह प्रातःकाल पवित्रताई के सम्बन्ध में दृढ विचार कर अपने मन में निश्चय करे कि मैं अब अपने मन में बुरे विचार न आने दूंगा, और यदि आवेंगे तो तत्कालही निकालूंगा । कोई भी बुरा काम मेरे हाथ से न हो इसके निमित्त मुझे सावधान रहना चाहिए । इस

प्रकार पवित्रताई के ऊपर ध्यानकर जब अभ्यासी काम काजको निकलता है तब उसके मनमें प्रातःकाल के कियेहुए विचारों की स्मृति रहने के कारण समस्त दिवस वह जो२ कर्म करता है उन सबै पर स्थिर हो उनपर ध्यान देता है, और कोई भी बुराकर्म अपने हाथसे नहीं होने देता। किसी भी पाप कर्म को करके वह अपने कियेपर पछतता है। पवित्रताई के ऊपर ध्यान कियेजाने के कारण समस्त दिन पवित्र कर्म करने को वह अपना कर्त्तव्य समझता है। तथा ध्यान करने के समय बुरा शब्द न बोलूं ऐसा निश्चय कियेजाने के कारण समस्त दिन वह एक भी बुरा शब्द नहीं बोलता और अपने कर्त्तव्य कर्म की समान वह बुरे शब्दों के बोलने से सावधान रहता है। जिस मुखसे वह अपने सद्गुरु के सामने खड़े रखने की आशा रखता है उस मुख में से अब कोई भी पापी शब्द न निकले इस के निमित्त वह ध्यान रखता है। नीच विषयों की बातकर वह अपनी जिह्वामें अवगुण नहीं बांधता। प्रत्येक वाक्य और प्रत्येक शब्द जो उसके मुख में से निकलते हैं वह भली प्रकार से पवित्र हैं या नहीं इसका वह सदैव ध्यान रखता है। और इसही प्रकार वह विचारों को भी पवित्र रखने का यत्न करताहै। मन में एक भी अपवित्र विचार को नहीं आने

देता और जो आते हैं तो तत्कालही उनको मन में से निकाल देता है। वह जानताहै कि बाहर से अपवित्र विचारों के मन में घुसआने का कारण मनमें उस प्रकार की बदी होने का कारणहै, अतएव वह अपनेही मन के स्वच्छ रखनेका यत्न करता है कि बाहर से किसी प्रकार के भी बुरे बिचार उसकी ओर न खिंचआवें इसप्रकार प्रातःकाल को पवित्राई के ऊपर ध्यानकर समस्त दिन उसही के अनुसार चलनेका यत्न करने से जीव में यह सद्गुण धीरे २ बढ़ता जाताहै। तथा इसही प्रकार अभ्यासी को सत्यताके ऊपर ध्यान करना चाहिये।

(२) सत्य है, उसकी जगत में कितनी प्रतिष्ठा है, चेला होनेवाले में इस सद्गुण के होने की कितनी आवश्यकताहै, तथा संसार और व्यौपार आदि में इससे कितना लाभ होता है इसके ऊपर भली प्रकार मननकर इस सम्बन्धमें जो २ विचार अभ्यासी ने बांधे हों उसके अनुसार समस्त दिन बर्त्ताव करने का उसे प्रयत्न करना चाहिये। जब वह कोई काम काज करे तब साव-धान हो अपने कियेहुए निश्चय के अनुसार अपने हाथसे कुछ ऐसा काम न होने दे कि जिसमें कुछभी खोटापन हो। अपने मुखमें से कुछ ऐसा शब्द जान बूझकर न निकलने दे कि जिससे

उससे द्वारा अनर्थ उत्पन्न होने की सम्भावनाहो । तथा वह झूठ न बोले इतनाही नहीं बरन जो कुछ बात कहे अथवा अपनी देखी हुई बात की व्यवस्था करे उसमें कुछ भी फेरफार नहीं होना चाहिये, इसके निमित्त वह सावधान रहे, क्योंकि वहभी झूंठही बोलना कहाजाता है । तथा बात करने के समय बैठेहुए मनुष्यों के प्रसन्न करने के निमित्त उसमें झूठमूठ बातें तथा हँसी दिल्लगी के शब्दों को काम में लानेकी टेव कि जिनको मनुष्य धिक्कार देनेके बदले उलटा अच्छा समझते हैं चेला होनेकी आशा रखनेवाले को एक साथही छोड़ देना चाहिये । इसही प्रकार जब तक मनमें घुसआते हुए सहस्रों खोटे अथवा तुच्छ विचार न रोके जासकें तब तक मनकी अथवा मनसकी सच्चाई नहीं गिनी जासकती, ऐसा ध्यानमें रखकर एक भी खोटा या बिना अर्थका विचार उसे अपने मनमें न आने देना चाहिये और न असत्य विचारों से अपने मनको अपवित्र करना चाहिये । इसही प्रकार अभ्यासी को दयाके ऊपर ध्यान रखने की आवश्यकताहै ।

(३) दया—क्या है, उसका मूल्य कितना है ? उसकी आवश्यकता कितनी है ? तथा यह सद्गुण किस प्रकार प्रगट हो इत्यादि बातों के ऊपर प्रातःकाल को ध्यान कर समस्त दिन

उसही के अनुसार करने का यत्न करे । जो कोई देखपड़े और उसके सम्बन्ध में आवे उसके साथ अत्यन्त दयासे बर्त्ताव करना चाहिये । फिर प्रत्येक अवसर पर उसे अपने सगे सम्बन्धी और मित्रों की सहायता करने का यत्न करना चाहिये जहां २ उसे बिवश व निर्बल मनुष्य दिखाई दें वहां २ वह अपनी शक्ति भर उनके सुख देनेका यत्न करे । जहां २ उन्हें दुःखहो वहां २ उन्हें धीरज बँधावे और दुःख को न्यून करने का यत्न करे । महात्मा गौतम बुद्ध और ईसा आदि के जीवन चरित्रों को पढ़ कर उसके अनुसार वर्त्तने का यत्न करे । इस प्रकार दया के ऊपर प्रातःकाल ध्यान करने के कारण और समस्त दिन उसके अनुसार वर्त्तने का श्रम करने से धीरे २ यह उत्तम गुण मन में प्रविष्ट होजाता है । तथा इसही प्रकार अभ्यासी को स्थिरता के ऊपर ध्यान रखना चाहिये ।

(४) स्थिरता—जो मनुष्य साहसी है और स्थिरता को काम में लासकता है वह कितना सुखी है; उसको यह विचार करना चाहिये । जो मनुष्य सुख से प्रसन्न हो या दुःख से दुःखी हो अपनी समता को नहीं खोदेता अथवा उस आज कुछ भी सुख मिला तो उससे वह मनुष्य प्रसन्न नहीं होजाता तैसेही कल

कुछभी दुःख पड़ा तो उससे वह रो नहीं बैठता, वह कितनी बड़वार् इच्छा शक्तिवाला है उसको यह विचार करना और स्वयं अपने को भी वैसा बनाने का यत्न करना चाहिये । दुःख आपड़े-तो उसका विचार करे कि यह तो क्षण भंगुर है यह कभी आता और कभी जाता है इससे कुछ घबड़ाने का कारण नहीं है जो रुपया पैसा निकलगया वह निकल गया यह सदैव तो रहने ही का नहीं, अतएव इसके कारण विलाप करना कुछ बुद्धिमानी नहीं है ऐसा वह विचार करे; चोरसे चुराया नहीं जासकता, तथा आग पानी से जिसका नाश नहीं होता, ऐसा जो ज्ञान उस को मिलता है यथार्थ में वही उसका सदैव रहनेवाला धनहै ऐसा समझ दरिद्रता आपड़ने से उसे अपनी समता न छोड़नी चाहिये । फिर मित्र या सम्बन्धियों के मरने से उसे धीरज न खोना चाहिये, वरन उसे विचार करना चाहिये कि यह तो केवल उसके देवालय रूपी शरीर का नाशहुआ इससे उसके प्यारे मित्र या सम्बन्धी आदि को कुछभी दुःख नहीं हुआ; ऐसे शरीर तो बहुत से नाश होगये और होंगे परन्तु इससे कुछ उनके मित्रका नाश नहीं हुआ है । इस प्रकार स्थिरता के ऊपर ध्यान करनेसे और उस काम में लाने का श्रम करने से मनमें स्थिरता का अमूल्य

गुण प्राप्त होजाता है । इसही प्रकार साहस, शांति और क्षमा आदि सब सद्गुणों की जीव में प्राप्ति कीजासकती है । यह कार्य अत्यन्त कठिन और आपत्तियों से भरेहुए हैं परन्तु तौभी इनके किये बिना छुटकारा नहीं है । धीरे २ धीरज रखकर उन्हें करना चाहिये । फिर एक बात यह ध्यान में रखनी चाहिये कि सद्गुणों के ऊपर केवल ध्यान करने से या ध्यान किये बिना केवल अच्छे कर्मों का श्रम करनेसेही जीव में सदैव के निमित्त यह सद्गुण नहीं आसकते । अतएव दोनों के साथही साथ होनेकी आवश्यकता है सो समझना चाहिये ।

जो मनुष्य अपनी शक्तिभर इन ऊपरकही हुई समस्त शिक्षाओं को सीखता है तथा जो अपने मनको वश में रखना सीखता है और जिसने सीखकर सब सद्गुणों को अपने जीव में इकट्ठा किया है, वही मनुष्य महात्मा गुरूकी शोधमें विजय पाता है इतनाही नहीं वरन उसके शोधने के पहिले महात्मा गुरु स्वयं उसके सामने प्रगट होजाते हैं ऐसा जानना चाहिये । क्या महात्मा जान बूझकर अपने को छिपाते हैं ? क्या जान बूझकर अपने चेलों को वह स्वयं पवित्र दर्शन नहीं देते एक पल भी ऐसा विचार करना यह क्या अपना अन्धापन या मूर्खता नहीं है ?

क्या महात्मा मनुष्य जाति की वृद्धि नहीं चाहते?क्या यह बड़े२ काम उन्होंने अपने माथेपर नहीं लिये ? और जो फिर ऐसाही है तो पीछे उनके बड़े २ कार्यों में सहायता करने की आशा से उनके सेवक होने की जो इच्छा रखते हैं क्या उनके निमित्त वह कुछ कभी रखछोड़ते हैं ? इन बातों का प्रत्येक अभ्यासी को दृढ़ विचार करना चाहिये कि जिससे उनके मनमेंसे सन्देह दूर होजाय और उनको निश्चय होजाय कि महात्मा उनको बिना कारणही रोने देते हैं ऐसा मानना उनकी बड़ी भारी भूलहै । महात्मा योग्य मनुष्य को सहायता देने के निमित्त सदैव प्रस्तुत हैं । चेला गुरू के मिलने की जितनी आशा रखता है उसकी अपेक्षा सहस्रगुणी अधिक आशा महात्मा चेला करने की रखता है. क्योंकि पृथ्वी पर लाखों मनुष्य अज्ञानपन के कारण पाप के कुवें में डूब मरते हैं और उन्हें मार्ग दिखाने के निमित्त चेलों की अत्यन्तही न्यूनता है, परन्तु जबतक योग्य मनुष्य हाथ न आवे तबतक वह क्या करें ? गुरू तो सदाही प्रस्तुत है परन्तु चेला जबतक प्रस्तुत न हो तबतक उसके मनसे गुरू अत्यन्तही दूरहै ऐसा जान पड़ता है । चेला अपने हाथसेही अपने और गुरू के बीच पृथकता रखने वाली भीत खड़ी करता है । जैसी न्यूनता चेले के जीवमें रहतीहै

वैसी भीत उसके और उसके गुरूके बीच रहती है ऐसा समझना चाहिये । क्योंकि महात्माओं की पवित्र दृष्टि सदैव पृथ्वी के ऊपर रहती है इसी कारण जो एकभी मनुष्य उनकी सेवामें रह जगत के कल्याण कारी कामों में संयुक्त होने की आशा रखता हुआ उनकी दृष्टिमें पड़ताहै और वह कार्य के निमित्त उसे योग्य जान पड़ता है तो महात्मा उसपर हाथ धरनेमें नहीं चूकते, परन्तु जब तक योग्य न हो तब तक समस्त आशा व्यर्थ जाती हैं । जैसे कोई मनुष्य घर में ताला लगाकर बैठजाय, और कोई मित्र से मिलने की आशा रक्खे तो उसको मित्र नहीं मिल सकता तैसेही आशा तृष्णा से भरेहुए ' ओरा ' में लिपटकर बैठेहुए जीवकी वृद्धि महात्मा गुरुकी इच्छा होनेपर भी नहीं होसकती, अतएव जो पदार्थ चाहिये उसके निमित्त पहिले योग्य होना चाहिये जो स्वयं चेला होने के निमित्त समस्त नियमों को पूरा कर अपने महात्मा गुरूके मार्ग में चलने की आशा रक्खेगा वह मनुष्य अपने पवित्र नियमों में कभी निष्फल न होगा, ऐसा प्रत्येक अभ्यासी को निश्चय जानना चाहिये ।

❀ शिक्षित चेले का जीवन ❀

शो०—अब महात्मा गुरुके चेलेकी समान स्वीकार करनेके पीछे

चेलाकी क्या अवस्था होती है उसका कुछ संक्षेपसे वर्णन कीजिये।

थि०—अभ्यासी एक साथही महात्मा गुरू का चेला नहीं हो सकता। जब ऊपरकी कहीहुई समस्त शिक्षा बलपूर्वक किसी महात्मा गुरूका ध्यान उसकी ओर खींचती हैं तब वह थोड़े समय के निमित्त सीखेहुए चेने की समान स्वीकार किया जाता है। ऐसी अवस्था में उसको कुछेक आवश्यकीय कार्य करना होता है कि जिसमें विजय पानेसे वह महात्मा का स्वीकार किया हुआ चेला हो सकताहै; अतएव वर्तमान में केवल सीखेहुए चेले के जीवन संबंध में कुछ स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता है।

शिक्षित चेले को बहुत कुछ योग्य होने की आवश्यकता है कि जिसमें उसको अधिकतर उसके गुरुकी सहायता मिला करती है, परन्तु चेले के जानने में यह बात नहीं आती, उसे ऐसा जान पड़ता है कि मैं स्वयंही अपने श्रम से आगे बढ़रहा हूं। शिक्षित चेले से समस्त योग्यता भली प्रकार से नहीं मांगी जाती, तैसेही उनके अधूरे ज्ञान के कारण उनकी बहुतसी भूल क्षमा कीजातीहै जो वह स्वयंही चेला होने के नियमों से न हटे, अथवा वह सुख दुःख से घबड़ाकर पीछे को न लौटे, तथा जो योग्यता उसमें चाही जावें उनके प्राप्त करनेका वह यथाशक्ति यत्नकरे तो शिक्षित चेला

सब प्रकार से पूर्ण हुआ गिनाजाता है । जो योग्यता उससे चाही जाती है वह आवश्यकीय होने के कारण तथा प्रत्येक अभ्यासी को उसके स्वीकार करनेकी आवश्यकता होनेसे सदैव ध्यान में रखनेमें सवलता पड़े इस कारण नीचे के कोठे में उन्हें एकत्र करते हैं ।

(१) विवेक—सत् और असत् अथवा नित्य और अनित्यके पृथक करनेवाली शक्ति ।

(२) वैराग्य—जगत की किसी भी वस्तु के प्राप्त करने या भोगने की इच्छा का नाश ।

(३) सत सम्पत्ति	(१) सम—मनके ऊपर सम्पूर्ण अधिकार । (२) इन्द्रियों और शरीर के ऊपर सम्पूर्ण अधिकार । (३) उपरति—मौन धारण करने की असीम शक्ति । (४) तितिक्षा—सब दुःखों को धीरज से सहन करने की शक्ति । (५ श्रद्धा—शास्त्र, गुरु और अपने ऊपर विश्वास । (६) समाधान—चाहे जैसी भली या बुरी अवस्थामें हो तौ भी समता रखने की शक्ति ।

(४) मुमुक्षा—मोक्ष की इच्छा अर्थात जन्म मरण के कर्तव्य रूपी बन्धन से छूटने की इच्छा ।

इस में पहिली योग्यता जो चेले से चाही जाती है वह विवेकहै

(१) विवेक—अर्थात् सत् और असत् तथा नित्य और अनित्य के पृथक करने की शक्ति कि जो शास्त्र के अभ्यास से और संसार के अनुभव से प्राप्त की जासकती है । ब्रह्म सत्यहै और जगत मिथ्या है अथवा वह स्वप्न की समानहै क्षण २ में उसमें फेरफार हुआ करताहै, इसकारण वह अनित्य और मिथ्या है ऐसा जीवमें निश्चय होने के कारण शास्त्रके अभ्यास करने की आवश्यकताहै । शिक्षित चेले को शास्त्रका अभ्यास करने तैसेही संसारके भौतिक पदार्थों के मिलने के पीछे उसके भाई बंधु अपने जन्मको खोते हैं, इसके अनुभव प्राप्त करने की सबसे पहिले योग्यता जो विवेकहै उसके प्राप्त करनेकी आवश्यकताहै । जबतक विवेक नहीं होता तबतक संसारकी सब वस्तुओंसे उसका आकर्षण हो उनकी मायामें लिपटजाने की सम्भावना रहती है इसही कारण चेलेकी भी यह दशा न होजावे इससे उसे विवेक के प्राप्त करनेकी आवश्यकता है । विवेक होने के पीछे दूसरी योग्यता जो वैराग्य है वह उसमें से स्वयंही प्रगट होजाती है ।

(२) वैराग्य–अर्थात् रागका नाश होना है । राग अथवा वस्तुओं के मिलने या भोगने की इच्छा के नाश होने काही नाम वैराग्य है; जबतक विवेक नहीं होता तबतक वैराग्य भी नहीं प्रगट होता । इस स्वप्न के समान संसार की वस्तुओं का मूल्य कितना है, यह विवेक के द्वारा जानलेनेके पीछेही उनके प्राप्त करने या भोगने की इच्छाका नाश होता है और वही यथार्थ वैराग्य है। जो वस्तु देखपड़े उसे देखकर धिक्कार उत्पन्न होने या जगत को देखकर विपत्तियों के उत्पन्न होने कोही कितने एक वैराग्य समझतेहैं परन्तु वह वैराग्य नहीं है, वह केवल मनकी निर्बलता और अज्ञानता है, क्योंकि वैराग्य की अवस्था कुछ भ्रातृ भाव से उल्टी नहीं होसकती । जिस मनुष्य को समस्त जगत के कारण धिक्कार उत्पन्न हुआहै तथा जो कुत्तेकासा मुहँलेकर सदा अपनी मुक्तिकेही विचार में फिराकरता है वह वैरागी नहीं बरन मूर्ख है क्योंकि वैराग्य की यथार्थ अवस्था इससे पृथकही है और उसको हम एक साधारण उदाहरण देकर समझावेंगे । जैसे बैलके पैरों के पीछे २ गाड़ी का पहिया चलाजाता है उसही प्रकार विवेक के पीछे वैराग्य चलता है । जितनी श्रेणी विवेक हुआ हो उतनीही श्रेणी वैराग्य भी होताहै । बालकपन में सब कोईही खिलौनों से

खेलना चाहते हैं परन्तु बड़े होनेपर कोई भी ऐसा नहीं चाहता। जो मनुष्य बचपन में खिलौनों के देखतेही उनकी ओर आकर्षित होता था, अब वही मनुष्य युवा होनेपर उन खिलौनों की ओर आकर्षित नहीं होता, इसका कारण क्या है ? केवल इतनाही है कि खिलौनों के विषय में उसे विवेक होगया है अथवा सृष्टि का अनुभव मिलने से वह खिलौनों के यथार्थ मूल्यको जानगया है, इसही कारण वह युवा होनेपर खिलौनों की ओर आकर्षित नहीं होता; परन्तु स्त्री, पुत्र और धन दौलत आदिके विषयोंका उसको विवेक नहीं हुआ इसकारण वह उनकी ओर आकर्षित होजाता है, और उसकी दृष्टिमें यही आता है कि यह सब मिलने योग्य हैं। अब मनुष्य जब बड़ा होजाता है और उसको खिलौनों के विषय में विवेक होता है उस समय जब वह किसी मेले या यात्रा में जाताहै तब खिलौनों को देखकर उनके मिलने व भोगने की इच्छा उसे नहीं होती तैसेही उन से उसे विकार या प्रसन्नता भी नहीं प्राप्त होती परन्तु उसही समय बालक उन खिलौनों को देखकर उनकी ओर आकर्षित होता है और उनको चाहता है, ऐसा होने के बदले गाय, घोड़ा, हाथी, गाड़ी, मेम आदिको वह मनुष्य समान दृष्टि से देखता है, और वह सब रीते खोखले हैं

ऐसा जानने के कारण उनकी ओर धिक्कार नहीं वरन जो उपेक्षा होती है उसकाही नाम वैराग्य अथवा राग का नाश है, ऐसा समझना चाहिये ।

इस प्रकार जैसे बड़ी अवस्था होने पर मनुष्य खिलौनों का यथार्थ मूल्य जानकर उसके विषय में उपेक्षा कर सकता है और उनके बीच में आने से बालकों की समान अपनी समता को नहीं खोदेता. उसही प्रकार विवेक से जिसने धन, दौलत, स्त्री, पुत्र आदि के यथार्थ मूल्यको जान लियाहै, उसको यह समस्त जगत खिलौना की दूकान के समान तुच्छ जान पड़ता है कि जिस में वह अपने भाई बंधु आदिको बच्चों की समान नाना प्रकार की वस्तुओं के पीछे दौड़ता देखता है, परन्तु उन सब वस्तुओं से उसे धिक्कार उत्पन्न नहीं होता तैसेही उसको आकर्षण और राग भी नहीं उत्पन्न होता बरन ऐसी अवस्था में आकर भी अपनी समता स्थिर रखे जैसे मेले में फिरता हो वैसेही वह वैरागी इस मेले रूपी जगत में निःप्रयोजन होकर फिरा करता है । सोना, चांदी, सीसा, तांबा, या पत्थर का टुकड़ा इन सबमें जैसे बच्चा प्रसन्न होकर खेलता हो तैसेही उसे भी वह सब एक समानही मिथ्या जानपड़ते हैं और वह इन सबसे एक समानही रीति पर निःप्र-

योजन रहता है । जब अभ्यासी इसप्रकार की अवस्था में आता है तभी उसको वैराग्य हुआ कहा जाता है । जब वैराग्य होजाता है तभी निष्काम होकर कर्म किये जासकते हैं, क्योंकि विवेक से जगत् का मिथ्यापन जान लेने के कारण वैरागी कर्म के फलों की आशा नहीं रखता और जब शिक्षित चेला ऐसी अवस्था में आता है तभी उसको वैराग्य प्राप्त हुआ कहा जासकता है । इसके उपरान्त तीसरी योग्यता जो सत सम्पत्ति है उसके प्राप्त करने की उसे आवश्यकता है ।

(३) सतसम्पत्ति–अथवा छह सद्गुणों की शिक्षित चेले में अधिकतर प्रगट होने की आवश्यकता है ।

(१) सम–अथवा मनको अधिकार में करने की अधिक आवश्यकता है पहिले कहआए हैं तैसेही अपने विचारों से दूसरे के ऊपर भला या बुरा प्रभाव होने के कारण तथा मन महात्मा गुरूके हथियार की समान काम में आवे अथवा उनके द्वारा वह अपने विचारों को जगत् में विस्तारित करे इस कारण शिक्षित चेले को अपनी इच्छा के विपरीत मन के ऊपर इतना अधिकार रखना सीखना चाहिये । जो एक भी बुरा विचार मन में प्रवेश न करे । पीछे;

(२) दम—अथवा शरीर और इन्द्रियों को वश में रखना है । जैसे विवेक होनेसे उसके सम्बन्ध सेही वैराग्य उत्पन्न होता है तैसेही सम अथवा मनको अधिकार में करनेसे उसके सम्बन्ध सेही दम अथवा शरीर और इन्द्रियों के ऊपर अधिकार आता है, और बहुधा बिना इन दोनों सद्गुणों के आये चेला योग्य नहीं होता । इसके पीछे तीसरे सद्गुण के ऊपर ध्यान लाने की आवश्यकता है और वह;

(३) उपरति—अथवा अत्यन्तही चढ़ती श्रेणी की मौन धारण करने या सन्तोष करने की शक्ति है । यह भी चेले के निमित्त अत्यन्त आवश्यकीय योग्यताहै । दूसरे के बिचार अपने विचारों से चाहे जैसे विरुद्ध हों. तथा बाहर की रीति भांति अपने से चाहे जैसी पृथक या अपने को बुरी लगे परन्तु तौभी उनसे उत्पन्न हुए सब विचारों को दूर कर सब मनुष्य एकही आत्मा के पृथक २ रूप हैं ऐसा समझकर, केवल उनकी धारणा तथा इच्छा पवित्र हैं या नहीं इसके ऊपरही ध्यान लाय उनकी ओर प्यार की दृष्टि से देखना तथा प्यारका सम्बन्ध रखनाही उपरति है । तथा पृथक २ धर्मों के बाहरकी रीतें जिनकी अज्ञानियों को आवश्यकता है उनकी ओर मानकी दृष्टि से देखना तथा समस्त

वस्तुओं के बाहरी मायामय दिखावों के ऊपर दृष्टि न करके उनके भीतर गुप्तहुए सत्के निमित्त उनके ऊपर दयालु दृष्टि रखना भी उपरति है और उसकी शिक्षित चेले में होनेकी अत्यन्त आवश्यकताहै। इसके उपरान्त चौथा सद्गुण—

(४) तितिक्षा—अथवा जो कुछ दुःख सुख आपड़े उसे धीरज से भोगने की शक्ति है। अपने आस पास की अवस्था भली या बुरी होनेके कारण वह अपनाही कर्म है, तथा कोई भी मनुष्य उसको कारण या बिना कारण कुछभी दुःख देवे तो केवल प्रकृति के नियमानुसार यह स्वयंही अपने कर्मों का फल है ऐसा शिक्षित चेलेको ध्यानमें रखना चाहिये फिर किसी भी मनुष्य, पशु पक्षी या कांटे आदि से तथा और भी किसी रीति से जब उसको कुछ दुःख हो तब कुछभी क्रोध न आने देकर अत्यन्त धैर्यरख शांति से उसके भोग लेनेकाही नाम तितिक्षाहै और वह अत्यन्त ही आवश्यकीय योग्यता है। मनुष्य जाति का बड़ाभाग प्रगटीकरण में धीरे २ न्यूनहो सहस्रों अवतार ले अपने कर्म को पूर्ण कर जब मन्वन्तर पूरा होताहै तब वह निरवाण में जाने योग्य होता है, कि जो कार्य चेला होनेकी आशा रखनेवालों को अत्यन्तही थोड़े जन्मों में करना पड़ताहै इस कार्य को करनेसे पहिले

ानमें रखना चाहिये कि वह थोड़े समय मेंही निर्वाणकी
ा करता है इसकारण जो संचित कर्म धीरे २ पूर्ण मन्वन्तर
में करता वह अब थोड़ेही समय में पूर्ण करने की आवश्यकता
है इसकारण वह जितने बल से गुप्तविद्या के मार्ग में चलना
आरम्भ करता है उतनेही बल से उसका समस्त संचित उसके
ऊपर आपड़ताहै। उस काल यदि उसमें तितिक्षा अथवा धीरज
से दुःख सहने की शक्ति नहो तो दुःख के बोझ से दबकर अपने
पवित्र मार्ग का अधिकार छोड़ आगे बढ़ने के बदले फिर पीछेही
लौट आता है। पवित्र मार्ग में चलने वाले मनुष्यों के अधिक
दुःखित होने का कारण भी यही है। इसकारण जो कर्म चेले
पर आपड़ें, उनके लिये उसको यह समझना उचितहै कि इतनाही
बोझ मेरे माथे से उतरगया और मेरा मार्ग अधिकता से साफ हो
गया। इसप्रकार का स्वभाव रखना चेलेको आवश्यकीय है। तदो-
परांत पांचवां सद्गुण—

(५) श्रद्धा—अपना गुरू, ज्ञान और बुद्धि बलसे भरपूर है,
और अपने मन में उसके शिष्य होने की शक्ति है, इस प्रकारका
ही सम्पूर्ण विश्वास श्रद्धाहै। महात्मा गुरू जिस अवस्थामें पहुँचा
है उस अवस्था में पहुँचने के लिये प्रकृति ने उसको बनाया है

तैसेही स्वयं भी ईश्वररूप होनेसे प्रत्येक भांति की कठिनता के दूर करने को शक्तिमान है ऐसा जानने पर भी चेला अपने तथा गुरूके ऊपर सम्पूर्ण विश्वास रखसकताहै इसके पीछे छठा सद्गुण

(६) समाधान—अथवा समान अवस्थामें रहना है। ऊपरी पांचों सद्गुणों के प्राप्त होने से चेले की बाहरी अवस्था चाहें जैसी भली या बुरी हो तथा सृष्टि के मनुष्य चाहें जैसा समझते हों तौभी प्रत्येक समय और प्रत्येक अवस्था म चेला समाधान अथवा समान अवस्था के प्राप्त करने में शक्तिमान होता है, भली प्रकार से समाधान को प्राप्त करना कुछ ऐसी वैसी बात नहीं है, यह अत्यन्त कठिन कार्य है। परन्तु योगी होने वाले को तो इस अमूल्य गुण की अवश्यही आवश्यकता होनेसे अभ्यासी को इस सद्गुण के प्राप्त करने के निमित्त "लाइटआनदी पाथ" नामकी पुस्तक और उसके टीकेपर ध्यान देनेकी आवश्यकताहै। इसप्रकार सत् सम्पत्ति अथवा यह छः सद्गुण प्राप्त करने से मुख्य चौथी योग्यता स्वयंही प्रगट होजाती है और वह—

(४) मुमुक्षा—मोक्षकी इच्छा अर्थात् जन्म मरण के कर्तव्यरूपी बन्धन से छूटने की इच्छाहै। जब इन समस्त गुणोंको प्राप्त कर शिक्षित चेला मुमुक्ष की अवस्था में पहुँचता है तब